महावीर ग्रथमाला—१७ वा पुष्प

महाकवि दौलतराम कासलीवाल
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

लेखक

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

एम ए, पी-एच डी, शास्त्री

भूमिका

डा० हीरालाल माहेश्वरी

एम ए, एल्-एल् बी, डी फिल्, डी लिट्

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक

सोहनलाल सोगाणी

मत्री

प्रवन्धकारिणी कमेटी

दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी,

महावीर भवन, जयपुर-३

प्रथम सस्करण

वीर निर्वाण सवत् २४९९

जून – १९७३

प्रतिया – १०००

मूल्य रुपए
Rs 20 P 00
जैन [illegible] [illegible]स्थान

मुद्रक
मनोज प्रिन्टर्स,
गोदीको का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर—३०२००३
(राजस्थान)

विषय-सूची

राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध मे भी अच्छी जानकारी दी है। पुस्तक मे उनकी दो महत्वपूर्ण कृतियो — जीवन्धर चरित एव विवेक विलास को पूर्ण रूप से तथा अन्य कुछ कृतियो के पाठाश दिये गये हैं। हमारा विश्वास है कि हिन्दी साहित्य पर काम करने वाले विद्वानो के लिये यह पुस्तक उपयोगी एव महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के जैन कवियो को प्रकाश मे लाने की हमारी योजना का एक शुभारम्भ है।

हिन्दी जैन कवियो पर विस्तृत परिचयात्मक पुस्तको के अतिरिक्त भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित हिन्दी कृतियो के सम्पादन का कार्य भी चल रहा हैं। इनके प्रकाशन का कार्य भी शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है।

पुस्तक की भूमिका लिखने मे राजस्थानी भाषा एव साहित्य के अधिकारी विद्वान् डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने जो कष्ट उठाया है इसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं।

१–६–७३

सोहनलाल सोगाणी
मत्री

भूमिका

शोध मनन और महानता की दृष्टि से हिन्दी भाषा और साहित्य के अनेकविध अध्ययन मे बहुत सी जिज्ञासाओ, पूर्वापर सम्बन्ध सूत्रो के ओझल रह जाने के कारण उत्पन्न उलझनों और समस्याओ का सामना करना पडता है। ये समस्याए भिन्न-भिन्न रूपो मे हिन्दी के विद्वानो और शोधको के सम्मुख यदाकदा आती रहती हैं। जहां तक जनसाधारण का प्रश्न है, वह तो 'खडी बोली' को, जो राष्ट्र भाषा के रूप मे स्वीकृत है, हिन्दी मानता है किन्तु हिन्दी से थोडा-बहुत भी प्रेम रखने वाले यह जानते हैं कि हिन्दी की इयत्ता खडी बोली तक ही नही है। विद्वानो ने पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी तथा पहाडी और इनकी बोलियो को हिन्दी के अन्तर्गत समझा है। कतिपय विद्वानो ने पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी की बोलियो को हिन्दी के अन्तर्गत लेने का सुझाव दिया है। इस प्रकार, मोटे रूप से हिन्दी के अर्थ के सम्बन्ध मे ये तीन मत प्रचलित हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से मैथिली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी और खडी बोली पृथक्-पृथक् भाषाए है, पर साहित्यिक दृष्टि से विद्वान इनमे लिखे गए साहित्य को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत समझते हैं, और यह तो स्वीकृत तथ्य है ही कि परिमाण और गुण की दृष्टि से इन पाचो मे लिखा गया साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी मे बहुत बडे परिमाण मे एक प्रकार के मिश्रित साहित्य का भी निर्माण हुआ है। यह उस मिश्रित भाषा मे रचा गया है जो प्रमुखत दो भाषाओ के सवलन और एकीकरण से बनी है, यथा—राजस्थानी और ब्रज (जिसे पिंगल कहते हैं), राजस्थानी और खडी बोली (जिसके उदाहरण झूलणा, नीसाणी और अरिल्ल छन्दो मे रचित प्रचुर रचनाए हैं), ब्रज और खडी बोली। प० टोडरमल, पं० दौलतराम कासलीवाल आदि अनेक लेखको की गद्य रचनाए इसी प्रकार की हैं। मिश्रित भाषा का आधारभूत व्याकरणिक ढाचा तो प्राय एक भाषा का ही रहता है परन्तु दूसरी भाषा स्पष्टत अन्योन्याश्रित रूप से समीकृत हुई रहती है। कहना न होगा कि "पिंगल" के अतिरिक्त अन्य ऐसी किसी भी 'मिश्रित भाषा' और उसके साहित्य का अध्ययन हिन्दी मे नही हुआ है। मैं कहना चाहता हूँ कि मिश्रित भाषा का ऐसा समवाय और समवायिक मिश्रित भाषाओ का प्रचार-प्रसार हिन्दी भाषा के इतिहास की महनीय घटना है, यह उसकी समन्वया-

त्मक प्रवृत्ति और सरलीकरण का उद्घोष है। शोधार्थियो को इस ओर प्रेरित होना चाहिए।

इसलिए जब हिन्दी सज्ञा के अन्तर्गत उसका भाषिक या साहित्यिक अध्ययन किया जाता है (विशेषत लगभग सवत् १९२५ तक) तो अध्येता के लिए यह बताना परमावश्यक हो जाता है कि वह इसके अन्तर्गत किस भाषा का (राजस्थानी, व्रज, अवधी या मिश्रित आदि का) अध्ययन प्रस्तुत कर रहा है। यदि कोई अध्येता हिन्दी नाम के अन्तगत उसके आभोग मे आने वाली किसी भाषा-विशेष का उल्लेख न करके, सामान्य रूप से एक भाषा या उसके साहित्य का ही अध्ययन प्रस्तुत करता है, तो वह हिन्दी नाम की सार्थकता कदापि सिद्ध नही करता। यह केवल अध्येता का अपना और सुविधावादी दृष्टिकोण ही है। दुर्भाग्य से हिन्दी मे आजकल ऐसे अध्ययन ही अधिक हो रहे हैं, जो अनेक भ्रान्तियो को जन्म देते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध है कि हिन्दी का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और उसकी–अर्थात् उसकी विभिन्न वोलियो को प्रयोग मे लाने वालो की सख्या देश की लगभग एक तिहाई जनसख्या के वरावर है। इतने वडे प्रदेश मे हिन्दी की विभिन्न वोलियो मे रचे गए साहित्य का अभी तक आकलन और सचयन भी भली प्रकार नही हो सका है, और जब कोई भी साहित्यिक महत्व की कृति या अच्छा कवि जब कभी प्रकाश मे आता है तो हिन्दी साहित्य की परम्परा मे या तो वह एक नई कडी जोडता है अथवा क्षीण ही सही, किसी नई परम्परा की सूचना देता है। अनेक कारणो मे वडे क्षेत्र विशेष मे लोक-भावना के अनुसार, कतिपय नवीन साहित्यिक परम्पराए आरम्भ हो जाती हैं। इसके विशिष्ट कारण पारम्परिक, भौगोलिक, राजनैतिक और सामाजिक होते हैं। यद्यपि सांस्कृतिक स्रोत प्राय. सवका समान ही रहता है तथापि इन कारणो से लोक मे विभिन्न परम्परा या परम्पराओ का विकास और प्रसार हो जाता है। जैसे भाषा विशेष की अपनी प्रकृति होती है वैसे ही इन साहित्यिक परम्पराओ की भी अपनी विशेषताए होती हैं, जिन्हे भाषा विशेष की साहित्यिक जातीय परम्पराए कह सकते हैं। उदाहरणार्थ, व्रज भाषा की प्रकृति की मुख्य वातें ये कही जा सकती हैं—मुक्तक, सवैया, मनहरण, और दोहा छन्द, शृगार प्रेम तथा राधा-गोपी-कृष्ण विषयक रचनाओ का वाहुल्य, हृदय की कोमल मनोवृत्तियो की अभिव्यक्ति आदि। राजस्थानी की प्रकृति की मुख्य वातें हैं— मुक्तक रचनाओ के साथ-साथ प्रभूतश प्रवन्धात्मक ऐतिहासिक और वीर रसात्मक रचनाओ का निर्माण, शुद्ध लौकिक प्रेमकाव्य, ओज गुण प्रधान, कोमल शक्तियो के साथ-साथ परुष और कठोर

वृत्तियो का चित्रण, राम और कृष्ण के वीर और उद्धारक रूपो का विशेषत चित्रण, डिंगल गीत दोहा और नीसाणी आदि छन्दो का प्रभूत प्रयोग आदि। व्रजी मे जहा राधा कृष्ण और गोपी कृष्ण से सम्बन्धित अनेक लीलाओ और चरित्र का वर्णन मिलता है, वहा राजस्थानी मे रुक्मिणि-कृष्ण प्रवन्ध अथवा रामचरित विषयक प्रवन्ध काव्यो का बाहुल्य है। यद्यपि भगवान के सभी अवतार सभी जगह मान्य है तथापि उल्लिखित कारणो से राजस्थानी मे जहां भगवान के उद्धारक और वीर रूप को विशेष रूप से लिया गया है, वहा व्रजी मे विशेषत कृष्ण के बाल अथवा राधा कृष्ण या गोपी कृष्ण रूप को। यह तो एक छोटा सा उदाहरण है जो यह सिद्ध करता है कि व्यापक रूप से हिन्दी साहित्य के सम्यक् और सागोपाग अध्ययन मे प्रत्येक क्षेत्र मे लिखे गये प्रत्येक प्रकार के हिन्दी साहित्य का आलोडन-विलोडन और वहा प्रचलित विशेष परम्पराओ को समझने की एक महती आवश्यकता है। इस सदर्भ मे एक और बात की ओर सकेत करना भी आवश्यक है। ऐसी अनेक समृद्ध साहित्यिक परम्पनाएँ और काव्य ग्रन्थ हैं, जिनका इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थो मे समुचित मूल्याकन नही हुआ है। कइयो का तो नामोल्लेख मात्र भी नही है। विद्वानो के पुन विचारार्थ इन परम्पराओ की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है—जैन साहित्य परम्परा, सत काव्य परम्परा, राम और कृष्ण काव्य परम्परा, ऐतिहासिक और वीर रसात्मक काव्य परम्परा, विभिन्न जीवन्त सम्प्रदायो का साम्प्रदायिकता से मुक्त साहित्य और उसकी सतत प्रवहमान परम्परा। 'आदिकाल' के जाली या परवर्ती सिद्ध हुए काव्यो का यथाकालो मे सन्निवेश, भक्तिकाल मे अनेकश वीर काव्यो तथा लौकिक प्रेम काव्यो आदि का विवेचन, रीतिकाल मे पूर्वकालो की परम्पराओ के अतिरिक्त, नवीन उद्भूत सम्प्रदायो के साम्प्रदायिकता मुक्त काव्यो, राष्ट्रीय काव्यो का समावेश आदि आदि। ये कुछ ऐसी बातें हैं जिनको हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सम्यक् स्थान मिलना चाहिए। अब यह बात अनेक विद्वानो द्वारा मान ली गई है कि जिन रचनाओ मे साहित्यिक गुण हैं और जिनका प्रेरणा स्रोत धर्म है, साहित्यिक, इतिहास मे विवेचनीय हैं।

ऊपर हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जैन साहित्य के सन्निवेश और मिश्रित भाषा का उल्लेख हो चुका है। कहना न होगा कि जैन साहित्य के अनेक कवि और कृतियाँ इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास मे विवेचनीय हैं। भाषा की दृष्टि से भी जैन साहित्य का गौरवपूर्ण स्थान है। हिन्दी की अन्यान्य प्रमुख काव्यधाराओ की भाँति, जैन साहित्य धारा भी किसी न किसी रूप मे सतत प्रवहमान रही है। आदिकाल से लेकर अद्य पर्यन्त जैन साहित्य की

अनेक कृतिया प्रकाश मे आ चुकी हैं किन्तु फिर भी उनका किसी प्रकार का कोई उल्लेख साहित्येतिहास मे एक धारा विशेष के रूप मे अथवा भाषागत देन के रूप मे विद्वानो द्वारा नही किया गया है ।

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल की प्रस्तुत कृति 'महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व एव कृतित्व' एक ऐसा ही ग्रन्थ है जो पाच दृष्टियो से विशेष रूप से उल्लेखनीय है ---(१) दौलतराम का काव्य (२) उनका गद्य (३) पाठ-सम्पादन और व्याख्या की दृष्टि से (४) काव्य रूप, भाषा, कथानक रूढियां और तत्कालीन समाज चित्रण (५) कवि द्वारा अपनी भाषा विषयक सकेत ।

यह आश्चर्य की बात ही कही जानी चाहिए कि दौलतरामजी का आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा उल्लेख किए जाने के बाद भी, ये परवर्ती विद्वानो की दृष्टि से ओझल ही रहे । शुक्लजी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे 'गद्य का विकास' (पृ०४११) के सदर्भ में दौलतराम का नामोल्लेख और उनके गद्य मे लिखे आदिपुराण की नमूने के रूप मे कतिपय पक्तियाँ उद्धृत की हैं । इस प्रकार एक हिन्दी गद्य लेखक के रूप मे दौलतरामजी साहित्य ससार मे थोडे बहुत परिचित तो थे किन्तु इस रूप मे भी उनकी किसी प्रकार की कोई चर्चा नही हुई ।

प्रस्तुत पुस्तक के सुयोग्य सपादक और लेखक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इसमे न केवल कवि की तीन गद्य कृतियो---'पद्मपुराण भाषा', 'आदिपुराण', और 'हरिवश पुराण' के कतिपय अ शो को मूल रूप मे दिया है, अपितु उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाओ, 'जीवन्धर स्वामी चरित', 'विवेक विलास' पूर्ण रूप मे तथा श्रीपाल चरित, परमात्म प्रकाश भाषा टीका एव अध्यात्म बारहखडी का आशिक रूप मे समावेश किया है । इससे गद्य लेखक के रूप मे भी दौलतरामजी प्रकट होते हैं । हिन्दी गद्य के अनुसन्धित्सुओ के लिए इसमे पर्याप्त सामग्री है । इनकी भाषा खडी बोली मिश्रित व्रज भाषा है जिसमे यत्र-तत्र ढू ढाडी की झलक भी दिखाई देती है, किन्तु बहुत ही कम । और निश्चय ही यह मिश्रित भाषा अध्ययन का नवीन बिन्दु उपस्थित करती है । व्रज और खडी बोली मिश्रित ऐसी भाषा के उदाहरण केवल दौलतरामजी की रचनाओ मे ही नही प्राप्त होते, इनसे किंचित् पूर्व हुए पं० टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक की भाषा भी ऐसी ही है । दोनो की भाषा मे अतर इतना है कि जहां टोडरमलजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक की भाषा मे व्रजी अपेक्षाकृत प्रधान है, वहा दौलतरामजी की भाषा में व्रज और खडी बोली दोनो का बराबर सा मिश्रण है । ढू ढाडी का हलका पुट दोनो की ही भाषाओ मे है, जो दोनो के इस क्षेत्र के निवासी होने

के कारण स्वाभाविक ही था। खडी बोली और ब्रज भाषाओ के विकास क्रम मे इस प्रकार की भाषा का प्रचलन, उसकी मुख्य-मुख्य कृतिया और उसके समय विशेष के स्वरूप तथा मानक खडी बोली के विकास क्रम मे उसका योगदान, अध्ययन के वे नए आयाम हैं, जिनकी ओर शोधार्थियों का ध्यान जाना चाहिए। यह जहाँ हमारी सास्कृतिक परम्पराओ के प्रसार का द्योतक है, वहा तदयुगीन एक सामान्य भाषा की आवश्यकता पूर्ति की ओर उल्लेखनीय कदम भी।

दौलतरामजी का काव्य जैन धर्म से प्रभावित तो है किन्तु उनकी कृतियो मे सुन्दर काव्यत्व के भी दर्शन होते है। जैन काव्यो की चरित परम्परा मे उनके 'जीवन्धर स्वामी चरित', 'श्रेणिक चरित' और श्रीपाल चरित उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ये अधिकाश मे पद्यात्मक कृतियाँ है, तथापि अनेक स्थलो पर रूप, स्थिति और मनोभावनाओ के मोहक चित्र इनमे मिलते हैं। काव्य, अध्यात्म और रूप की दृष्टि से दौलतरामजी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाए विवेक-विलास और अध्यात्म-बारहखडी है। ये दोनों कृतियाँ हिन्दी की दो विशिष्ट परम्पराओ-रूपक काव्य तथा कक्को काव्य या बावनी काव्य या बारह खडी काव्य परम्परा की न केवल महत्वपूर्ण कृतिया ही हैं, अपितु उनके प्रौढ रूप का दिग्दर्शन कराती हैं। विवेक विलास मे ६२४ दोहे है, जो दोहा काव्य परम्परा मे भी विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। जैन कवियो द्वारा लिखित रूपक या प्रतीक काव्य की परम्परा पुरानी है। हिन्दी में पन्द्रहवी शताब्दी उतरार्ध के आरभ में राजशेखर सूरि रचित 'त्रिभुवन दीप प्रबन्ध' (अपर नाम प्रबोध चिन्तामणि या परमहस प्रबन्ध) इस प्रकार की एक महत्वपूर्ण रचना है। इस परम्परा में जैन और जैनेतर सभी कवियो ने योगदान दिया है किन्तु सर्वाधिक कृतियाँ जैन कवियो की ही मिलती है। जैनेतर कवियों में इस कोटि की रचना अधिकाशत विभिन्न सम्प्रदायो के कवियो ने अध्यात्म-दृष्टि से की हैं, जिनमें विष्णोई कवि सुरजनदासजी कृत 'ज्ञान महातम' और 'ज्ञान तिलक' तथा सेवादास रचित 'पिसण सघार,' प्रबन्धाभास बडे रूपक काव्य हैं। ६२४ दोहो में रचित विवेक विलास इस परम्परा की सर्वाधिक बडी और महत्वपूर्ण रचना है। इसी प्रकार कक्को या बारहखडी काव्य भी बहुत लिखा गया है जिसमें जैनेतर कवियो का योगदान, रूपक काव्यो की तुलना मे बहुत ज्यादा है। ऐसी काव्य परम्परा में प्रस्तुत कवि की अध्यात्म बारहखडी का महत्त्व स्वय स्पष्ट है।

पाठ सपादन और व्याख्या के क्षेत्र मे भी दौलतराम जी के परमात्म-प्रकाश भाषा टीका का विशेष महत्व है। इसमे उन्होने परमात्म प्रकाश के पाठ के साथ प्रत्येक छन्द की विस्तार से टीका, जिसे व्याख्या कह सकते हैं, की है। इस कृति के पाठ-सपादन के लिए दौलतरामजी द्वारा प्रस्तुत किया गया पाठ

भी विचारणीय सिद्ध हो सकता है। इसके जो दो उदाहरण प्रकाशित 'टीका' मे दिए गए हैं, उनको डा० ए० एन० उपाध्ये सपादित 'परमात्म प्रकाश' से मिलाने पर शब्दान्तो मे कुछ अन्तर प्रतीत होता है। डा० उपाध्ये के सवधित पाठ मे जहा 'भासश्रो', 'दिव्व-काश्रो', 'दिव्व-जोश्रो, शब्द हैं, वहा इस टीका मे उनके स्थान पर क्रमश भासउ, दिव्वकाउ, तथा दिव्व जोउ शब्द हैं। शब्दान्त मे 'श्रो' श्रौर 'उ' के ये प्रयोग स्वर परिवर्तन के लेखन-प्रमाद के कारण भी हो सकते है श्रौर भापा-प्रवृति भी। यदि इसकी विभिन्न प्रतियो के तुलनात्मक श्रध्ययन से यह सिद्ध हो कि इस भाषा टीका का पाठ एक, विभिन्न परम्परा या उप परम्परा का है, तो निस्सन्देह इसका महत्व वढ जाएगा। श्रर्थो का स्पष्टीकरण टीका मे विस्तार से किया गया है जो इसके श्रध्येताश्रो को मूल मतव्य को हृदयगम कराने मे सहायता देता है। सदेश रासक को समझने के लिए जैसे लक्ष्मीचन्द्र कृत टिप्पणक रूपा व्याख्या तथा दूसरी टीका जिसे श्रवचूरिका कहा गया है, का जो महत्व है, वैसा ही महत्व परमात्मप्रकाश को समझने के लिए दौलतराम कासलीवाल की इस भाषा टीका का है। यहा यह कहना अप्रासगिक नही होगा कि श्रपभ्रश काव्यो को समझने के लिए ऐसी टीकाश्रो का श्राज वडा महत्व है। श्रपभ्रश की ही नही, हिन्दी की वहुत सी पुरानी कृतियो को भी यदि उनकी टीकाए उपलब्ध होती, तो श्रौर भी श्रच्छी तरह समझा जाता। राठौड पृथ्वीराज की 'वेलि क्रिसन रुक्मणी' का भावार्थ उसकी ऐसी विभिन्न टीकाश्रो के कारण ही हमको प्रधानत सुलभ हुश्रा है।

मध्ययुगीन काव्यो मे श्रनेक कथानक रुढियो का प्रयोग हुश्रा है। जैन काव्यो मे भी विभिन्न श्रवसरो पर कथा को वाछित मोड देने मे इनका प्रयोग किया गया है। दौलतराम जी के उल्लिखित चरित काव्यो मे उनका प्रभूत प्रयोग हुश्रा है। इस दृष्टि से यह एक स्वतन्त्र श्रध्ययन का विषय है। तत्कालीन समाज श्रौर कतिपय स्थानो तथा व्यक्तियो के नामोल्लेख दौलतराम जी की रचनाश्रो मे किए गए मिलते हैं। इससे उनके समय के समाज को विशेषत जैन समाज को समझने का माध्यम तो मिलता ही है, साथ ही उस समय के श्रन्य जैन विद्वानो श्रौर कवियो का उल्लेख, जैन साहित्यिक परम्परा का द्योतन तथा उल्लिखित लोगो के विषय मे श्रध्ययन करने की हमारी इच्छा को जाग्रत करता है।

एक उल्लेखनीय वात यह है कि दौलतराम जी ने श्रपनी भाषा को 'देश भाषा' की सज्ञा दी है। प्राय सभी हिन्दू कवियो ने श्रपनी भाषा-द्योतन के लिए ऐसे या ऐसे ही श्रन्य प्रयोग किए हैं। 'देश भाषा' प्राकृत भाषा या भाषा के ऐसे उल्लेख, मुसलमान कवियो द्वारा लिखी गई की खडी वोली रचनाश्रो के

लिए प्रयुक्त हिन्दी, हिन्दवी आदि के सदर्भ मे कुछ विचारणीय सकेत उपस्थित करते हैं। खडीबोली प्रसार के प्रसग मे ऐसे सकेतो द्वारा द्योतित भाषा और उसकी मूल प्रवृत्ति का अध्ययन, ऐतिहासिक और सास्कृतिक दृष्टि से किया जाना नितान्त आवश्यक है। इससे हिन्दी की उल्लिखित सभी भाषाओ विशेषत खडी बोली के सबन्ध मे महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलेगे।

डा० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल ने अपनी वृहद् प्रस्तावना मे दौलतरामजी और उनकी कृतियो पर तो अनेकविध प्रकाश डाला ही है, तत्कालीन विद्वत्-मडली और विभिन्न कवियो का भी सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित परिचय दिया है, जो मूल रूप मे पठनीय है। दौलतराम जी का समय सवत् १७४९ से १८२९ तक अर्थात् अठारहवी शताब्दी उतरार्ध और उन्नीसवी का पूर्वार्द्ध था। इस प्रकार, डा० कासलीवाल जी की प्रस्तावना से उस समय के अन्य महत्वपूर्ण कवियो का परिचय भी प्राप्त हो जाता है। इस समय से सबन्धित जैन साहित्य पर शोध कार्य करने वालो के लिये एक आधार भूमि इस प्रस्तावना मे मिलती है।

डा० कासलीवाल लगभग पिछले २५ वर्षों से किसी न किसी रूप मे साहित्य सेवा करते रहे हैं। हिन्दी ससार उनकी विभिन्न कृतियो और लेखो के माध्यम से उनसे परिचित है। अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ उन्होंने साहित्य ससार को प्रदान की हैं। जिन तथ्यो, साहित्यिक मान्यताओ और परम्पराओ को उन्होने साकार रूप दिया है, उनसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानो ने अपने मत-मतान्तरो मे सशोधन किए है। अनेक शोधार्थियो को उनकी रचनाओ से नवीन क्षेत्र, आधार भूमि, प्रेरणा और सम्बल मिला है। बिना किसी प्रकार का शोर-गुल किए वे एकान्त भाव से साहित्य साधना मे लीन और 'असूर्यपश्य' रचनाओ को हमारे सम्मुख रख रहे हैं। स्वत प्रेरणा के स्रोत और धुन के धनी डा० कासलीवाल जैसे साहित्य साधक और शोधक कम ही मिलेंगे। उनकी सभी कृतियो का साहित्य ससार मे बहुत अच्छा स्वागत हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनका यह ग्रन्थ यथारुचि, साहित्यिक और धर्मभाव-तुष्टि के अतिरिक्त मनन और शोध का आधार बनेगा तथा इसका उन अनेक दृष्टियो से अध्ययन किया जाएगा जिनका किंचित् सकेत-उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

ऐसी महत्वपूर्ण और सुन्दर कृति के प्रकाशन के लिए डॉ० कासलीवाल तथा श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के मत्री एव प्रबन्ध कारिणी के समस्त सदस्य हिन्दी ससार की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं।

डा० हीरालाल माहेश्वरी

आभार

१८वी शताब्दी के महाकवि दौलतरामजी कासलीवाल के जीवन एव साहित्य पर आधारित पुस्तक पाठको के समक्ष प्रस्तुत है। महाकवि ने हिन्दी साहित्य की जो महान् सेवा की थी उसी पर इसमे प्रकाश डाला गया है। "दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व एव कृतित्व" पुस्तक प्रकाशन के लिये मैं श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सभी सदस्यो एव विशेषत उसके अध्यक्ष श्री मोहनलाल जी सा० काला एव मत्री श्री सोहनलाल जी सा० सोगाणी का आभारी हूँ। जैन साहित्य के सरक्षण एव प्रकाशन की ओर आप दोनो की ही काफी रुचि है जो सर्वथा स्वागत योग्य है।

पुस्तक के प्रस्तुतीकरण मे प० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का जो पूर्ण सहयोग मिला है इसके लिये मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ। कवि के जीवन्धर चरित को खोज निकालने का श्रेय भी आपको है। मैं मेरे अन्य सहयोगी श्री प्रेमचन्द राँवका एम ए रिसर्च स्कालर का भी आभारी हूँ जिन्होने कवि के ग्रन्थो की प्रेस कापी करने में पूर्ण सहयोग दिया है। जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री भवरलाल जी बज का भी आभारी हूँ जिनके शास्त्र भण्डार के गुटके में हमें कवि का जन्मलगन प्राप्त हुआ है। इसी तरह पाण्डे लूणकरणजी के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी बागायत वालो का भी आभारी हूँ जिनके शास्त्र भण्डार की विवेक विलास की एक मात्र पाडुलिपि का पुस्तक में उपयोग किया गया है। इसी तरह उदयपुर के दि० जैन अग्रवाल मदिर के व्यवस्थापक डा० मोहनलाल जी जैन का भी मैं आभारी हूँ जिनके मदिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत जीवन्धर स्वामि चरित की एक मात्र पाण्डुलिपि का हमने उपयोग किया है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि कवि की मूल पाण्डुलिपि है। श्री बा० राजमलजी गोधा व्यवस्थापक मदिर जी ठोलियान् का भी मैं आभारी हूँ जिनकी अध्यात्म बारहखडी की प्रति का इसमें उपयोग किया गया है। मैं प० भवरलालजी पोल्याका जैनदर्शनाचार्य का भी उनके सुझावो के लिए आभारी हूँ।

मैं आदरणीय डा० हीरालाल जी माहेश्वरी का भी पूर्ण आभारी हूँ, जिन्होने प्रस्तुत पुस्तक पर महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखने की महती कृपा की। डा० माहेश्वरीजी राजस्थानी भाषा के अधिकारी विद्वान् हैं और जैन विद्वानो द्वारा लिखी हुई हिन्दी एव राजस्थानी कृतियो को साहित्य के इतिहास में उचित स्थान मिले इस ओर वे प्रयत्नशील है।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानो का आभारी हूँ जिन्होने प्रस्तुत पुस्तक पर अपनी महत्वपूर्ण सम्मति भेज कर इसके महत्व पर प्रकाश डाला है।

डा० कस्तूरचद कासलीवाल

प्रस्तावना

हिन्दी के विकास मे राजस्थानी जनता एव यहा के कवियो का विशेष योगदान रहा है । १०वी शताब्दि के पहले से ही अपभ्र श और फिर राजस्थानी भाषा के माध्यम से हिन्दी की जितनी सेवा यहा के निवासियो एव विद्वानो ने की थी, वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो मे अ कित रहेगी । अपभ्र श भाषा के बहुर्चचित कवि धनपाल राजस्थानी विद्वान थे । जिनकी "भविसयत्त कहा" कथा साहित्य की बेजोड कृति है। इसी तरह 'धम्मपरिक्खा' के रचयिता हरिषेण' राजस्थानी महाकवि थे । जिन्होने मेवाड देश को जन सकुल लिखा है । लघु कथाओ को धार्मिक पुट देकर जनप्रिय बनाने मे इन कवियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इसी तरह आचार्य हरिभद्रसूरि चित्तौड के थे, जिन्होने प्राकृत एव अपभ्र श मे कितनी ही कृतियो को प्रस्तुत करके हिन्दी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया था । हिन्दी की जननी अपभ्र श राजस्थान की अत्यधिक लोकप्रिय भाषा रही थी ओर यही कारण है कि इस भाषा की अधिकाश पाण्डुलिपिया राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो मे आज भी सुरक्षित हैं । अबतक अपभ्र श की छोटी बडी ५०० कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं । जिनमे अधिकाश राजस्थान के शास्त्र-भण्डारो मे सग्रहीत है । जब जनता सस्कृत एव प्राकृत से ऊब चुकी की, तब उसने अपभ्रश का सहारा लिया और उसी का आगे चलकर हिन्दी के रूप में विकास हुआ । सवत् १३५४ में रचित जिणदत्त चरित' इसका स्पष्ट उदाहरण है । यह काव्य अपभ्र श एव हिन्दी के बीच की कडी का काव्य है । अपभ्र श ने धीरे-धीरे हिन्दी का स्थान किस प्रकार लिया, वह अपभ्र श के उत्तरकालीन काव्यो से जाना जा सकता हैं । इसी तरह सधारु कवि रचित प्रद्युम्न चरित (स० १४११) का नाम भी लिया जा सकता है । इन काव्यो मे हिन्दी के ठेठ (तद्भव) शब्दो का प्रयोग भाषा विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय है ।

हिन्दी का आदिकालिक इतिहास राजस्थान के कवियो का इतिहास है । वह यहा की जनता की भाषा का इतिहास है । रासो काल के नाम से जो काल निर्देश किया जाता है, वह सब राजस्थानी कवियो की ही रचनाओ के कारण है । रासो साहित्य यहा के आदिकालिक कवियो का प्रधान साहित्य है । यद्यपि जनप्रिय कवियो ने काव्य की अन्य शैलियो में भी खूब लिखा है, लेकिन

उसमे भी रासो साहित्य की ही प्रधानता है। शालिभद्र सूरि का "भरतेश्वर वाहुवलि रास" सभवत इस काव्य विधा की प्रथम रचना है। इसके पश्चात् "स्थूलिभद्र रास" (सवत् १२०९),"चन्दनबाला रास" (१२५७ सन्) "रेवन्त गिरि रास", 'नेमिनाथ रास' जैसे पचासो रास सज्ञक काव्य लिखे गये, जिन्होने जनता मे पहुँच कर हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने मे अपना पूरा योग दिया। प्रो० रामचन्द्र शुक्ल एव डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के आदिकाल का स्वरूप जिस रूप मे स्वीकार किया है, उसे सवारने में जैन कवियो ने विशेष रुचि ली थी। एक ओर तो इन कवियो ने अपनी सशक्त लेखनी से देश के वीरो के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित की तथा दूसरी ओर राजस्थानी कवियो के प्रति वीर रसात्मक काव्य लिखने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट की। लेकिन जैन कवि एक ही धारा से चिपके नही रहे। उन्होने ऐसे काल मे भी आध्यात्मिक, भक्ति परक एव नीति परक काव्य लिखकर अपनी जनप्रिय दृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत किया। आदिकालिक कृतियो मे मुनि रामसिंह का "दोहा पाहुड" एक महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें अध्यात्म, भक्ति एव नीति के साथ ही तत्कालीन समाज की परम्पराओ पर भी आक्षेप किये गये हैं। डॉ० हीरालाल जैन के अनुसार यह सन् १००० की कृति है, जिसमे २२२ दोहे हैं। रामसिंह राजस्थानी कवि थे और अध्यात्म प्रचार एव समाज सुधार मे उनकी गहरी अभिरुचि थी। योगीन्दु कवि का 'योगसार' एव 'परमात्म-प्रकाश' अध्यात्म साहित्य की अनुपम कृतिया हैं।

आदिकाल के पश्चात् मध्यकाल मे राजस्थानी विद्वानो की हिन्दी सेवा का क्रम अधिक जोर से चला। इस काल के विद्वानो ने दो नाम दिये हैं पहला भक्तिकाल और दूसरा रीतिकाल। इस काल मे राजस्थान मे मीरा, दादूदयाल, ब्रह्म जिनदास, भट्टारक रत्नकीर्ति कुमुदचन्द्र, ज्ञानभूषण, दौलतराम जैसे कवि हुए, जिन्होने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने मे सर्वाधिक योग दिया। इन कवियो ने हिन्दी को जन भाषा नाम देकर तथा उसमे सैकडो कृतिया लिखकर उसे झोपडियो तक पहुचाने मे अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। हिन्दी मे काव्य, चरित, रास, फागु, वेलि, चौपई, दोहा आदि के रूप मे सैकडो हजारो कृतियो को लिखकर उसे लोकप्रिय बनाया। एक ओर मीरा जैसी सन्त कवयित्री कृष्ण की भक्ति मे तल्लीन होकर भक्ति रस से ओत-प्रोत एव गेय सुलभ पदो की रचना करने लगी तो दूसरी ओर जैन कवियो द्वारा अध्यात्म, भक्ति एव नीति परक रचनाए लिखकर साहित्य की त्रिवेणी को पल्लवित किया। राधाकृष्ण के समान नेमि-राजुल के पदो का निर्माण हुआ,

और उनमे शृगार एव विरह की कहानी कही जाने लगी। फागु, रास एव वेलि परक रचनाओ मे खुलकर शृगार रस का प्रयोग हुआ। भक्ति एव रीतिकाल मे राजस्थान के जैन कवियो ने एक विशाल साहित्य की सर्जना की, लेकिन अभी उसके शताश का भी मूल्याकन नही हो सका है। अभी तो केवल बनारसीदास, भूधरदास जैसे कवियो का नामोल्लेख मात्र हुआ है और शेष सारा साहित्य समालोचको, विद्वानो एव गवेषको की दृष्टि से अछूता पडा हुआ है।

मध्यकाल मे हिन्दी पूर्णत जन भाषा बन चुकी थी और संस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रश भी सामान्य जन की समझ के बाहर हो चुकी थी। जैनाचार्य एव विद्वान् जनता की मनोभावना को पहिचान चुके थे। इसलिए उन्होने १६ वीं शताब्दी से ही संस्कृत प्राकृत ग्रन्थो की हिन्दी वचनिकाए लिखना प्रारम्भ कर दिया, जिससे उनकी रचनाए घर-घर पहुचने लगी। उनकी न केवल धार्मिक दृष्टि से, अपितु साहित्यिक दृष्टि से भी परख होने लगी। आगरा, कामा, उदयपुर एव जयपुर मे ऐसी ही सैलियां, जिन्हे आजकल के शब्दो मे गोष्ठियो का नाम दिया जा सकता है, चलती थी। हिन्दी भाषा मे वचनिकाए लिखने वाले कवि जनप्रिय कवि बन गये और उनकी कृतियो का प्रचार-प्रसार घर-घर तक पहुच गया।

ऐसे ही जनप्रिय कवियो मे महाकवि दौलतराम का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। कविवर दौलतराम का जन्म उस समय हुआ था, जब कबीर दास, मीरा, सूरदास, तुलसीदास एव बनारसीदास जैसे कवि लोकप्रिय हो चुके थे और इसके साथ ही हिन्दी भाषा की नीव भी सुदृढ होती जा रही थी। मीरा एव सूरदास के पद, रामायण की चौपाइया तथा बनारसीदास के नाटक समयसार के छन्द मन्दिरो मे, घरो मे एव राजपथो पर चलते-चलते गाये जाने लगे थे और सामान्य जनता भी उनके प्रचार-प्रसार के लिए कृत सकल्प हो चुकी थी। प्राकृत एव संस्कृत ग्रथो की भाषा वचनिकाए लिखी जाने लगी थी और सामान्य पाठक उन्हे चाव से पढने लगा था। जैन कवियो का प्रमुख केन्द्र उत्तर प्रदेश से हटकर राजस्थान बन चुका था। ऐसे उपयुक्त वातावरण मे कविवर दौलतराम का जन्म हुआ।

महाकवि दौलतराम का जन्म राजस्थान की एक बडी रियासत जयपुर के तहसील स्तर के ग्राम बसवा मे हुआ। बसवा[1] राजस्थान के प्राचीन नगरो

१ बसवा जयपुर से १०३ किलोमीटर एव देहली से २०५ किलोमीटर दूरी पर स्थित है।

मे गिना जाता है । जो देहली से अहमदावाद जाने वाली पश्चिमी रेल लाइन पर एक स्टेशन है । कवि ने अपनी कृतियो मे वसवा का नामोल्लेख किया है किन्तु न उसे ग्राम लिखा और न नगर । वैसे राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो मे वसवा मे लिपिवद्ध किये हुए कितने ही ग्रथ मिलते हैं इनमे "त्रिलोक चौवीसी पूजा" की प्रतिलिपि स० १७०४ मे वसवा मे ही लिखी हुई उपलब्ध होती है । सवत् १७३३ मे त्रिलोकसार की पाण्डुलिपि भी अपने आप मे उल्लेखनीय है । स्वय कवि ने "वसवै वास हमारी जानि" कहकर अपने प्रथम निवास स्थान का 'पुण्यास्रव कथाकोश' की अन्तिम पुष्पिकाओ मे वर्णन किया है इनके घर के सामने ही जिन मन्दिर था । रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे वसवा को मध्यप्रदेश का नगर माना है, जो सही नही है ।

दौलतराम का जन्म सवत् १७४६ की आषाढ बुदी १४ को हुआ[१] । इनका जन्म नाम वेगराज था । इनके पिता का नाम आनन्दराम एव पितामह का नाम घासीराम था[२] । ये खण्डेलवाल जाति एव कासलीवाल गोत्र के दि० जैन श्रावक थे[३] । कवि ने अपनी माता के नाम का कही भी उल्लेख नही किया । इनका बाल्यकाल कैसे बीता, कहाँ तक अध्ययन किया और ये किसके पास पढे इन सब के बारे मे कवि मौन है किन्तु इनके पिता के उच्च पद पर कार्य करने के कारण इनकी भी शिक्षा अच्छी हुई होगी । और ऐसा लगता है कि इन्हे सस्कृत, प्राकृत एव हिन्दी इन तीनों ही भाषाओ की उत्तम शिक्षा मिली थी । धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन भी इन्हे कराया गया होगा । इनकी विद्वता एव गहन अध्ययन के कारण ही वे आगरा की 'अध्यातम सैली' के लोकप्रिय सदस्य बन गये थे ।

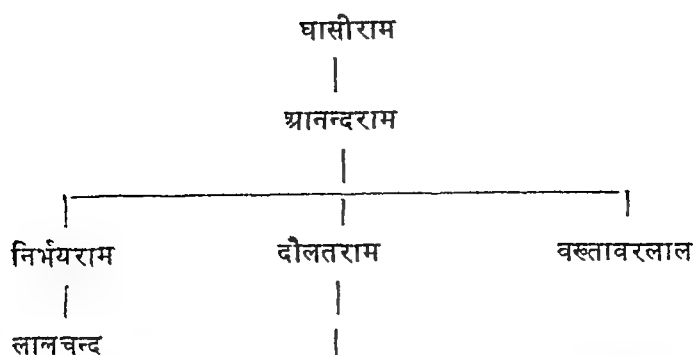
परिवार —कवि के परिवार का विवरण निम्न प्रकार दिया जा सकता है ।

---

१ देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची चतुर्थभाग— पृष्ठ सख्या २८३

२ दौलतराम आनन्दराम का घासीराम का दिवाण श्री महाराजकवार माधोसिंह का । राजस्थान राज्य अभिलेखागार रजिस्टर कौमवार स० २१ पृष्ठ सख्या ७४८

३ जात वानिया श्रावक सोय, खण्डेलवाल जानहु सब कोय ।
अलि कहिए कासलीवाल आनन्दराम सुत वचन रसाल ।। ६२ ।।
पुण्यास्रव कथाकोश



कवि के पिता आनन्दराम भी जयपुर महाराजा की सेवा मे थे और जोधपुर के महाराजा अभैसिह के पास जयपुर महाराजा की ओर से देहली मे रहते थे।

इनका निधन सवत् १७९२ की आषाढ सुदी १४ को हुआ।[४] जब कवि की आयु ४३ वर्ष की थी। कवि के पिता की मृत्यु के पश्चात इनके वडे पुत्र एव कवि के वडे भाई निर्भयराम को जयपुर महाराजा की ओर से मातमी का सिरोपाव देहली भेजा गया था। ऐसा राजस्थान राज्य अभिलेखागार मे सग्रहीत रिकार्ड मे उल्लेख मिलता है। निर्भयराम भी अपने पिता के समान देहली मे महाराजा की ओर से अभैसिह के पास ही रहते थे। कवि के छोटे भाई वख्तावरलाल के वारे मे विशेष उल्लेख नही मिलता।

कवि के ६ पुत्र थे। चार पुत्रो का उल्लेख तो स्वय कवि ने अध्यात्म वारहखडी के इकारान्त वर्णन मे किया है जो निम्न प्रकार है —

ई मे श्री जी की भक्ति प्रार्थना आइ कवि का कवीला को नाव आयो। आनन्द पिता दौलति इत्यादि पुत्र अजितदास इत्यादि चारि दौलति का पुत्र इति इकारावर स्तुति सम्पूर्ण"।

ऐसा लगता है कि उक्त चार पुत्र अध्यात्म वारहखडी की समाप्ति तक (सवत् १७९८ तक) हो गये थे। शेष दो पुत्र जोधराज एव गुलावदास वाद मे हुए होंगे। जोधराज अपने पिता के समान ही साहित्यिक व्यक्ति थे। इन्होने सवत् १८८४ मे कामा मे सुखविलास नामक विशाल सग्रह ग्रन्थ की रचना की थी। इस कृति मे इन्होने अपने आपका निम्न प्रकार परिचय दिया है —

४ देखिये दस्तूर कोमवार राजस्थान अभिलेखागार वीकानेर S No 1252

दौलत सुख कामा बसै, जोध कासलीवाल।
निज सुख कारन यह कियो, सुखविलास गुणमाल ।।

कवि के छठे पुत्र गुलाबदास काअभिलेखागार के रिकार्ड मे दौलतराम का पुत्र एव आनन्दराम का पौत्र के रूप मे उल्लेख आया है । इन्हे सवत् १८२० व सवत् १८२४ मे जयपुर महाराजा द्वारा सम्मानित किये जाने का उल्लेख भी मिलता है । इनके एक पुत्र सहजराम भी महाराजा जयपुर की सेवा मे थे और सवत् १८२८ मे इन्हे भी गावो का पूरा लगान जमा कराने के कारण सिरोपाव देकर सम्मानित किया गया था ।

दौलतराम का प्रथम पुत्र अजीतदास था जो अपने पिता एव पितामह के समान जयपुर महाराजाओ का अत्यधिक कृपापात्र था । तथा जिसे उसकी कार्यकुशलता के कारण समय समय पर सम्मानित किया गया था । अजीतदास का सर्वप्रथम उल्लेख सवत् १८०१ का मिलता है जब उन्हे वहात्र परगना की वसूली का काय कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने के कारण सिरोपाव दिया गया।

सवत् १८०४ मे उन्हे राज्य सेवा मे सिरोपाव से सम्मानित करके उदयपुर भेज दिया गया गया । इस समय स्वय कवि दौलतराम भी वही थे । ऐसा मालूम पडता है कि इसके एक दो वर्ष बाद ही दौलतराम जयपुर आगये और उनके स्थान पर अजीतदास कार्य करने लगे । सवत् १८०८ मे अपने ही गाव बसवा की वसूली का काय इन्हे दिया गया और इसके उपलक्ष मे इन्हे फर सिरोपाव दिया गया । इसके पश्चात् पुन सवत् १८१२ मे वहात्र परगना एव सवत् १८१८ मे कारणोड परगने की वसूली का कार्य करने के कारण इन्हे सम्मानित किया गया । सवत् १८२१ मे कविवर दौलतराम की पौत्री एव अजीतदास की पुत्री का विवाह हुआ जिसमे महाराजा जयपुर की ओर से ३००) की सहायता दी गई ? सवत् १८२४ मे दौलतराम के आग्रह से इन्हे मरहठा सरदार रघुनाथराव के पास भेजा गया तब इन्हे हाथी वगैरह पारितोषिक मे दिया गया । इस प्रकार अजीतदास, जोधराज एव गुलाबदास के अतिरिक्त शेष तीन पुत्रो के बारे मे कोई जानकारी नही मिलती ।

युवा होने पर महाकवि दौलतराम को एक बार कार्यवश आगरा जाना पडा । बसवा से आगरा १०० मील से कुछ अधिक दूर है । आगरा उस समय

उत्तर भारत का प्रमुख नगर था। मुगल शासकों की राजधानी होने के कारण वह व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। लेकिन इन सबके अतिरिक्त वह सास्कृतिक नगर भी था। और अध्यात्मिक सैली का केन्द्र भी। महाकवि बनारसीदास का स्वर्गवास हुए ७० वर्ष मे भी अधिक हो गये थे लेकिन उनके द्वारा स्थापित अध्यात्म शैली पूर्ववत चल रही थी। इस सैली मे कविवर भूधरदास का व्यक्तित्व उभर रहा था। दौलतराम जब आगरा पहुचे तो वे इस सैली के सहज ही मे नियमित सदस्य बन गये और जब तक आगरा रहे, तब तक वे आध्यात्मिक सैली मे बराबर जाते रहे। अपनी प्रथम कृति "पुण्यास्रव कथाकोश" मे उन्होने आध्यात्म सैली एव उनके सदस्यो का विस्तृत वर्णन दिया है। कुछ समय पश्चात् वे इस सैली के प्रमुख सदस्य बन गये। उनकी विद्वता एव काव्य प्रतिभा के सभी प्रशसक हो गये। वे स्वय शास्त्र पढने लगे और श्रोताओ को उन्होने अपनी व्याख्यान शैली से मुग्ध कर लिया। जब उन्होंने महापुराण का स्वाध्याय समाप्त किया तो श्रोताओ ने उन्हे स्वतन्त्र काव्य लिखने की प्रेरणा दी और सर्व प्रथम उन्होने आगरा रहते हुए ही सवत् १७७७ मे 'पुण्यास्रव कथाकोश' की रचना समाप्त की।

कवि आगरा मे कितने वर्षो तक रहे-इसका उन्होने कही भी उल्लेख नही किया। लेकिन ऐसा लगता है कि जयपुर स्थापना के पूर्व ही वे बसवा लौट आये और यहा कुछ समय अपने परिवार के साथ रहने के पश्चात वे जयपुर आगये। यह समय कोई स० १७८५-८६ के लगभग का होगा।

जयपुर नगर का विकास तेजी से हो रहा था। बाहर से आने वाले विद्वानो, साहित्यकार ... दियो एव अन्य विद्या मे पारगत विद्वानो को ससम्मान जयपुर मे बसाया जा रहा था। ऐसे ही समय मे इन्हे भी जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिह ने अपनी सेवा मे बुला लिया और सर्वप्रथम सवत् १७८७ आषाढ बुदी ८ के शुभ दिन इन्हें जोधपुर के महाराजा अभैसिह की सेवा मे मथुरा भेजा गया। मथुरा जाने के पूर्व इनका सम्मान करने हेतु ४१।) रुपये का सिरोपाव दिया गया[1]। कवि की सूझ बूझ, प्रतिभा एव कार्य कुशलता के कारण इन्हे सवत् १७९३ की पोषबुदी दशमी के दिन

१ सवत् १७८७ मिती अषाढ वदी ८ मुकाम मथुरा जो मुसारन अलह ने अभैसिह कने भेज्यो तीने अजरुप महरबानगी सिरोपाव कीमती साबिक ४१।) थान ३ राजस्थान राज्य अभिागार रजिस्टर कोमवार पृष्ठ सख्या 748।

महाराजा कुमार माधोसिंह की सेवा मे उनके दीवान के रूप मे उदयपुर भेज दिया गया और सम्मान सूचक सिरोपाव दिया। उदयपुर जाने के पश्चात कवि को अपनी कार्य कुशलता दिखाने का अच्छा अवसर मिल गया। इनकोसेवाओ से प्रसन्न होकर महाराजा जयपुर ने सवत १७९४ एव १८०० मे उदयपुर मे ही सिरोपाव भेजकर इनकी सेवाओ का मूल्याकन किया। सवत् १८०३ मे जव कवि उदयपुर दरवार मे जयपुर महाराजा की ओर से वकील थे तो दरवार के खर्च के लिये इन्हे १५०) भेजे गये। त्रेपन क्रियाकोश मे इन्होने अपने आपको "आनन्द सुत जयसुत को मत्री जय को अनुचर" लिखकर एव जीवधर स्वामी चरित मे "दौलतराम उकील पुत्र आनन्द को होई" लिखकर अपना परिचय दिया है।

आगरा के समान उदयपुर मे भी ये तत्कालीन समाज समाज मे सम्मानित व्यक्ति माने जाने लगे थे। नगर की धानमडी के दि० जैन अग्रवाल मन्दिर मे ये प्रतिदिन जाते थे। इन्होने आगरा के समान उदयपुर मे भी एक आध्यात्मिक सैली स्थापित की और स्वय ही शास्त्र प्रवचन करने लगे। यहा आने के कुछ ही वर्षों के पश्चात् इन्होने 'त्रेपन क्रियाकोश' की रचना की। यह ग्रथ कवि की स्वतन्त्र कृति है, जिसमे श्रावको के आचार-धर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'त्रेपन क्रियाकोश' के पश्चात् वे 'अध्यात्म वारहखडी' की रचना मे लग गये। यह कवि की सवसे वडी पद्यात्मक कृति है। भक्ति एव अध्यात्म की इस अनूठी कृति को लिखने मे कितना समय लगा होगा। इन्होने सवत् १७९८ मे इसे विशाल कृति को समाप्त करके अपनी साहित्यक प्रतिभा के चार चाद लगा दिये। इस कृति के निर्माण ने कवि की यशोगाथा और भी फैल गयी और अब उनकी चर्चा चारो ओर होने लगी। वारहखडी सज्ञक रचनाओ मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है और कवि के विशाल ज्ञान का परिचयाक है। उदयपुर उनके लिये वरदान सिद्ध हुआ और साहित्यिक क्षेत्र मे उन्होने यहा रहते हुए महान् सेवायें की। स० १८०५ मे उन्होंने "जीवधर चरित" नामक प्रवन्ध काव्य को समाप्त किया, जिसके निर्माण का आग्रह वही के कुछ श्रवको ने किया था। इसके पश्चात ये और भी साहित्यिक सेवा मे लग गये। "जीवन्धर चरित" हिन्दी का प्रवन्ध काव्य है जिसमे कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। कवि का उदयपुर मे बहुत सम्मान था। शासक एव शासित दोनो ही वर्गों मे ये लोकप्रिय थे। वक्तृत्व शक्ति के धनी थे तथा तथा लेखन शक्ति इन्हे जन्म से ही प्राप्त थी। इसीलिये उदयपुर प्रवास मे ये वहा सर्वप्रिय वन गये। स्वय उदयपुर महाराणा की इन पर विशेष कृपा

थी। तत्कालीन महाराणा जगतसिंह की विशेष कृपा का इन्होने निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

रहे राण के पास, राण अति किरपा करई।
जानै नीकौ ताहि, भेद भाव जु नहि धरई॥

इसके पश्चात् कवि कितने वर्षो तक उदयपुर और रहे, इसकी उनकी रचना के आधार पर कोई निश्चित जानकारी नही मिलती, लेकिन सवत् १८०७ तक वे जयपुर आगये होगे—ऐसा जान पडता है। क्योंकि इसी वर्ष महाराजा सवाई माधोसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे थे और इन्ही महाराजा के कवि मन्त्री रह चुके थे।

जयपुर आने के पश्चात् वे पुन जयपुर महाराजा की सेवा मे रहने लगे। राज्य सेवा के अतिरिक्त उन्होंने अपना शेष जीवन साहित्य सेवा मे समर्पित कर दिया। इसी समय यहा प० टोडरमल का व्यक्तित्व उभर रहा था। वे महान् क्रान्तिकारी समाज-सुधारक थे, साथ ही मे सिद्धान्त ग्रन्थो के महान् ज्ञाता थे। उनकी वाणी मे जादू था तथा उन्होंने अपने पाडित्य से सारे जयपुर को प्रभावित कर लिया था। कविवर दौलतराम का सर्व प्रथम परिचय जब उनसे हुआ तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे गगा–यमुना का सगम हो गया हो। दौलतराम शासन मे थे। महाराजा के अधिक निकट थे। इसलिए उन्होंने अपने आपको सक्रिय समाज सेवा से दूर रखकर साहित्य निर्माण की ओर अधिक लगाया। अब तक उन्होने "पुण्यास्रव कथाकोश" को छोडकर शेष रचनाए प्रमुखत पद्य मे ही निर्मित की थी। लेकिन टोडरमल के प्रभाव के कारण वे भी गद्य की ओर झुके और सवत् १८१६ से लेकर १८२९ तक ८ महान् एव विशालकाय ग्रन्थो की रचना कर डाली। वास्तव मे इतने थोडे से समय मे इतना विशाल साहित्य का निर्माण कर उन्होंने तत्कालीन समाज के बडे–बडे पडितो को आश्चर्य चकित कर दिया।

इनमे श्रीपाल चरित्र एव विवेक-विलास को छोडकर शेष सभी ग्रन्थ हिन्दी गद्य मे लिखे गये। इनमे पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवश पुराण जैसे ग्रन्थ भी शामिल हैं। वास्तव मे इन रचनाओ के माध्यम से उन्होने जनता के स्वाध्याय का क्रम ही बदल दिया और फिर तो सारे देश मे उन्ही के ग्रन्थो का स्वाध्याय होने लगा।

दौलतराम एव टोडरमल का साथ अधिक समय नही रह सका। टोडरमल का स्वर्गवास स० १८२६ के पूर्व ही हो गया इसलिए उनकी अपूर्ण

कृति को भी इन्हे ही पूर्ण करना पडा । कवि टोडरमल की विद्वत्ता मे अत्यधिक प्रभावित थे । इसलिए जब 'पुरुषार्थसिद्धयुपाय' को पूरा करने का प्रश्न आया, तो रतनचन्द दीवान ने अत्यधिक विनय के साथ दौलतराम से प्रार्थना की—

तासु रतन दीवान ने कही प्रीत वर एह ।
करिये टीका पूरण उर पा धरम सनेह ॥
तब टीका पूरण करी भाषा रूप निधान ।

"पुरुषार्थसिद्धयुपाय भाषा" का रचना काल स० १८२७ है ।[1] इसी वर्ष या इसके कुछ समय पहिले इन्होंने "विवेक विलास' जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थ को समाप्त किया और फिर "हरिवंश पुराण" जैसी विशाल गद्य कृति को संवत् १८२९ मे समाप्त किया ।[2] यह कवि की अन्तिम कृति थी ।

इसी वर्ष भादवा सुदी २ को उनका स्वर्गवास हो गया । राजस्थान राज्य अभिलेखागार मे सग्रहीत रिकार्ड के अनुसार फागुन सुदी ११ को कवि के बडे पुत्र अजीतदास की मातमी होने पर राज्य की ओर से सिरोपाव प्रदान किया गया ।[3]

दौलतराम नाम वाले अन्य विद्वान—

दौलतराम के नाम से अब तक जितने प्रसिद्ध विद्वान हुए। उनमे से कुछ प्रसिद्ध विद्वान् निम्न प्रकार हैं—

१ दिलाराम अथवा दौलतराम

ये बूंदी के रहने वाले थे और इन्होने सवत् १७६८ मे दिलाराम

---

१ अट्ठारहसै ऊपरे सवत सत्ताईस
मास मार्गशिर ऋतु शिशिर दोयज रजनीश ॥

२ अट्ठारह सौ सवता, ता पर धर गुणतीस ।
वार शुक्र पून्यो तिथि, चेत मास रति ईस ॥२६॥

३ सवत् १८२९ मिती भादवा सुदि २ वाके मिती फागुण सुदी ११ ने वाबति मुसारन अलह का वाप की मातमी को सिरोपाव बखस्यो कीमती साविक थान ३ ।

विलास एव आत्म-द्वादशी कृतिया लिखी थी। ये पाटनी गोत्र के श्रावक थे तथा पिता का नाम चतुर्भुज था।

२ दौलतराम

ये असनी (फतेहर) के निवासी थे। और इनके पिता का नाम शिवनाथ था। इन्होने लगभग १८९७ में अलकार सग्रह एव कविप्रिया पर टीका लिखी थी। ये जैनेतर विद्वान् थे।

३ दौलतराम

ये मारवाड नरेश महाराजा मानसिंह के आश्रित थे। इनका समय सवत् १८६३ के लगभग माना गया है। इनकी एक रचना "जालधर नाथ जी रो गुरा" उपलब्ध होती है।

४. दौलतराम

ये मैनपुरी के रहने वाले थे। जाति से कायस्थ थे। उनकी एक लघु कृति "ज्योनार" नाम से मिलती है।

५ दौलतराम

ये हाथरस के रहने वाले थे। इनका जन्म सवत् १८५५-५६ मे हुआ। इनके पिता का नाम टोडरमल एव जाति पल्लीवाल जैन थी। कपड़े के व्यापार के साथ कविता बनाने की भी इनकी प्रारम्भ से ही रुचि थी। इनके आध्यात्मिक एव भक्ति परक पद अत्यधिक उच्चकोटि के मिलते हैं, जो १०० से भी अधिक सख्या मे हैं। इनकी 'छहढाला' के लघु होने पर भी जैन समाज मे अत्यधिक लोकप्रिय है।

तत्कालीन साहित्यिक वातावरण

कविवर दौलतराम का समय स० १७४९ से १८२९ तक रहा है। उस समय राजस्थान का साहित्यिक वातावरण कैसा था—इस सम्बन्ध मे यहा कुछ विचार करना है। यह तो निर्विवाद रूप से सही है कि उस समय तक हिन्दी भाषा की प्रतिष्ठा हो चुकी थी और उसके चार स्तम्भ कबीरदास, सूरदास, मीरा, तुलसीदास जैसे महाकवि हो चुके थे तथा ही रल्ह, सधारु, ब्रह्म जिनदास, रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास, रायमल्ल जैसे जैन कवियो ने भी अपनी हिन्दी रचनाओ के माध्यम से हिन्दी को पूर्ण रूप से अपना लिया था। उधर आमेर मे हिन्दी का अच्छा वातावरण था और यहा कितने

ही विद्वानो ने इसके प्रचार प्रसार की ओर विशेष योग दिया था। इनमे कविवर विहारी की "सतसई" का शृगार रस की महत्वपूर्ण कृति के रूप मे समादर होने लगा था। आमेर मे ही अजयराज पाटनी हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। जिनकी छोटी-वडी लगभग २० रचनाए प्राप्त हो चुकी है। इनमे आदिपुराण भाषा (१७६७), नेमिनाथ चरित (१७६२), यशोधर चौपई (१७६२) जैसे महत्वपूर्ण रचनाए हैं। अजयराज कवि के समकालीन विद्वान् थे। तथा उन्होने आमेर के सम्वन्ध मे अच्छा वर्णन लिखा है। प० नेमिचन्द भी आमेर के ही कवि थे, जिनकी एकमात्र कृति 'नेमिनाथ रास' हिन्दी का अच्छा प्रवन्ध काव्य है। कवि ने इसे स० १७६६ मे ही समाप्त किया था।

सतरासै गुणहत्तरे सुदि आसोज दसे रवि जाणतौ।
रास रच्यो श्री नेमिको, वुद्धि सारु मे कियो वखाणतौ॥

आमेर के समान सागानेर मे भी कवि के पूर्व हिन्दी के कितने ही विद्वान हो चुके थे और उन्होने भी साहित्य की खूव सेवा की थी। इनमे ब्रह्म रायमल्ल, जोधराज गोदीका, किशनसिंह के नाम विशेपत उल्लेखनीय हैं। ब्रह्म रायमल्ल सन्त कवि थे और उनकी कृतियो मे 'हनुमत रास', 'श्रीपाल रास', 'सुदर्शनरास', 'भविष्यदत्त कथा' के नाम उल्लेखनीय है। जोधराज गोदीका की 'सम्यकत्व कौमुदी' कथा उल्लेखनीय कृति है, जिसका रचना काल सवत् १७२४ है।

समकालीन हिन्दी विद्वान्

महाकवि दौलतराम का समय सवत् १७४९ मे १८२९ तक का है। ८० वर्ष का यह समय भारत के इतिहास का एक धुधला चित्र उपस्थित करता है। उस काल में राजनैतिक अस्थिरता तो थी ही, सामाजिक दृष्टि से भी समाज में अन्तर्विरोध था। रूढियो एव अन्धविश्वासो मे वह फसता जा रहा था। १४ से १८वी शताब्दी तक अत्यधिक समर्थ भट्टारक सस्था का ह्रास प्रारम्भ हो गया था, तथा समाज मे उनके विरुद्ध विद्रोह होने लगा था। अध्यात्म-शैलियो ने इस सस्था के ह्रास मे विशेष योग दिया। समाज मे स्पष्ट रूप से दो दल वन चुके थे। भट्टारको के समर्थक वीस पंथ आम्नाय वाले कहलाने लगे। जवकि उनके विरोधी एव समाज सुधारक तेरह पथ अम्नाय वाले कहलाने लगे थे। इसी प्रकार विद्वानो मे भी दो विचार-धाराये आचुकी थी। आगरा, आमेर, उदयपुर, जयपुर एव सागानेर मे विद्वानो का विशेप जोर था। एव वहा उनका व्यापक प्रभाव भी था। इन विद्वानो ने सवत् १७५० से

१६०० तक जितना जवरदस्त साहित्य-लेखन का कार्य किया, उसने देश में साहित्य के प्रति नवीन क्रान्ति पैदा की और इससे समाज में नव चेतना जागृत हुई। नये-नये ग्रन्थो की माग होने लगी और उसकी पूर्ति भी हमारे इन्ही विद्वानो ने की। यहा हम ऐसे ही कुछ प्रमुख विद्वानो का परिचय उपस्थित कर रहे है—

भूधरदास

दौलतराम एव भूधरदास की भेंट सर्व प्रथम आगरे में हुई थी। दौलतराम के अनुसार भूधरदास आगरे की अध्यात्म शैली के प्रमुख विद्वान् थे। वे स्याहगंज में रहते थे। ये अधिकाश समय जिनेन्द्र पूजा एव भक्ति में लवलीन रहते थे। भूधरदास का जन्म कव और कहा हुआ ? उनकी शिक्षा-दीक्षा कहा हुई तथा वे जीवन भर क्या करते रहे, इसके सम्वन्ध में कवि की रचनाए मौन हैं। कवि को सस्कृत एव प्राकृत ग्रन्थो का अच्छा ज्ञान था। पुराण साहित्य का उन्होने अच्छा अध्ययन किया था—जिसका स्पष्ट प्रभाव उनकी रचनाओ में मिलता है। कवि खण्डेलवाल जैन थे तथा एक विद्वान् के अनुसार उनका भी गोत्र कासलीवाल था। अत दौलतराम जव आगरा पहुचे तो दोनो कवियो में घनिष्ट सम्वन्ध हो गया।

'भूधरदास' का साहित्यिक जीवन सभवत अधिक लम्वा नही रहा। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम १५–२० वर्ष ही साहित्य सेवा एवं लेखन मे लगाये। उनकी प्रथम कृति जैन शतक है, जिसे उन्होने सवत् १७८१ पौष कृष्णा १३ रविवार के दिन समाप्त की थी। इसकी रचना महाराजा सवाई जयसिह के सूवा हाकिम गुलावचन्द की प्रेरणा से हुई थी। गुलावचन्द शाह हरीसिह के वशज थे, जो धार्मिक प्रकृति वाले व्यक्ति थे तथा आगरा आने पर उसने कवि से निवेदन किया था—

> आगरे मे वाल वुद्धि भूधर खण्डेलवाल,
> वालक के ख्याल सो कवित्त रच जाने है।
>
> ऐसे ही करत भये जैसिघ सवाई सूवा,
> हाकिम गुलावचन्द आये तिहि ठाने है।
>
> हरीसिह शाह के सवस धर्मरागी नर,
> तिनके कहे सौ जोरि दीनी एक ठाने है।

फिरि फिरि मेरे मेरे आलस का अस भयो,
उनकी सहाय यह मेरे मान माने है ।
सतरहसै इक्यासिया, पोह पाख तमलीन,
तिथि तेरस रविवार को शतक समापत कीन ।।४१।।

जैन शतक स्तुति परक, नीति परक एव जैनधर्म महिमापरक कृति है । उनकी दूसरी कृति पार्श्वपुराण है जो हिन्दी की एक बेजोड कृति है । यह एक महाकाव्य है, जिसमे २३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन चरित को निबद्ध किया गया है । भाव, भाषा एव शैली की दृष्टि से यह कृति भाषा साहित्य की सर्वोत्तम कृतियो मे से है । इसकी रचना स० १७८९ मे हुई थी । पार्श्वपुराण जैन-साहित्य मे सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यो में से है, जिसकी पाण्डुलिपिया आज भी राजस्थान के ही नही किन्तु समस्त देश के शास्त्र भण्डारो मे विपुल सख्या मे सग्रहीत हैं । इस पुराण के अतिरिक्त कवि ने हिन्दी पद भी लिखे है, जिनकी सख्या ७४ है जो अध्यात्म एव भक्ति परक हैं ।

भूधरदास यद्यपि आगरे के थे, लेकिन उनका जयपुर के विद्वानो से विशेष सम्बन्ध था । कवि कभी जयपुर आये थे या नही—इसके सम्बन्ध मे तो कोई निश्चित तथ्य नही मिलते लेकिन यह अवश्य है कि इनका जयपुर के विद्वानो एव समाज के नेताओ तथा उच्च अधिकारियो से अच्छा परिचय था । आगरा के मन्दिरो मे स्थित जैन भण्डारो की विशेष खोज नही होने के कारण अभी इनके जन्म एव मृत्यु के बारे मे निश्चित तिथि नही मिलती । लेकिन कवि सवत् १८०० के पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये हो—ऐसा अनुमानित किया जाता है ।

किशनसिंह

ये रामपुरा के निवासी थे । रामपुरा उणियारा-टोक के समीप है तथा जो आजकल अलीगढ के नाम से जाना जाता है । किशनसिंह के पिता का नाम सुखदेव पाटनी था, जिनके द्वारा अलीगढ (रामपुरा) मे एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया गया था तथा जिसका लेख इसी मन्दिर मे उत्कीर्ण है । मन्दिर की नींव सवत् १७२१ मे लगी थी । किशनसिंह दो भाई थे । आनन्द सिंह इनके लघु भ्राता थे । ये भी खण्डेलवाल एव पाटनी गोत्र के थे । इनके पिता माथुरदास बसत के प्रधान थे । उनकी सभी ओर प्रसिद्धि थी । लेकिन किशनसिंह अपने गाव मे नही रहे और सागानेर आकर बस गये । वे सभवत

कुछ समय चौथ का बरवाडा तथा आगरा भी रहे थे। सागानेर आने के पश्चात् वे साहित्य निर्माण मे लग गये उन्होंने १० से भी अधिक रचनाए की हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१	णमोकार रास	सवत् १७६०
२	चौवीस दण्डक	,, १७६४
३.	पुण्यास्रव कथाकोश	,, १७७३
४	भद्रबाहु चरित्र	,, १७८३
५	त्रेपनक्रिया कोश	,, १७८४
६	लब्धि विधान कथा	,, १७८२
७	निर्वाण काण्ड भाषा	,, १७८३
८	चतुर्विंशति स्तुति	–
९	चेतन गीत	–
१०	चेतन लोरी	–
११	पद सग्रह	–

नेमिचन्द

आमेर के जिन हिन्दी विद्वानो एव कवियो ने साहित्य निर्माण मे गहरी अभिरुचि ली थी, उनमे कविवर नेमीचन्द का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। नेमिचन्द आमेर की भट्टारक गादी के भट्टारक जगत्कीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। वे खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र के श्रावक थे तथा अपनी आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त शेष समय को काव्य रचना मे लगाया करते थे। इनके समय मे 'आमेर ही' ढूढाहड प्रदेश की राजधानी थी और उनका यश अपनी सर्वोच्च अवस्था मे पहुच चुका था। कवि ने अपनी कृतियो मे आमेर नगर का जो सुन्दर वर्णन किया है, उससे नगर के वैभव, सम्पन्नता एव विशालता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।[1]

नेमिचन्द दो भाई थे झगडु इनके छोटे भाई का नाम था। इनके कितने ही शिष्य थे, जिनमे डूगरसी एव रूपचन्द के नाम विशेषत उल्लेखनीय है। कवि की अब तक तीन कृतियो की उपलब्धि हो चुकी है, जिनके नाम नेमीश्वर रास, नेमीश्वर गीत एव प्रीत्यकर चौपई है।

'नेमीश्वर रास' इनकी प्रमुख कृति है। यह हिन्दी का एक पद्य-गद्य मिश्रित काव्य है। काव्य की कथावस्तु गद्य एव पद्य दोनो मे ही वर्णित है।

१ प्रशस्ति सग्रह पृ २७९

हिन्दी-भाषा का यह सभवत प्रथम काव्य है। जो इतना प्राचीन है, जिसमे गद्य एवं पद्य दोनो ही को अपनाया गया है। रास मे ३६ अधिकार हैं। जिनमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन का वर्णन किया गया है। साथ ही मे महाभारत की कथा का भी समावेश किया गया है। रास का रचना काल सवत् १७६६ आसोज सुदी १३ रविवार है। पूरा रास १३०८ छन्दो मे समाप्त होता है, जिनका विभाजन निम्न प्रकार है—

दोहा	सोरठा	सवैया	कडख	ढाल	कुल योग
२६०	२५	२	११	१०१०	१३०८

इसके अतिरिक्त गद्य मे जो वर्णन मिलता है, वह उक्त सख्या से अतिरिक्त है। कृति का दूसरा नाम हरिवश पुराण भी दिया हुआ है।

"प्रीत्यकर चौपई" कवि की दूसरी बडी रचना है, जो दोहा और चौपई-छन्दो मे निवद्ध है, जिनकी सख्या ३१६ है। इसका रचना काल स० १७७१ वैशाख सुदी ११ है। चौपाई का आरम्भ प्राचीन परम्परा के अनुसार हुआ है, जिसमे चौवीस तीर्थंकरो के स्तवन के पश्चात् पच परमेष्ठियो की भक्ति एव आचार्य कुन्दकुन्द का स्मरण किया गया है। चौपई की भाषा राजस्थानी है—

जीवा वैर भाव मिट गयो, आपस मे सव आनन्द भयो।
वनमाली हास्यौ भयो देखि, छह रिति मां फल फूल वसै।
वनमाली फल फूल विराय, श्रेणिक राजा वदौ जू भाय।

दीपचन्द कासलीवाल

दीपचन्द कासलीवाल भी आमेर नगर के ही कवि थे। ये भी कवि दौलतराम कासलीवाल के समकालीन कवि थे और इन्ही के समान गद्य-पद्य दोनो ही शैलियो मे रचना करने वाले थे। लेकिन इनका अध्यात्म की ओर अधिक झुकाव था। इसलिये इनकी अधिकाश रचनायें अध्यात्म प्रधान हैं।

कवि का जन्म कव हुआ था। इसके सम्वन्ध में कोई निश्चित जानकारी नही मिलती। इनकी एक रचना 'आत्मावलोकन' स० १७७४ की कृति है। इसलिए इनका जन्म स० १७३० के आस पास होना चाहिये। इनकी एक अन्य रचना सं० १७८१ की है। यदि इसे कवि की अन्तिम रचना मान ली जावे तो इनका सम्पूर्ण जीवन सवत् १७३० से १७८५ तक का माना जा सकता है। इनके नाम के पूर्व शाह शब्द का प्रयोग होता था,

इससे ज्ञात होता है कि कवि समाज के प्रतिष्ठित पद पर आसीन थे। ये पहले सागानेर रहते थे और फिर आमेर आकर रहने लगे थे। कवि ने अपनी 'चिद्‌विलास' नामक कृति मे इनका वर्णन निम्न प्रकार से किया है।

"इस ग्रथ मे प्रथम परमात्मा का वर्णन किया, पीछे उपाय परमात्मा पायवे का दिखाया। जे परमात्मा को जनमो कियो चाहै ते या ग्रथ को वार-वार विचारो। यह ग्रन्थ दीपचन्द साधर्मी कीया वास है, सागानेर, आमेर में आय, तब यह ग्रथ कियो स० १७७९ का मिति फागुण वदी पचमी को यह ग्रथ पूर्ण कियो।

कवि की अब तक निम्न कृतिया उपलव्ध हो चुकी हैं—

१ अनुभव प्रकाश, २ आत्मावलोकन, ३ चिद्‌विलास
४ परमात्म पुराण, ५ उपदेश रत्नमाला, ६ ज्ञान मार्त्तण्ड

'अनुभव प्रकाश' पूर्ण आध्यात्मिक रचना है। धारावाहिक रूप मे यह गद्य काव्य यद्यपि आकार मे लघु है, लेकिन जिस रीति से कवि ने गागर मे सागर भर दिया है; वह उनकी विद्वत्ता एव थोडे मे अधिक गम्भीर बात कहने का चातुर्य्य प्रगट करता है।

'आत्मावलोकन' इनकी दूसरी आध्यात्मिक कृति है। जिसमे आत्मा एव परमात्मा के सम्वन्ध पर विशद विवेचन किया गया है। गद्य शैली मे इस प्रकार का विवेचन अन्य कवियो द्वारा बहुत ही कम हुआ है। ग्रन्थ मे विभिन्न अधिकार हैं। इसकी भाषा ढूढारी है, जिस पर व्रज भाषा का पूर्ण प्रभाव है। पर साथ ही उर्दू भाषा के शव्दो का भी प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार की कवि की अन्य कृतिया भी अध्यात्मपूर्ण हैं। महाकवि दौलतराम से इनका कितना सम्पर्क रहा इसके सम्वन्ध मे निश्चित जानकारी नही मिलती।

अजयराज पाटनी

"अजयराज पाटनी" दौलतराम के समकालीन ज्येष्ठ विद्वान थे। पाटनी जी हिन्दी के श्रेष्ठ कवि थे। अपनी लघु रचनाओ द्वारा पाठको को नयी-नयी कृतिया भेंट किया करते थे। अब तक उनकी २० रचनाओ का पता लग चुका है, जिनमे पूजा, जयमाल, कथा, गीत, चरित, चौपई, विवाह, वदना, वत्तीसी आदि सभी नाम की कृतिया मिलती हैं। राजस्थान के विभिन्न

शास्त्र-भण्डारो मे अब तक इनकी निम्न रचनाए उपलब्ध होती हैं—

१ आदिनाथ पूजा, २ कक्का बत्तीसी, ३ चरखा चउपई, ४ चार मित्रो की कथा, ५ चौबीस तीर्थंकर पूजा, ६ चौबीस तीर्थंकर स्तुति, ७ जिन गीत, ८ जिनजी की रसोई, ९ ठामोकार सिद्धि १० नन्दीश्वर पूजा, ११ नेमिनाथ चरित्र, १२ पच मेरु पूजा, १३. पार्श्वनाथजी का सालेहा, १४ बाल्य वर्णन, १५ बीस तीर्थंकरो की जयमाल, १६ यशोधर चौपई, १७ वदना, १८ शातिनाथ जयमाल, १९ शिवरमरणी विवाह, २० विनती।

उक्त रचनायें कवि की काव्य विविधता की ओर सकेत करती हैं। जिनमे सामान्य विषय से लेकर रूपक काव्य तक की रचनायें उपलब्ध होती है। कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी थे, जो उनकी रचनाओ की विभिन्न प्रशस्तियो से मालूम होती है। ये पाक शास्त्र के भी विशेषज्ञ थे। 'जिनजी की रसोई' कृति मे पाक शास्त्र का अच्छा परिचय मिलता है। 'शिव रमणी विवाह' मे तीर्थंकर की बरात का रूपक बाधा गया है, जिसमे तीर्थंकर दुल्हा है तथा मुक्ति को वधू के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। तीर्थंकर के प्रवचनो को सुनने वाले सभी भव्य जन उनके बराती हैं। पचम गति अर्थात् मोक्ष ससुराल है, जहा वे मुक्तिवधु के साथ ज्ञान सरोवर मे खूब स्नान किया करते हैं। यद्यपि इसमें केवल १७ पद्य ही हैं, लेकिन रूपको का अच्छा रूप प्रस्तुत किया गया है।

इसी तरह चरखा चौपई भी एक सुन्दर रूपक काव्य है। इसमे कवि ने गागर मे सागर भरा है। चरखे को लेकर कवि ने जो रूपक बाधा है, वैसा रूपक अन्यत्र मिलना कठिन है। इस लघु कृति मे शील और सयम दो खू टे हैं। शुभ ध्यान ताडिया एव शुक्ल ध्यान को चरखे का पाया बनाया है। ससार रूपी जेवडी का दामरण, दश धर्म को माल, चार दान को हथलो तथा आत्मा को ताक् के रूप मे प्रस्तुत किया है। क्षमा की आटिया बनाकर ज्ञान गुफा मे रखने की ओर सकेत किया गया है। उस शताब्दि मे 'चरखा' अत्यधिक लोकप्रिय था तथा सब रोजी-रोटी देने वाला एव गरीबो का एकमात्र सहारा था।[1]

—भाव, भाषा एव शैली की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कृति है।

---

१ ऐसो चरखो गाव कोय, ताके घर अति आनन्द होय।
अजैराज थोडा मे कही, चतर नारि मानि जो सही॥

'जिनजी की रसोई' पाक शास्त्र पर एक महत्वपूर्ण कृति है। जैन कवियो द्वारा लिखी हुई सभवत ऐसी प्रथम रचना है जो केवल पाक-शास्त्र से सम्बन्ध रखती है। इसमे कवि ने व्यञ्जनो, पक्वानो एव फलो के नाम गिनाकर उनके बनाने की विधि का उल्लेख किया है। इसी के साथ तीर्थंकर के विविध प्रकार के आभूषणो का भी वर्णन मिलता है। जैसे रूठे हुये कृष्ण जी को यशोदा मनाती थी, उसी तरह इसमे कवि ने "तुम रूसो मत मेरे चिमना, खेलो बहुविधि घर के अगना" कहकर उन्हे मनाने की प्रक्रिया अपनायी है।

सोहे सुन्दर कुण्डल कान, गले हार मोतिन को जाणि।
कडा जडाऊ हाथा पगा, रग रग का पहरे झगा ॥

हीरा जडित पाच अति सोहे, सुर नर नाग सकल मन मोहे।
माथे मुकुट अनुपम सार, खेले कु वर महासुख कार ॥

इसी तरह विविध प्रकार के व्यञ्जनो का जब वर्णन किया गया है, तो ऐसा लगता है कि मानो स्वय कवि उन्हे बनाने बैठ गया हो—

जावू नीवू खारा मिठा, करौ सवाद रहौ मति रूठा।
सरदा खरबूजा काकडी, नौझी आणी तुरत की घडी ॥

केरीपाक मुरवा भला, पाति खाड घी मे घिलमिला।
छोलि बादाम धरे अखरोट, चारौली पिस्ता की मोट ॥

वेसण की चौखी पापडी, घिरत माहि तलतै भी धरी।
मुख विलास मुख माहि विलाई, तास वोपमा कही न जाई।

प्रस्तुत रचना सवत् १७६५ की है। एक ओर आमेर मे अजयराज साहित्य की गगा बहा रहे थे तो दूसरी ओर दौलतराम उदयपुर मे काव्य रचना कर रहे थे। अजयराज अन्त तक आमेर मे ही रहे और जयपुर बसने के बाद भी उन्होने आमेर मे रहना ही उचित समझा। इन्होने आमेर नगर, वहा के राजमहल, प्राकृतिक दृश्य, मन्दिर आदि का अच्छा वर्णन किया है। इन्होंने महाराजा जयसिंह के शासन काल का भी उल्लेख किया है। एक वर्णन देखिये—

अजयराज इह कीयो वखाण, राज सवाई जयसिह आण।
अबावती सहरै सुभ थान, जिन मन्दिर जिन देव विमान ॥

नीर निवाण सोहै वनराई, वेलि गुलाव चमेली जाई ।
चपो मरवो अरु सेवति, यो हो नाना विधि किती ।।
वहु मेवा वहुविधि सार, वरणत मोहे लागै वार ।
गढ मन्दिर कछु कह्यौ न जाइ, मुखिया लोग वसै अधिकाई ।।
तामैं जिन मन्दिर इकसार, तहा विराजै नेमि कुमार ।
स्याम मूर्ति शोभा अति घणी, ताकी वोपमा जाइ न वणी ।।

खुशालचन्द काला :

खुशालचन्द राजस्थान के गौरवमान कवि थे । अपने जीवन के वीस से भी अधिक वसन्त ऋतुयें इन्होने साहित्य निर्माण मे व्यतीत की थी । कवि को एक नगर मे रहने का अवसर नही मिला । इनके पूर्वज टोडारार्यसिह के निवासी थे, लेकिन फिर जिहानावाद—जयसिह पुरा मे जाकर रहने लगे थे । कवि का जन्म सभवत यही हुआ होगा । इनके पिता का नाम सुन्दरदास एवं माता का नाम सुजानदे था । काला इनका गोत्र था । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा जयसिहपुरा मे ही हुई थी, लेकिन फिर भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के साथ ये सागानेर आ गये और कविवर लक्ष्मीदास चादवाड के शिष्य वनने का इन्हे सौभाग्य प्राप्त हुआ । इन्ही के पास इन्होंने शास्त्र ज्ञान प्राप्त हुआ, जिसका उल्लेख कवि ने अपनी रचनाओ मे वडी कृतज्ञता से किया है—

जिन सु भये तहा नाम लिखमीदास,
चतुर विवेकी श्रुत ज्ञान कूं उपाय कैं ।
तिहनै पास मैं भी कछु अल्प सो प्रकाश भयो,
फेरि मैं वस्यो जिहानाबाद मध्य आयके ।।

इसके पश्चात् कवि फिर वापिस जयसिह पुरा चले गये । वहा सुखानन्द नाम के उत्तम वणिक थे । उन्ही के घर मे गोकुलचन्द श्रावक रहते थे, जिनको कवि शास्त्र सुनाया करते थे । उन्ही के आग्रह से कवि ने सवत् १७८० मे हरिवश पुराण की रचना की थी—

सरह मध्य इक वणिक वर, साह सुखानन्द जानि ।
ताके गेह विषै रहै, गोकुलचद सु जानि ।।१०।।

तिन ढिग मैं जाऊ सदा, पढु शास्त्र सुभाय।
तिनको वर उपदेश लै, मैं भाषा बनवाय ।।११।।

कवि ने अपनी रचनाओ मे—महाराज जयसिंह, उनके प्रसिद्ध नगर सागानेर एवं उसमे होने वाले धार्मिक उत्सवो का अच्छा वर्णन किया है। उस समय महाराजा विसनसिंह के सुत महाराजा जयसिंह द्वितीय का आमेर मे शासन था।

देश ढुंढाहर जाणौं सार, तामैं धरम तरणु अधिकार।
विसनसिंह सुत जैसिंह राय, राज करै सबकू सुखदाय ।।

देश तनी महिमा अति बनी, जिन-गेहा करि अति ही बनी।
जिन मन्दिर भवि पूजा करैं, केइक व्रत ले केइक धरैं ।।

जिन मन्दिर करवाये नवा, सुरग विमान तनी कर धवा।
रथ जात्रादि होत बहु जहा, पुन्य उपावन भवियन तहा ।।

खुशालचन्द काला के अब तक जिन ग्रन्थो की उपलब्धि हो चुकी है—वे निम्न प्रकार हैं—

१. हरिवश पुराण, २ यशोधर चरित, ३ पद्मपुराण, ४. व्रत कथाकोश, ५ जम्बूस्वामी चरित, ६ धन्यकुमार चरित, ७ सद्भाषितावली, ८ उत्तर पुराण, ९ चौवीस महाराज पूजा, १० शान्ति नाथ पुराण, ११. वर्द्धमान पुराण।

—ये सभी कृतिया हिन्दी भाषा की सुन्दर कृतिया हैं, जिनमे काव्य के सभी लक्षण उपलब्ध होते हैं। हरिवश पुराण ३९ सन्धियो का महाकाव्य है, जिसमे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ एव 'महाभारत की कथा का विस्तृत वर्णन है। पुराण मे दोहा, चौपाई, अरिल्ल, सवैय्या, सोरठा आदि छन्दो का उपयोग हुआ है। इसका रचनाकाल सवत् १७८० वैशाख सुदी तीज है। इसी तरह उत्तर पुराण का रचना काल स० १७९९ मगसिर सुदी दशमी का है। यह भी सन्धियो मे विभक्त है तथा इसकी वर्णन शैली आचार्य गुणभद्र के उत्तर पुराण के अनुसार ही मिलती है। इसकी भाषा मे राजस्थानी एव व्रज का सम्मिश्रण है। वैसे यह पुराण दोहा चौपाई छन्द प्रधान है, किन्तु अडिल्ल, छप्पय जैसे छन्दो का प्रयोग भी हुआ है।

'व्रत कथाकोश' मे कवि ने २३ व्रत कथाओ का सग्रह किया है। जिनकी रचना स० १७८२ से १७८७ तक की गयी थी। कुछ कथाए तो छोटे-२

काव्यो के बराबर हैं, जिनकी छन्द स० ३०० से भी अधिक हो गई है। कथाओं मे धार्मिक पुट है तथा उनमे नैतिकता के वर्णन की प्रमुखता है। मध्य युग मे जन-साधारण मे कथाओ के प्रति जो आकर्षण पैदा हुआ था उसके परिणाम स्वरूप कवि ने ऐसी रचनाओ को छन्दोबद्ध किया था।

खुशालचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से जन साधारण मे जो जागृति उत्पन्न की थी, उसने सारे राजस्थान को ही नही, किन्तु उत्तर भारत की जैन समाज मे भावात्मक एकता स्थापित करने मे अत्यधिक योग दिया था। खुशालचन्द समन्वयवादी कवि थे। इसलिये हिन्दी मे रचना भी उसी दृष्टि से किया करते थे।

कविवर दौलतराम अथवा महापडित टोडरमल्ल से कवि का साक्षात्कार कभी हुआ अथवा नही—इसके बारे मे तीनो ही विद्वानो ने अपनी रचनाओ मे कुछ उल्लेख नही किया। लेकिन खुशालचन्द भी महाराज जयसिंह के कृपा-पात्र थे, और दौलतराम उनके राजदूत थे, इसलिए दानो मे अवश्य ही मित्रता रही होगी। तीनो ही कवि समाज के अलग २ वर्ग का नेतृत्व करते थे, इसलिए यद्यपि वे परस्पर मे अधिक सम्पर्क मे रहे भी नही हो, तो भी एक दूसरे के मध्य साहित्यिक परिचय तो रहा ही होगा।

टोडरमल

महापडित टोडरमल कविवर दौलतराम के समकालीन विद्वान् ही नही थे, किन्तु वे उनके घनिष्ट मित्र भी थे। महाकवि द्वारा पुराण ग्र थो की भाषा टीका टोडरमल की विशेष प्रेरणा के कारण ही सफल हो सकी थी। जिस मनोयोग से टोडरमल ने गोम्मटसार आदि ग्रन्थो की हिन्दी मे भाषा टीका की थी, उससे भी अधिक मनोयोग से कवि ने पद्मपुराण, आदिपुराण एव हरिवश पुराण की भाषा की थी। टोडरमल के ग्र थ अत्यधिक गम्भीर एव गूढ शैली मे लिखे गये है, तथा साधारण पाठक के लिए सहज गम्य नही है, जबकि दौलतराम ने अपने सभी ग्र थ साधरण पाठको के लिए निबद्ध किये। इसलिए जितना जबरदस्त प्रचार दौलतराम के ग्रन्थो का हो सका, उतना टोडरमलजी के ग्रन्थो का नही हो सका।

टोडरमल जी की आयु एव जन्म सवत् दोनो के बारे मे विद्वानो की धारणाए बदल रही हैं। पहिले उनकी आयु २६–२७ वर्ष की ही मानी जाती थी, लेकिन राजस्थान के अजमेर के भण्डार मे "सामुद्रिक सुरुप लक्षण"[1]

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची–पचम भाग–पृष्ठ सख्या १२०५

की संवत् १७९३ की एक प्रति मिली है, उसमे प० टोडरमल जी के पठनार्थ प्रतिलिपि की गई—ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यदि उस समय कवि की आयु १५ वर्ष की भी मान ली जावे तो भी उनकी आयु ४७ वर्ष की होनो चाहिये।

टोडरमल ने सर्वप्रथम रहस्यपूर्ण चिट्ठी लिखी। इस अकेली चिट्ठी से ही पता चलता है कि उनकी ख्याति राजस्थान को पार करके पजाव तक पहुच गई थी। उन्होंने गोम्मटसार, त्रिलोकसार, क्षपणासार एव लब्धिसार जैसे सैद्धान्तिक ग्रंथो की भापा टीका करके जैन समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। यह प्रथम अवसर था जबकि हिन्दो में किसी विद्वान् ने प्राकृत भापा के ऐसे महत्वपूर्ण एव लोकप्रिय ग्रन्थो पर हिन्दी टीका लिखी हो। इसलिए इन ग्रन्थो के निर्माण के पश्चात् उनकी कीर्ति पताका चारो ओर लहराने लगी। विद्वत्ता के साथ ही उनकी वक्तृत्व शक्ति भी विलक्षण थी एव समाज को रूढियो एव अन्ध विश्वासो से निकाल कर सम्यक् मार्ग पर लाने को उनकी जबरदस्त भावना थी। इसलिये अपने जीवन मे उन्हे अनेक सघर्पो से जूझना पडा और इन्ही सघर्पों से अन्त मे जूझते २ पडित जी ने अपना जीवन भी समर्पण कर दिया। वे शहीद हुए थे तथा तत्कालीन समाज की साम्प्रदायिकता की अग्नि मे उन्होने अपने आपको होम दिया। उनका 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' यद्यपि पूर्णत धार्मिक ग्रथ है, किन्तु वह आकर्षक शैली एव विद्रोहात्मक पद्धत्ति मे लिखा गया है, जिसका एक-एक वाक्य रहस्यपूर्ण एव धार्मिक अर्थ को लिये है।

टोडरमल के पश्चात् होने वाले सभी परवर्ती कवियो ने अपनी रचनाओ मे टोडरमल का सादर उल्लेख किया है तथा उनकी विद्वत्ता की प्रशसा की है। स्वय महाकवि दौलतराम ने 'पुरुपार्थ सिद्धयुपाय'' टीका मे टोडरमल जी की विद्वत्ता का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

भापा टीका ता ऊपर कीनी टोडरमल्ल।
मुनिवर कृत वाकी रही ताके माहि अचल्ल॥
वे तो परभव कू गये, जयपुर नगर मझार।
सम साधर्मी तव कियो मन में यह विचार॥

बखतराम साह :

कविवर बखतराम महाकवि दौलतराम के समय प्रसिद्ध कवि थे। ये इतिहास, सिद्धान्त एव दर्शन के महान् पण्डित थे। भट्टारको मे इनका पूर्ण

विश्वास था और ये बीस पथ आम्नाय वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वालो मे से प्रमुख थे। इन्होने 'मिथ्यात्व खण्डन' लिखकर महा प० टोडरमल जी के विचारो का विरोध किया और भट्टारको का खुलकर समर्थन किया। जयपुर मे लश्कर का दि० जैन मन्दिर इनका साहित्यिक केन्द्र था और यही बैठकर इन्होने साहित्य सर्जन किया था। बुद्धि विलास[1] इनकी महत्वपूर्ण कृति है, जिसका इतिहास से पूर्ण सम्बन्ध है। कवि ने इसमे तत्कालीन समाज, राज व्यवस्था, जयपुर नगर निर्माण आदि का अच्छा वर्णन किया है। यह उनकी स० १८२७ मगसिर सुदी १२ को रचना है।

वख्तराम चाकसू के निवासी थे। चाकसू जयपुर से करीब २४ मील दक्षिण पूर्व मे बसा हुआ एक प्राचीन नगर है। जिसका जैन कवियो ने काफी अच्छा वर्णन किया है। इनके पिता पेमराज साह थे जो चाकसू मे ही रहते थे। कवि चाकसू से जयपुर स्थानान्तरित हो गये थे और यही पर विद्वानो के सम्पर्क मे रहकर साहित्य सेवा किया करते थे। मिथ्यात्व खण्डन नाटक मे कवि ने अपना वर्णन निम्न प्रकार किया है—

ग्रन्थ अनेक रहस्य लखि, जो कछु पायौ थाह।
वख्तराम वरननु कियो, पेमराज सुत साह ॥१४४॥

आदि चाटसू नगर के, वासी तिनि कौ जानि।
हाल सवाई जैनगर, माँहि बसे है आनि ॥१४५॥

तहाँ लसकरी देहुरे, राजत श्री प्रेभु नेम।
तिनको दरसरण करत ही, उपजत है अति प्रेम ॥१४१६॥

कवि की एक लघु रचना "धर्मबुद्धि कथा" एव कुछ पद भी मिलते हैं। बुद्धि विलास मे अपने प्रबल विरोधी महा प० टोडरमल की मृत्यु पर जो पक्तियाँ लिखी, वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं—

यक तेरह पथिनु मे ध्रमी, टोडरमल्ल नाम साहिमी।
कहे खलनि कै नृप रिसि ताहि, हति कै धरचौ असुचि थल नाहि।

उक्त घटना के अतिरिक्त कवि ने अपनी रचनाओ मे तत्कालीन विद्वानो के सम्बन्ध मे मौन ही रहना उचित समझा।

---

१ राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जोधपुर मे प्रकाशित। सम्पादक श्री पद्मधर पाठक।

जयचन्द छावडा :

महा पडित टोडरमल एव दौलतराम के पश्चात् जिन विद्वानो को समाज द्वारा सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ, उनमे जयचन्द छावडा प्रमुख विद्वान है। इनका भी समूचा जीवन ही साहित्य-देवता को समर्पित था और साहित्य एव समाज की सेवा ही इनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। महाकवि दौलतराम एव महा पडित टोडरमल दोनो का ही इनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पडा और साहित्यिक क्षेत्र मे इन्ही का उन्होने अनुसरण किया।

जयचन्द छावडा का जन्म जयपुर से ३० मील दक्षिण की ओर जयपुर मालपुरा रोड पर स्थित फागी ग्राम मे हुआ था। यह समय ऐसा था जब दौलतराम की गौरव गाथा चारो ओर फैल चुकी थी और टोडरमल के साहित्यिक के क्षेत्र मे पदार्पण की भूमिका बन रही थी। इनके पिता का नाम मोतीराम था। गोत्र छावडा एव जाति खण्डेलवाल थी। ११ वर्ष की अवस्था मे ही ये अपने ग्राम के मन्दिर मे जाने लगे और तत्वचर्चा मे रुचि लेने लगे। कुछ समय पश्चात् वे जयपुर मे आगये और यहा आने के पश्चात् तो उन्हे ऐसा लगने लगा कि मानो उन्हे अपनी अभीष्ट वस्तु मिल गई हो। जब वे जयपुर आये तो उन्हे अपने आपको विद्वानो की गोद मे पाया। प० वशीधर, टोडरमल, दौलतराम, भाई रायमल्ल, बखतराम आदि सभी शास्त्रज्ञ एव तत्वोपदेशी थे। फिर क्या था जयचन्द ने भी अपने–आपको इन्ही विद्वानो के समर्पित कर दिया। सर्व प्रथम इन्होंने तत्वार्थ सूत्र पर सवत् १८५९ मे वचनिका लिखी और फिर इसके दो वर्ष पश्चात् सर्वार्थसिद्धि पर विस्तृत वचनिका लिखी जो अर्थ प्रकाशिका के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। फिर तो वे एक के पश्चात् दूसरे ग्रन्थ की भाषा टीका लिखने लगे और अपने १२–१३ वर्ष के साहित्यिक काल मे १५ ग्रन्थो पर भाषा टीकायें लिख दी। ऐसा मालूम होता है कि उनका मस्तिष्क सैद्धान्तिक ज्ञान से भर चुका था और अब तो केवल निकलने की देरी थी। अब तक उनके निम्न ग्र थ प्राप्त हो चुके हैं—

रचनाकाल

१ तत्वार्थ सूत्र वचनिका, स० १८५९
२ सर्वार्थसिद्धि वचनिका, चैत्र शुक्ला पचमी १८६१
३ प्रमेयरत्नमाला वचनिका, आषाढ शुक्ला ४ स० १८६३
४ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा, श्रावण कृष्णा ३ स० १८६३

५. द्रव्यसग्रह वचनिका, श्रावण कृष्णा १४ स० १८६३
६ समयसार वचनिका, कार्तिक कृष्णा १० स० १८६४
७ देवागम स्तोत्र (आप्त मीमासा), चैत्र कृष्णा १४ स० १८६६
८. अष्टपाहुड वचनिका, भाद्रपद शुक्ला १२ स० १८६७
९ ज्ञानार्णव वचनिका, माघ कृष्णा ५ स० १८६९
१० भक्तामर स्तोत्र वचनिका, कार्तिक कृष्णा १० स० १८७०
११ पद सग्रह,
१२. सामायिक पाठ वचनिका,
१३ पत्रपरीक्षा वचनिका
१४ चन्द्रप्रभ चरित द्वि० सर्ग,
१५ धन्यकुमार वचनिका,

उक्त ग्रन्थो की नामावली के आधार पर कवि के व्यक्तित्व एव कृतित्व का स्वत' ही आभास मिल जाता है। उन्होने सैद्धान्तिक, तात्विक, आध्यात्मिक स्तुति परक, दार्शनिक एव चरित-प्रधान सभी ग्रन्थो की राजस्थानी भाषा मे वचनिकाए लिखी और उनके पठन पाठन का सर्वत्र प्रचार किया। इनके ग्रन्थो की भाषा अत्यधिक सरल, सरस एव सुगम्य है।

तत्कालीन जयपुर दरवार से उनका मधुर सम्बन्ध था। अपनी एक कृति मे उन्होने महाराजा सवाई जगतसिह के शासन की अच्छी प्रशसा की है। कवि के अनुसार राज्य मे सर्वत्र अमन चैन था तथा सभी धर्मावलम्बियो को अपने २ धर्म पालन की पूरी छूट थी। राजा के कितने ही मन्त्री थे और उनमे परस्पर मे मैत्री भावना थी। सवत् १८६१ मे जयपुर मे जो प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था, उसमे कवि का विशेष योग था।

करी प्रतिष्ठा मन्दिर नयौ, चन्द्रप्रभ जिन थापन थयौ।
ताकरि पुण्य बढौ यश भयौ, सर्व जैनिन को मन हरयो ॥

दीवान रायचन्द से भी कवि का विशेष सम्वन्ध था इन्होने कवि को सभी चिन्ताओ से मुक्त कर दिया और साहित्य निर्माण पर विशेष जोर दिया।

ताके ढिग हम थिरता पाय।
करी वचनिका यह मन लाय ॥

जयचन्द का पुत्र नन्दलाल छावडा भी अपने पिता के समान ही साहित्य प्रेमी था। वह अनेक शास्त्रो का ज्ञाता था तथा अपने पिता को साहित्य रचना मे योग दिया करता था। जयचन्द जी ने एक स्थान पर अपने पुत्र की निम्न प्रकार प्रशसा की—

नन्दलाल मेरा सुत गुनी, बालपनै तै विद्या गुनी।
पडित भयौ बडौ परवीन, ताहूनै यह प्रेरणा कीन।।

जयचन्द जी के पश्चात् होने वाले सभी कवियो ने इनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

थानसिंह

थानसिंह महाकवि दौलतराम के उत्तरकालीन कवि थे। इनके द्वारा रचित "सुबुद्धि प्रकाश" एव "थान विलास" उल्लेखनीय रचनाए हैं। 'सुबुद्धि प्रकाश' सुभाषित रचना है, जिसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। रचना काफी अच्छी है। तथा उसमे १४६ पत्र हैं। इसका रचनाकाल सवत् १८४७ है। इसी तरह 'थान विलास' कवि की रचनाओ की सग्रहात्मक कृति है। कवि बहुत ही स्पष्टवादी एव निडर थे तथा तथ्यो को रखने मे कभी भी नही हिचकते थे। जयपुर मे महाराजा माधोसिंह के समय मे जो साम्प्रदायिक उपद्रव हुये थे, उनका सुबुद्धि प्रकाश की प्रशस्ति मे जो वर्णन किया है, वह उनकी निर्भयता का सूचक है—

माधव आगै सिव धरमी मुखियौ भयो।
जैन्यासो करि द्रोह वच मे लै लियो।।
देव धर्म गुरु श्रुत कौ विनय विगारियौ।
कीयो नाहि विचारि पाप विस्तारियौ।।६२।।

दोहा

भूप अरथ समझ्यो नही, मत्री के वसी होय।
डड सहर मैं नाखियौ, दुखी भये सब लोय।।६३।।
विविध भाति धन घटि गयो, पायौ बहुत कलेस।
दुखी होय पुर कौ तजो, तब ताको परदेस।।६४।।

कवि खण्डेलवाल जाति मे ठोल्या गोत्र के थे। हेमराज इनके दादा थे। हेमराज के बडे पुत्र मलूकचन्द, द्वितीय मोहनराम, तृतीय लूणकरण तथा

चतुर्थ साहिबराम थे। इन चारो ही पुत्रो के भी अच्छी सख्या मे सतान थी। थानसिंह मोहनराम के पुत्र थे। इनका जन्म सागानेर मे हुआ था। जयपुर एव सागानेर मे जब साम्प्रदायिक उपद्रव हुये तब कवि भरतपुर चले गये थे। लेकिन वहा कुछ समय तक रहने के वाद वे फिर महाराजा माधवसिंह के दरवार मे आगये और वही पर व्यापार करने लगे। यहा रहते हुये उन्होने सुबुद्धि प्रकाश की रचना की। परन्तु इनके पिता वापिस जयपुर नहीं आये और करौली मे रहकर ही व्यापार आदि करने लगे। थानसिंह अपने समय के प्रगतिशील कवि थे तथा साहित्य सेवा मे सदैव सलग्न रहते थे।

राजनैतिक स्थिति

दौलतराम अपने ८० वर्ष के जीवन में वसवा, आगरा, उदयपुर एव जयपुर रहे। आगरा के अतिरिक्त इनका अधिक सम्पर्क जयपुर के महाराजाओ से रहा लेकिन कवि ने अपनी रचनाओ मे जयपुर के महाराजाओ एव उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नामोल्लेख के अतिरिक्त तत्कालीन राजनैतिक स्थिति अथवा शासन का कोई वर्णन नही किया। कवि आगरा भी काफी समय तक रहे लेकिन मुगल शासन के वारे मे भी वे मौन ही रहे। इससे पता चलता है कि कवि की राजनीति अथवा तत्कालीन शासन के वारे मे लिखने मे कोई रुचि नही थी। इसके अतिरिक्त जयपुर महाराजा के उच्च पदाधिकारी होने के कारण उन्होने अपने जीवन को साहित्य रचना तक ही सीमित रखा और अन्य प्रपञ्चो से दूर रहे।

कवि ने जब युवावस्था मे पदार्पण किया था उस समय देहली पर मुगल वादशाहों का शासन था जो अपने ह्रास की ओर तीव्र गति से वढ रहा था। सम्राट औरजेव के पश्चात् भारतीय शासन की वागडोर मजबूत हाथो मे नही रही थी। उसके उत्तराधिकारियो को आपस में लडने से ही अवकाश नही मिलता था, इसके अतिरिक्त वे अत्यधिक विलासी, आलसी एव अयोग्य भी थे। ना उनमें अकवर जैसी दूरदर्शिता थी और न औरगजेब जैसी राजनैतिक चतुरता। फरूखसियर एव मुहम्मदशाह जैसे मुगल सम्राटो का शासन एकदम ढीला तथा निकम्मा था तथा केन्द्रीय शासन नाम मात्र का रह गया था। कवि ने मुगल साम्राज्य का पूरा पतन अपनी आखो से देखा होगा।

लेकिन कवि के समय मे राजस्थान के शासकगण सशक्त वन गये थे। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (सन् १६९९-१७४३) जैसे योग्य एव दूरदर्शी

शासको के कारण सवत् १८०० तक राज्य मे शान्ति रही और राज्य की सभी तरह से उन्नति होती रही। महाराजा सवाई जयसिंह के पश्चात् जयपुर की गद्दी पर महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह (सन् १७४३–१७५०) सवाई माधोसिंह (सन् १७५०–६८) एव सवाई पृथ्वीसिंह (सन् १७६८–१७७८) बैठे। इन तीनो ही राजाओ के शासनकाल मे चारो ओर अशान्ति रही। तथा इन तीनो ही शासको को लडाइयो से कभी अवकाश नही मिला। यहा पर सुरक्षा के नाम जैसी कोई चीज ही नही रही। मराठो के अतिरिक्त स्वय मुगल बादशाह भी इनके विरुद्ध हो गये थे और उन पर सदैव युद्ध की तलवार टगी रहती थी। महाराजा ईश्वरीसिंह ने केवल सात वर्ष तक शासन किया और अन्त मे मराठो के आक्रमण मे भयभीत होकर जहर का प्याला पी लिया। इसके पश्चात् सवाई माधोसिंह गद्दी पर बैठे लेकिन सतरह वर्ष के शासन मे उसे कितनी ही लडाइया लडनी पडी। मरहाठाओ के बार बार के आक्रमणो से शासन व्यवस्था एक दम ढीली पड गयी थी और राज्य की सारी आमदनी फौजो पर ही खर्च करनी पडती थी। इसलिये उस समय कला एव साहित्य को कोई प्रोत्साहन नही मिला। इनके पश्चात् सवाई पृथ्वीसिंह शासन पर बैठे। लेकिन उस समय वे केवल पाच वर्ष के थे और ग्यारह वर्ष के पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया। इसलिये वे भी शासन को सशक्त बनाने की दिशा मे कोई कार्य नही कर सके।

महाराजा माधोसिंह एवं पृथ्वीसिंह के शासनकाल मे शासन पर मन्त्रियो एव पुरोहितो का अधिक प्रभुत्व रहा। सवत् १८१८ से १८२६ तक सारे राज्य मे शैवो एव जैनो मे साम्प्रदायिक झगडे होते रहे। राज्य मे शैवो का प्रभुत्व होने के कारण बहुत से जैन मन्दिरो को नष्ट कर दिया गया तथा कितने ही मन्दिरो को शैव मन्दिरो मे परिवर्तित कर दिया गया। केवल ८–९ वर्ष मे ही इस प्रकार के तीन बार उपद्रव हुए जिसमे धन सम्पत्ति की अपार क्षति हुई। इस सम्बन्ध मे तत्कालीन कवि बखतराम साह ने अपने बुद्धि विलास (सवत् १८२७) मे इन घटनाओ का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

सवत् १८१८ में एक श्याम तिवाडी हुआ जिसने किसी प्रयोग से महाराजा माधोसिंह को अपने वश मे कर लिया। महाराजा ने श्याम तिवाडी को सभी धर्म गुरुओ का प्रधान बना दिया और आचमन (सकल्प) करके राज्य का पूरा भार ही उसे सौंप दिया। गलता के बालानन्द आदि जो धर्मगुरु थे वे सभी देखते रहे। इस घटना के कुछ दिनो पश्चात् ही सारे राज्य मे उत्पात होने लगे। महाराजा से मनमाना आदेश लेकर जैनो को रात्रि भोजन

करने पर मजबूर किया जाने लगा तथा उनके मन्दिरो को तोड फोड दिया गया। राज्य के समस्त जैनो को इतना आतकित कर दिया गया कि उनका दर्शन, स्वाध्याय एवं पूजापाठ भी वन्द हो गया। किसी मन्दिर को आधा और किसी को पूरा ही नष्ट कर दिया गया। या तो केवल आमेर का सावला जी का मन्दिर सुरक्षित रहा अथवा वे ही मन्दिर वच सके जिनकी रक्षा का पूरा प्रवन्ध था। किसी मे जवरन शिव मूर्ति स्थापित कर दी गयी। इस प्रकार चारो ओर श्याम तिवारी के अत्याचार होने लगे। किसी से कोई उपाय नही वन सका। और न किसी साधु महात्मा का जादू मत्र ही काम कर सका। लेकिन जव श्याम तिवारी के अत्याचारो की वास्तविकता का महाराजा माधोसिह को मालूम पडा तो उन्होने उसे यथोचित दण्ड दिया और मध्याह्न मे जयपुर नगर से निकलवा दिया। वह केवल धोवती एव दुपट्टा साथ ले जा सका। उस समय वह केवल अकेला था और उसके पीछे से लडके हुरिया देते जाते थे। महाराजा ने उसका गुरुपद छीन लिया और जैसा उसने कार्य किया था वैसा ही उसको दण्ड दिया गया।[1]

सोरठा

अवावति मै ऐक, स्याम प्रभू कै देहुरै।
रही धर्म के टेक, वच्यौ सु जान्यो चमतक्रत।१२६४॥

चौपई

कोए आधो कोऊ सारो, वच्यौ जहा छत्री रखवारो।
काहूँ मै सिवमूरति धरि दी, अैसी मची स्याम की गरदी॥१२६५॥

---

१ सवत अट्टारहसै गये, ऊपरि जकै अठारह भये।
तव इक भयो तिवाडी स्याम, डिभी अति पाखड को धाम॥१२८६॥
स्वछ अधिक द्विज सवतै घाटि, दौरत ही साहन की हाटि।
करि प्रयोग राजा वसि कियौ, माधवेस नृप गुर पद दियौ॥१२६०॥
गलता वालानद दै आदि, रहे झाकते वैठ वादि।
सवकौ ताहि सिरोमनि कियौ, फुनि वैसनू राज पद दियौ॥१२६१॥
लियौ आचमन पाव पखार, सौप्यौं ताहि राज सव भार।
दिन कितेक बीते है जवै, महा उपद्रव कीनो तवै॥१२६१॥
हुक्म भूप कौ लेकै चाहि, निस जिमाय देवल दिय ढाहि।
अमल राज कौ जैनी जहा, नाव न ले जिनमत को तहा॥१२६२॥

इस घटना के १½ वर्ष तक राज्य मे पूर्ण शान्ति रही। जैन धर्मावलम्बियो ने पुनः अपने मन्दिरो का निर्माण करा लिया। रथयात्रा होने लगी तथा मन्दिरो मे ठाट बाट से पूजा एव उत्सव होने लगे। सवत् १८२१ मे जयपुर नगर मे इन्द्रध्वज पूजन का विशाल आयोजन किया गया जिसमे देश के विभिन्न स्थानो से हजारो स्त्री पुरुषो ने भाग लिया। इस आयोजन मे जैनो ने अपने वैभव का खूब प्रदर्शन किया। जयपुर के महाराजा ने भी एक आदेश जारी किया था कि "पूजा के अर्थि जो वस्तु चाहिये सो ही दरबार सू ले जावो"। लेकिन इस विशाल आयोजन का एक वर्ग विशेष पर अच्छा प्रभाव नही पडा और उन्होने कुछ समय पश्चात् ही एक शिव मूर्ति तोडने का जैनो पर आरोप लगाया। महाराजा ने भी अपनी व्यस्तता के कारण घटना की विशेष जाच नही की। अनेक श्रावको को कैद कर लिया गया। अन्त मे तत्कालिन महापडित टोडरमल के ऊपर सारा दोषारोपण लगाया गया तथा महाराजा के आदेश से उन्हे मृत्यु दण्ड दिया गया और मारने के पश्चात् उनकी लाश को गन्दगी के ढेर मे डाल दिया गया। टोडरमल उस समय क्रान्तिकारी समाज सुधारक एव प्रबल पडित थे। समाज के ऊपर उनका पूर्ण प्रभाव था। महाराजा के आतक के कारण सारा जैन समाज कोई विरोध नही कर सका।

× × × × ×

फुनि मत बरस ड्यौढ मै थप्यो, मिलि सबही फिरि अरहत जप्यो।
लिये देहुरा फेरि चिनाय, दै अकोड प्रतिमा पधराय ।।१३०१।।

नाच कूदन फिरि बहु लगे, धर्म माझि फिरि अधिके पगे।
पूजत फुनि हाथी सुखपाल, प्रभु चढाय रथ नचत विसाल ।।१३०२।।

तब ब्राह्मनु मतौ यह कियौ, सिव उठान कौ टौना दियौ।
तामै सवै श्रावकी कैद, करिके डड किये नृप कैद ।।१३०३।।

यक तेरह पथिनु मै ध्रमी, हो तौ महा जोग्य साहिमी।
कहे खलनि कै नृप रिसि ताहि, हति कै धरयो असुचि थल वाहि।१३०४।

टोडरमल जी के बलिदान के पश्चात् राज्य मे फिर शान्ति ही स्थापित हो गयी और फिर पूर्ववत मन्दिरो मे पूजा पाठ, रथयात्रा उत्सव विधान होने

लगे। चारों ओर अमन चैन व्याप्त हो गया। लेकिन यह शान्ति अधिक समय तक नहीं रह सकी और संवत् १८२६ में एक वर्ग ने धार्मिक विद्वेषता की फिर आग फैला दी। चारों ओर मन्दिरों को लूटा जाने लगा और मूर्तियों को तोड डाला गया। इन लोगों ने किसी की बात नहीं सुनी और कहने लगे कि उन्हें राजा का यही आदेश है। जयपुर, आमेर, सवाईमाधोपुर एवं मण्डार के मन्दिरों को उसी समय लूटा गया। लेकिन महाराजा जयपुर की फिर सारे राज्य में दुहाई फिरी जिससे लूट खसोट होना बन्द हो गया और राज्य में फिर साम्प्रदायिक सद्भावना स्थापित हो गयी।

फुनि भई छब्बीसा के साल, मिले सकल द्विज लघु र विसाल।
सबनि मतौ यक पक्को कियौ, सिव उठान फुनि दूसन दियो ॥१३०७॥

द्विजन आदि बहु मेल हजार, बिना हुकम पाये दरबार।
दौरि देहरा जिन लिय लूटि, मूरति विघन करी बहु फूटि ॥१३०८॥

काहू की मानी नहीं कानि, कही हुकम हमकौं है जानि।
ऐसो म्लेछन हूँ नहीं करी, बहुरि दुहाई नृप की फिरी ॥१३०९॥

दोहा

लूटि फूटि सबह्वँ चुकै, फिरी दुहाई बोस।
कहनावति भई लुटि गए, भाग्यौ बारह कोस ॥१३१०॥

कवि बखतराम के अतिरिक्त तत्कालीन कवि थानसिंह ने भी अपने 'सुबुद्धिप्रकाश' में उस समय की राजनैतिक सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का अच्छा वर्णन किया है। सर्व प्रथम कवि ने महाराजा जयसिंह के शासन का, जयपुर नगर की स्थापना की, एवं वहां व्यापार की बडी प्रशंसा की है। कवि ने लिखा है कि महाराजा जयसिंह ने आमेर और सांगानेर के मध्य में जयपुर नगर बसाया तथा सूत बांधकर नगर के बाजार, दरवाजे आदि बनाये अपने लिये सात मंजिल वाला महल बनवाया तथा राज्य के बाहर से बडे २ सेठ साहूकारों को बुलाकर नगर में बसाया। न्यायसंगत टैक्स लगाये जिससे नगर का व्यापार खूब बढ गया और सांगानेर एवं आमेर उजडने लगे। राज्य के शासन की बागडोर जैनों के हाथों में थी। राजा शैव धर्मानुयायी था। नगर में शैव एवं जैनों के अनेक शिखर बंध मन्दिर थे जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् ईश्वरीसिंह ने शासन की बागडोर सम्हाली और राज्य में शान्ति रही तथा प्रजा भी आनन्द से रहती रही। ईश्वरीसिंह के पश्चात् महाराजा सवाई

माधोसिंह जयपुर के शासक बने। उनके शासन मे शैव धर्मावलम्वी शासन मे प्रधान वन गये और जैनो से विरोध करने का महाराजा से आदेश ले लिये। इसके पश्चात् वेद, धर्म, गुरु, एव शास्त्रो का अपमान किया गया। महाराजा मत्रियो के रहस्य को समझ नही सके और उनके कहने मे आकर नगर के निवासियो से डड वसूल किया गया। इसमे नगर के निवासी अत्यधिक दुखी हो गये। वहुत से लोग नगर छोडकर चले गये। स्वय कवि को जयपुर छोडकर भरतपुर जाना पडा। सवाई माधोसिंह के पश्चात् सवाई प्रतापसिंह जयपुर के महाराजा वने। वे भी अत्यधिक लोभी थे और सभी धर्मावलम्बियो के मन्दिरो का, ब्राह्मणो का एव अतिथियो के धन को भी जवरन ले लिया था इससे नगर मे लोग और भी दुखी हो गये और उदास होकर नगर छोडने लगे।

उक्त दोनो वर्णनो से ज्ञात होता है कि सवत् १८१८ मे लेकर सवत् १८२६ तक जयपुर राज्य का धार्मिक वातावरण काफी उत्तेजनापूर्ण रहा। तथा शासन मे जो शैव धर्मावलम्वी थे उन्होने शासन का फायदा उठाकर दूसरे वर्ग को अधिक से अधिक नुकसान पहुचाने का प्रयास किया। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक नही रही और जयपुर निवासी एक दूसरे के प्रति गहरी सद्भावना के साथ रहने लगे। इसके अतिरिक्त जयपुर के तत्कालीन शासको ने कभी सम्प्रदाय विशेष का पक्ष नही लिया और राज्य मे जैनो को शासन के उच्चस्थ पद पर नियुक्त किया जाता रहा। राव कृपाराम, रामचन्द्र छावडा, वालचन्द छावडा, रतनचन्द जैसे व्यक्ति दीवान के पद पर कार्य करते रहे। और धर्म विशेष का शासन पर कोई प्रभाव नही पडा।

माधव आगै सिव धरमी मुखियौ भयो।
जैन्यासो करि द्रोह वच मैं लै लियो।
देव धर्म गुरु श्रुत की विनय विगरियौ।
कीयौ नाहि विचारि पाप विस्तारियौ।।

भूप अरथ समझ्यो नही मत्री के वसि होय।
डड सहर मैं नाखियौ दुखी भये सव लोय।
विविध भाति धन घटि गयौ पायौ वहुत क्लेस।
दुखी होय पुर को तजो तव ताकौ परदेस।।

सुबुद्धिप्रकाश

जयपुर नगर की स्थापना

महाराजा सवाई जयसिंह केवल योद्धा एवं राजनीतिज्ञ ही नहीं थे किन्तु नगर निर्माता भी थे। सन् १७२५ में उन्होंने 'जयनिवास' नामक महल की नींव रखी और नवम्बर १७२७ में महल के चारों ओर एक नवीन नगर का निर्माण प्रारम्भ करा दिया। पहिले इस नगर का नाम जयनगर रखा गया। बाद में सवाई जयपुर के नाम से प्रसिद्ध हो गया और अब केवल जयपुर के नाम से विख्यात है। इस नगर के निर्माण का सबसे अधिक श्रेय विद्याधर नाम के व्यक्ति को है, जिसे टाड ने जैन लिखा था लेकिन अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार वह बंगाली था। नगर निर्माण के पश्चात् उसका महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा खूब सम्मानित किया गया। उसे रेवन्यू मिनिस्टर बनाया गया। उसके नाम से एक विद्याधर का रास्ता एवं विद्याधर का बाग बनाया गया तथा इसके अतिरिक्त पांच हजार की जागीर भी उसे दी गयी।

जयपुर नगर तीन ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर की ओर आमेर है जो पहिले राज्य की राजधानी था। तथा दक्षिण की ओर सागानेर है जो जयपुर बसने से पूर्व एक वैभवशाली नगर था। नगर के चारों ओर परकोटा बनाया गया था। उसके नीचे एक गहरी खाई थी जो नदी के समान लगती थी। ऊंचे ऊंचे दरवाजे थे। चौपड़ के समान बाजार थे तथा जिनके बीच बीच में चौक बनाये गये थे। बाजार की सड़क के एक ओर नहर थी जिसे चौपड़ पर बने हुए कुण्डों को पानी मिलता था और जयपुर के नागरिक इनका पानी पीते थे। बाजार एवं गलियों को एकदम सीधा बनाया गया था और फिर उसी के अनुसार महल एवं मकान बनाये गये थे। जयपुर बसने के पश्चात् नगर में बसने के लिये राज्य के बाहर से भी धनाढ्य व्यापारियों को बुलाया गया था, जिससे नगर का व्यापार खूब बढ़ गया था। कविवर बख्तराम ने अपने बुद्धि विलास में जयपुर नगर की उत्पत्ति का बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया है। वर्णन का प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है—

सोहै अंबावति की दक्षिण दिसि सागानेरि,
दोऊ बीचि सहर अनौपम बसायो है।
नाम ताको धरचौ है स्वाई जयपुर,
मानौं सुरनि ही मिलि सुरपुर सौं रचायौ है ॥६८॥

चारयौ दिसी रच्यो उतग कोट,
ता परि कगुरनि की वनी जोट।
तिह तलि चौडी खाई वनाय
औडी मनु सरिता चली जाय ।।९९।।

दरवाजे ऊ चे वने गोख
पौरिया वैठि तिह करत जोख।
चौपरि के कीन्हे हैं वाजार
विचि वीचि वनाए चौक चार ।।१००।।

ल्याऐ नहैरि वाजार माहि।
विचि मैं ववे गहरे रखाहि।
चौकनि मैं कु ड रचे गभीर।
जग पीवत तिनकौ मिष्ट नीर ।।१०१।।

हाटिन कै विचि रस्ता रखाय।
दीन्हे, ते सूधे चले जाय।
वहु वने हवैली कूप वाग।
सु दर तिनु लखि मन लगत लाग ।।१०२।।

धनवान जु व्यौपारी कितेक
वहु देस सुदेसनि तै आऐ अनेक
ते करत विणज अति निसक होय
परदेस सुदेसहि जात कोय ।।१०३।।

नगर मे ज्योतिष यत्रालय का निर्माण कराया गया जिससे ग्रहो की चाल का अच्छी तरह से पता लगने लगा और उसी के आधार पर 'जयविनोद' नाम से तिथि पत्र निकलने लगा। देश के कोने-कोने से पडित आने लगे और साहित्य, तर्क एव न्याय पर विविध चर्चायें होने लगी। कारीगरो को वसाया गया जिससे नगर का व्यापार बढने लगा। वाजार मे समुदायो मे दुकानें थी जिसमे ग्राहको को ठीक भावो पर वस्तुयें मिलती रहती थी। पहाडो के नीचे ही तालकटोरा था जिसका दूसरा नाम जयसागर भी था। इसमे

विविध प्रकार के पक्षीगण बैठे रहते थे। महाराजा ने अपने निवास के लिए सात मजिल वाला चन्द्रमहल बनाया जिसकी शोभा अवर्णनीय है। नगर के तीन ओर पर्वत मालाओ पर अनेक गढ बनवाये गये इनमे रघुनाथगढ, शकरगढ, हथरोई, सुदर्शनगढ एव जयगढ, के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराजा सवाई जयसिंह ने जयपुर नगर मे अश्वमेध यज्ञ भी किया था। इस यज्ञ मे भाग लेने के लिए जितने ब्राह्मण पडित आये थे उनको महाराजा ने विशेष रूप से ब्रह्मपुरी मे बसा दिया।

जयपुर नगर की सुन्दरता के बारे मे पाश्चात्य कलाविदो ने बहुत प्रशसा की है। फादर तीफेन्थलर ने जयपुर नगर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "यह नगर जबकि एकदम नवीन नगर है फिर भी देश के पुराने नगरो मे भी सुन्दर है क्योकि प्राचीन नगरो मे बाजार एव गलिया अत्यधिक सकडे हैं जबकि जयपुर नगर की प्रत्येक गली एव बाजार समान रूपसे लम्बे चौडे हैं। मुख्य सडक जो सागानेरी गेट से आरम्भ होती है तथा उत्तरी गेट तक जाती है इतनी चौडी है कि छह सात गाडिया आसानी से एक साथ निकल सकती हैं। नगर मे अनेक सुन्दर मन्दिर है जो शिव अथवा विष्णु के है।" इसी तरह सन् १८२० मे जब किसी ब्रिटिश मिलिटरी अधिकारी ने जयपुर नगर को देखा तब उसने निम्न शब्द कहे थे[1]

"जयपुर नगर के प्रमुख सडकें इगलैण्ड की बहुत सी सडको से उत्तम है। यह इण्डिया का सर्वोत्तम नगर है।" इसी तरह और भी पाश्चात्य एव भारतीय कला विशारदो ने जयपुर नगर के निर्माण की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है।

जयपुर नगर को गुलाबी नगर कहा जाता है। और इसी नाम ने यह सारे देश मे विख्यात है। गत २०० वर्षों मे इसकी सुन्दरता मे परिवर्द्धन होता रहा है, तथा सरगासूली, हवामहल, म्यूजियम, एवं रामनिवास बाग से नगर की सुन्दरता में अभिवृद्धि हुई है।

१८वी शताब्दी के एक हिन्दी विद्वान् भाई रायमल्ल ने सवत् १८२१ में लिखी एक पत्रिका में इसे जैन नगरी के रूप में लिखा हैं। यहा जितनी सख्या में दि० जैन मन्दिर हैं उतने देश के किसी नगर में नही है तथा सवत् १७८४ से लेकर सवत् १९५० तक जितने अधिक जैन विद्वान् हुए उतने अन्यत्र किसी

---

1 History of Jaipur State by Dr, M L Sharma

नगर मे नही हो सके। नगर मे हस्तलिखित शास्त्र भण्डारो की सख्या भी काफी अच्छी है जिनमे २५ हजार से भी अधिक ग्रन्थो का सग्रह मिलता है।[1]

विशाल मन्दिरो का नगर

महाकवि दौलतराम ने जयपुर का निर्माण अपनी आखो मे देखा होगा। तथा उसके निर्माण की योजना को कार्यान्वित करने मे सरकार की ओर से अवश्य ही भाग लिया होगा। जयपुर नगर विशाल मन्दिरो का नगर है। यहा जितनी सख्या मे शैव, वैष्णव एव जैन मन्दिर हैं उतनी संख्या मे देश मे अन्यत्र कही भी नही मिलते। यही नही सभी मन्दिर विशाल हैं और कलापूर्ण भी हैं जिनमे वर्तमान समय मे भी दर्शनार्थियो की अपार भीड लगी रहती है। प्रमुख बाजारो मे, चौपड के चारो ओर एव गलियो में एक के बाद दूसरा मन्दिर देखने को मिलेगा, जिसकी सीढिया बाजार की प्रमुख सडक की पटरी को छूती हुई होती हैं। नगर के परकोटे मे इतने अधिक मन्दिरो का निर्माण तत्कालीन जनता की धार्मिक प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट सकेत है। चौडा रास्ता मे स्थित ताडकेश्वरजी का मन्दिर शैव मन्दिरों मे सबसे प्रसिद्ध एव प्राचीनतम मन्दिर है, इसी तरह गोविन्ददेवजी का मन्दिर एव रामचन्द्रजी का मन्दिर यहा के प्रसिद्ध एव लोकप्रिय मन्दिरो मे से हैं।

वैष्णव एव शैव मन्दिरो के समान नगर मे जैन मन्दिरो की सख्या भी कम नही है। जयपुर नगर एव उसके उपनगरो मे स्थित जैन मन्दिरो एव चैत्यालयो की सख्या पहिले १७५ मानी जाती थी लेकिन वर्तमान मे कुछ नये मन्दिर बन गये हैं और कुछ चैत्यालय कम हो गये है। नगर के अधिकाश मन्दिर विशाल एव कलापूर्ण हैं। जिनमे अत्यधिक मनोज्ञ एव प्राचीन मूर्तिया विराजमान हैं। दि० जैन मन्दिर पाटोदी एव दि० जैन तेरहपथी बडा मन्दिर यहा के प्राचीनतम मन्दिर है। कहते है इनका निर्माण जयपुर के निर्माण के साथ हुआ था। पचायती मन्दिरो के अतिरिक्त अधिकाश मन्दिर विशिष्ट व्यक्तियो द्वारा निर्मित है। विशाल मन्दिरो मे जैन मन्दिर बडा दीवानजी दि० जैन मन्दिर छोटा दीवानजी, सिरमोरियो का मन्दिर, सघी जी का मन्दिर, खिन्दूको का मन्दिर, ठोलियो का मन्दिर, महावीर स्वामी का मन्दिर, दारोगाजी का मन्दिर, बधीचन्द जी का मन्दिर, चाकसू का मन्दिर, चौवीस

---

१ देखिये श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीर जी से प्रकाशित राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग १ से ४ तक।

महाराज का मन्दिर, खानियो का राणाजी का मन्दिर आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय है। इनमे कितने ही मन्दिरो मे विशाल शास्त्र भण्डार हैं जिनमे प्राकृत, अपभ्रश सस्कृत एव हिन्दी की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया है जिनकी सख्या २५ हजार से कम नही है और जो राष्ट्र के अमूल्य सपत्ति है तथा समूचे राजस्थान को जिन पर गर्व है।

सामाजिक स्थिति

महाकवि दौलतराम के समय मे राजनैतिक अस्थिरता के समान देश की सामाजिक स्थिति भी डावाडोल ही थी। मुगल सम्राट् औरगजेब के अत्याचारो के कारण समस्त हिन्दू समाज त्रस्त, पीडित एव भयभीत था। जैन समाज भी मुगलो के उत्पीडन से बच नही सका था। मध्यप्रदेश मे सेकडो जैन मन्दिरो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था और सस्कृति एव साहित्य की रक्षा कैसे हो यह प्रमुख समस्या सबके सामने बनी हुई थी। जैन समाज विभिन्न वर्गो मे विभाजित था। १८वी शताब्दी तक भट्टारको का जबरदस्त प्रभाव था। शासन एव जनता दोनो मे ही उनका पूर्ण प्रभाव था। देहली पट्ट के भट्टारको का जिनमे भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एव प्रभाचद्र के नाम उल्लेखनीय है, उत्तरी भारत मे अपना जबरदस्त प्रभाव स्थापित कर रखा था। इनकी विद्वत्ता एव त्याग ने जनता पर जादू जैसा कार्य किया था। इनके प्रभाव के कारण अनेक मन्दिरो का निर्माण हुआ एव बडी-बडी प्रतिष्ठायें हुई। लेकिन फिर भी देहली के बादशाह सिकन्दर लोदी (१३८९-१४१७ ई०) की कट्टरता एव असहिष्णुता के कारण देहली से भट्टारक पट्ट चित्तौड स्थानान्तरित किया गया और मडलाचार्य धर्मचन्द्र (सन् १५२४) चित्तौड पट्ट पर आसीन हुए। इनके कुछ वर्षो पश्चात् ही भट्टारक रत्नकीर्ति ने नागौर मे भट्टारक गादी स्थापित की। मुगलो के चित्तौड पर भी बराबर आक्रमण होते रहने के कारण धर्मचन्द्र के शिष्य ललितकीर्ति ने (सवत् १६०३) चित्तौड मे अपनी गादी स्थानान्तरित की और राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र मे अपना जबरदस्त प्रभाव स्थापित किया।

भट्टारक ललितकीर्ति द्वारा भट्टारक गादी स्थानान्तरित किये जाने के पश्चात् राजस्थान के इस क्षेत्र मे साहित्यिक एव सास्कृतिक जागरण पुन प्रारभ हुआ। इस समय आमेर के राज्य मे प्राय शान्ति थी और मुगलो के आक्रमण का कोई डर नही था। भट्टारक ललितकीर्ति के पश्चात् भट्टारक चन्द्रकीर्ति एव भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति हुए जिन्होने अपनी विद्वता तथा त्याग के बल पर सारे राजस्थान मे अपना प्रभाव स्थापित किया। सवत् १६६१ मे

सागानेर मे भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पट्ट पर बैठे। कवि बखतराम साह ने अपने "बुद्धिविलास" मे इसका निम्न प्रकार वर्णन किया हैं—

नरेद्रकीरति नाम, पट इक सागानेरि मैं।
भये महागुन-धाम, सोलहसैं इक्याणवैं ।। ६६६ ।।

भ० नरेन्द्रकीर्ति का देश के विभिन्न भागो मे बडा भारी प्रभाव था। राजस्थान, मालवा, मेवाड, महाराष्ट्र एव देहली आदि मे इनके कितने ही भक्त रहते थे और जब वे जाते तो उनका खूब स्वागत होता था। तत्कालीन कितने ही विद्वान इनके शिष्य एव प्रशसक थे। अनेक स्तोत्रो की हिन्दी गद्य मे टीका करने वाले अखयराज इन्ही के शिष्य थे। सवत् १७१७ मे इन्होने अपनी सस्कृत मजरी की प्रति भेट की थी। इसी तरह टोडारायसिंह के प्रसिद्ध कवि पडित जगन्नाथ इन्ही के शिष्य थे। इनके समय मे टोडारायसिंह मे सस्कृत ग्रन्थो के पठन पाठन का अच्छा प्रचार था। अष्टसहस्री एव प्रमाणनिर्णय जैसे न्याय ग्रन्थो का लेखन, प्रवचन एव पाठन होता था।

लेकिन इन्ही भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के समय मे दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध तेरापथ का प्रभाव बढने लगा जिससे तत्कालीन समाज मे व्याप्त शिथिलाचार का विरोध होने लगा। बखतराम साह ने अपने मिथ्यात्वखडन (स० १८२१) मे इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

भट्टारक आवैरि के नरेन्द्रकीरति नाम।
यह कुपथ तिनकै समै नयो चल्यो अघ धाम ।।

लेकिन सवत् १८२७ मे समाप्त होने वाले बुद्धि विलास मे इन्होने तेरहपथ का उदय सवत् १६८३ मे माना है।

इनही गछ मैं नीकस्यौ, नूतन तेरह पथ।
सौलह सैं तीयासिये सो सब जग जानत ।। ६२७ ।।

इस प्रकार लगता है बखतराम स्वय भी इस पथ के उदय के सम्बन्ध मे एक मत नही है। लेकिन कुछ भी हो भ० नरेन्द्रकीर्ति के समय मे तेरहपथ ने काफी जोर पकड लिया था। इन्ही के समय सगानेर मे अमरा भौसा हुए जो अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। जिन्हे अपनी सम्पत्ति पर काफी गर्व था। एक बार जिनवानी का अविनय करने के कारण इन्हे मन्दिर मे निकाल दिया गया

था। इससे क्रोधित होकर ये भट्टारकों के विरोधी बन गये और तेरहपथ के प्रचार प्रसार मे पूर्ण योग देने लगे। इसका पुत्र जोधराज भी इन्ही के विचारो का था। वह सस्कृत एव हिन्दी का बडा भारी विद्वान था। इन्होने सम्यक्त्व कौमुदी भाषा (सवत् १७२४) प्रवचनसार भाषा (सवत् १७२६। पद्मनदिपच-विंशति (स० १७२४) ज्ञानसमुद्र एव प्रीतिकर चरित जैसी महत्वपूर्ण रचनाओ का निर्माण करके हिन्दी साहित्य की बडी भारी सेवा की थी।

तेरहपथियो के विरोध के बावजूद भट्टारको के प्रभाव मे कोई विशेष अन्तर नही आया। भट्टारक नरेंद्रकीर्ति के पश्चात् भ० सुरेन्द्रकीर्ति (सवत्-१७२२) जगत्कीर्त्ति (सवत् १७३३) भट्टारक गद्दी पर बैठे। सवत् १७४६ मे भट्टारक जगत्कीर्त्ति ने चादखेडी मे एक विशाल प्रतिष्ठा समारोह का सचालन किया जिससे उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव मे और भी वृद्धि हुई। समाज मे इन भट्टारकों ने पूजा पाठ, विधान आदि मे इतना वाह्याडम्बर ला दिया था, जिसने समाज के प्रबुद्ध वर्ग के चिन्तन पर गहरी चोट की। समाज मे अध्यात्म शैली के नाम से जो गोष्ठिया चलती थी उन्होने तेरहपथ के प्रचार मे पर्याप्त सहायता दी और आगे चलकर ये ही गोष्ठियाँ तेरहपथ की गोष्ठियो मे परि-वर्तित हो गयी। महाकवि दौलतराम जब आगरा गये थे तो वहाँ अध्यात्मसैली पहिले से ही चलती थी और जब उन्होने उदयपुर मे शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया तो उसे भी इसी सैली के नाम से प्रसिद्ध किया।

१६ वी शताब्दी के आरम्भ मे जयपुर मे महापडित टोडरमल का उदय हुआ। टोडरमल जी महान् विद्वान् थे, शास्त्रो के ज्ञाता थे वक्तृत्व कला मे अत्यधिक प्रवीण थे और इन सबके अतिरिक्त समाज सुधार मे अग्रसर थे। वे भट्टारक परम्परा के पूर्ण विरोधी थे और तेरहपथ के कट्टर समर्थक थे। इन्होने इस युग मे तेरहपथ के प्रचार मे सबसे अधिक योग दिया। तेरहपथ के प्रचार मे प० टोडरमल जी के अतिरिक्त भाई रायमल्ल, दीवान रतनचन्द्र, दीवान बालचन्द आदि विशेष सहायक बने। इन्होने ज्ञान के प्रसार के लिए विशेष प्रयत्न किये और बालक बालिकाओ को धार्मिक ज्ञान प्रदान करने के लिए कुछ विद्वानो को नियुक्त किया। भाई रायमल्ल ने अपनी एक पत्रिका मे इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"और यहा देश बारा लेखक सदैव सासते जिनवाणी लिखते हैं। वा सोधते हैं। और एक ब्राह्मण महैंनदार चाकर रख्या है सो बीस तीस

लडके बालकन कू न्याय व्याकरण गणित शास्त्र पढाते हैं । और सौ पचास भाई वा बाया चर्चा व्याकरण का अध्ययन करे है ।"

सवत् १८२१ मे जयपुर मे 'इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव' का आयोजन विशाल रूप मे हुआ था। भाई रायमल्ल ने अपनी पत्रिका मे इनका जिस सुन्दर ढग से वर्णन किया है उससे पता चलता है कि इस महोत्सव मे देश के विभिन्न भागों से हजारो की सख्या मे स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए थे। जयपुर दरबार की ओर से इस आयोजन को सफल बनाने के लिए पूरी सुविधाए प्रदान की गयी थीं। भाई रायमल्ल ने लिखा है कि "ए उछव फेरि ई पर्याय मैं देखणा दुर्लभ है। ए कार्य दरवार की आज्ञा सू हुवा है और ए हुकम हुवा है जो थाकै पूजाजी कै अर्थि जो वस्तु चाहिजे सो ही दरबार सूं ले जावो। ' अर दोन्यू दिवान रतनचन्द वा बालचन्द या कार्य विषै अग्रेश्वरी है" ।

लेकिन इतना होने पर भी बीस पथ आम्नाय वालो का प्रभाव कम नही हुआ था। महापडित टोडरमल जी के समय मे भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति एव भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पट्ट पर विराजमान थे। प० टोडरमलजी के होते हुए इन दोनो भट्टारको का सवत् १८१५ एव सवत् १८२२ मे जयपुर मे ही पट्टाभिषेक किया गया और जयपुर नगर को इन्होने अपनी गतिविधियो का केन्द्र बनाया। एक ओर सवत् १८२१ मे जयपुर नगर मे टोडरमल जी के समर्थको की ओर से विशाल इन्द्रध्वज पूजन का आयोजन हुआ तो दूसरी ओर से सवत् १८२६ मे सवाई माधोपुर मे विशाल पचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह हुआ जिसका भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने सचालन किया था। इस विशाल आयोजन मे हजारो मूर्तियो की प्रतिष्ठा की गयी और उन्हे राजस्थान के प्राय प्रत्येक गाव के जैन मन्दिर मे स्थापित की गयी। यह प्रतिष्ठा सगही नन्दलाल ने करायी थी और इसमे लाखो रुपया व्यय करके भट्टारको के प्रभाव को पुन स्थापित किया गया। महापडित टोडरमल जी के बलिदान के कुछ समय पश्चात् ही उनके विरोधियो की ओर से ऐसा विशाल आयोजन से ऐसा लगने लगा जैसे मानो कोई विशेष घटना ही नही घटी हो। जिस प्रकार महापडित टोडरमल ने सिद्धान्त ग्रन्थो की भाषानुवाद करके अपनी विचार धारा के प्रचार मे वृद्धि की उसी प्रकार बीस पथ के कट्टर समर्थक एव भट्टारक परम्परा के प्रशसक पडित बखतराम साह ने सवत् १८२१ मे अपने "मिथ्यात्व खडन" ग्रन्थ मे तेरहपथ की कडी आलोचना की तथा सवत् १८२७ मे बुद्धि विलास

को लिख कर जैन इतिहास पर विशेष प्रकाश डाला । वखतराम का 'मिथ्यात्व खडन" महापडित टोडरमल के सुधारवादी विचारो का जवाब था ।

समाज मे पचायत प्रथा का जोर था । पचायत की आज्ञा विना कोई भी सामाजिक एव धार्मिक कार्य नही होते थे । समाज एव जाति से वहिष्कृत करना इनका साधारण कार्य था । जयपुर मे ऐसी ही चार पचायतें थी जिनमें दो पचायत तेरहपथ तथा दो वीसपथ अम्नाय वाले श्रावको की थी । जयपुर मे पाटोदी का मन्दिर, चाकसू का मन्दिर, वडा मन्दिर एव वधीचन्द जी मन्दिर क्रमश वीस एव तेरहपथ आम्नाय के पचायती मन्दिर कहलाते हैं ।

जयपुर नगर में जैन समाज का अत्यधिक प्रभाव था । शासन में उनका पूरा जोर था और अधिकाश दीवान जैन ही हुआ करते थे । यदि हम सवत् १८१८ से १८२६ तक के समय को इतिहास मे से निकाल दें तो फिर शेष समय मे जयपुर के शासन मे सदैव जैनो का जोर रहा और यही कारण है कि देश मे किसी भी नगर मे इतने जैन मन्दिर एव चैत्यालय नही हैं जितने जयपुर मे मिलते हैं । सवत् १८२१ मे लिखी एक पत्रिका मे जयपुर नगर का जो वर्णन किया गया है वह इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—

और ई नग्र विषै सात विषन का अभाव हैं । भावार्थ ई नग्र विषै कलाल कसाई वेश्या न पाइए है और जीव हिंसा की भी मनाई है । राजा का नाम माधवसिंह है ताकै राज विषै वर्तमान (इस समय) एते कुविसन दरबार की आज्ञातै न पाईए हैं । अर जेनी लोग का समूह बसै है । दरवार के मतसद्दी सर्व जैनी हैं और साहूकार लोग सर्व जैनो हैं जद्यपि और भी हैं परि गौणता रूप है मुख्यता रूप नाही । छह सात वा आठ वा दस हजार जैनी महाजना का घर पाईए है । ऐसा जैनी लोगा का समूह और नग्रविषै नाही और इहा के देश विषै सर्वत्र मुख्यपणै श्रावगी लोग बसै है तातै एह नग्र व देश वहोत निर्मल पवित्र है । तातै धर्मात्मा पुरुष वसनें का स्थानक है । अवार तौ ए साक्षात् धर्मपुरी है ।"

महापडित टोडरमल जी के पश्चात् जयपुर नगर मे जितने भी पडित एव शास्त्रो के ज्ञाता हुए उनमे प्रमुख तेरहपथ आम्नाय वाले थे तथा टोडरमल के गहरे प्रशसक थे । इन विद्वानो मे पडित जयचन्द जी छाबडा, प० गुमानीराम भावसा एव प० सदासुख कासलीवाल के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं । लेकिन धीरे-धीरे तेरह और वीस पथो का वैमनस्य समाप्त होने लगा और इच्छानुसार पथो को मानने की स्वतन्त्रता दे दी गयी । यही कारण है

कि संवत् १८६१ मे जयपुर नगर मे जो विशाल प्रतिष्ठा समारोह हुआ था वह भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति के निर्देशन मे सम्पन्न हुआ तथा इस समारोह को प्रतिष्ठा कराने वाले थे। दीवान बालचन्द के सुपुत्र संघही रायचन्द। दीवान बालचन्द टोडरमल जी के प्रशसको मे से थे एव तेरहपथ की ओर उनका विशेष झुकाव था।

महाकवि की अब तक १८ रचनाओ की खोज की जा चुकी है। इन रचनाओ को हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते हैं—

१ मौलिक रचनाये
२. अनूदित रचनायें
३ टब्बा टीकायें

मौलिक रचनाओ मे हमने उन रचनाओ को लिया है जिन्हे कवि ने पूर्व आचार्यो के ग्रन्थो पर आधारित होने पर भी स्वतन्त्र रूप से निबद्ध किया है तथा जिनमें अपना मौलिक चिन्तन दिया है। इसके अतिरिक्त इस श्रेणी मे वे रचनायें भी सम्मिलित हैं जिनमे कवि ने अपने सर्वथा मौलिक विचार लिखे हैं। विवेक विलास एव अध्यात्म बारहखडी ऐसी ही कृतियो मे है। कवि की मौलिक रचनाये निम्न प्रकार हैं—

१ त्रेपनक्रियाकोश
२ जीवधर चरित
३ अध्यात्मबारहखडी
४ विवेक विलास
५ श्रेणिक चरित
६ श्रीपाल चरित
७ चौबीस दण्डक
८ सिद्ध पूजाष्टक

इसके पश्चात् वे रचनाये रखी गयी हैं जो भाषा वचनिका के रूप मे लिखी गयी हैं जिनमें कवि ने पूर्वाचार्यों की रचनाओ का हिन्दी गद्य मे वचनिका के रूप में अर्थ किया है और अपनी ओर से विशेष घटाया बढाया नही है। लेकिन कवि ने जिस कला के साथ उनकी भाषा टीका लिखी है वे ऐसी लगने लगी है जैसे वे मानो कवि की पूर्णत मौलिक रचनाये हैं। कवि ने इनको जिस धारा प्रवाह में लिखा है वही उसकी स्वय की कला है। ऐसी रचनाओ मे निम्न रचनाये आती है—

१ पुण्यास्रवकथाकोश

२. पद्मपुराण
३ आदिपुराण
४. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
५ हरिवशपुराण
६ परमात्मप्रकाश
७ सार समुच्चय

इसके अतिरिक्त तीन ऐसी रचनाये है जिनकी टीकाओ को कवि ने टव्वा टीका का नाम दिया है। टव्वा टीका का अर्थ उस टीका से हैं जिसमें कवि ने किसी कृति का हिन्दी मे पूरा अर्थ नही लिखा हो किन्तु पाठको को उनका अर्थ समझाने के लिए सकेत के रूप मे कठिन शब्दो का उनके ऊपर ही अर्थ लिख दिया हो। ऐसी रचनाओ में निम्न रचनाओ को लिया गया है—

१ तत्वार्थसूत्र टव्वा टीका
२ वसुनन्दि श्रावकाचार टव्वा टीका
३ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टव्वा टीका

इन सभी १८ रचनाओ का सक्षिप्त परिचय विषय के वर्गीकृतानुसार यहाँ दिया जा रहा है—

१ त्रेपनक्रियाकोश :

"त्रेपनक्रियाकोश" का नाम यद्यपि "पुण्यास्रवकथाकोश" से अन्तिम दो शब्दो मे साम्यता रखता है, लेकिन यह कथा प्रधान न होकर आचार प्रधान रचना है, जैसा कि इसके नाम से ही रचना के विषय का बोध होता है। इसमे श्रावको द्वारा पालने योग्य ५३ क्रियाओ का अति सूक्ष्म एव विस्तृत विवेचन किया गया है। इन ५३ क्रियाओ के नाम निम्न प्रकार हैं—

८ मूलगुण—पाच उदम्बर एव तीन मकार (मद्य, मास एव मधु)
१२ व्रत—पच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत
१२ तप—छह वाह्य तप—अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन एव कायक्लेश।
छह आभ्यतर तप—प्रायश्चित, विनय वैयावृत्य स्वाध्याय कायोत्सग और ध्यान।

१ सम्यक्त्व
११ प्रतिमा
४ दान
१ जलगालण
१ रात्रि भोजन त्याग
३ रत्नत्रय

—————

५३ योग

—————

मानव मात्र के जीवन को शुद्ध, सात्विक एव आचारवान वनाने के लिये इन क्रियाओ का पालन आवश्यक है। कवि ने अपने रचना चातुर्य से इन सवका इतना सुन्दर वर्णन किया है कि सारा क्रियाकोश ही एक धारा-वाहिक उपन्यास सा मालूम देता है। गृहस्थो के जीवन-विकास एव सुधार की ऐसी परिष्कृत कृति भारतीय साहित्य की सुन्दरतम कृति है।

"क्रियाकोश" यद्यपि पूर्णत धार्मिक रचना है। श्रावको की क्रियाओ से इसका सम्वन्ध है लेकिन फिर भी कवि ने इसे पूर्णत रुचिकर, आकर्षक तथा सरस वनाने का प्रयास किया है। जिस समय यह रचना निवद्ध की गयी थी उस समय कवि अपनी पूर्ण यौवनावस्था मे था। जगत का वैभव उनके लिए सुलभ था। एक ओर शासन का उच्चपद उन्हे प्राप्त था तो दूसरी ओर उनकी विद्वत्ता, साहित्यिक रूचि एव लोकप्रियता की कहानी चारो ओर फैल चुकी थी। आगरा एव जयपुर मे उन्होने जो ख्याति प्राप्त की थी उसमे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। ऐसे समय मे त्रेपनक्रियाकोश' की रचना इस तथ्य की ओर सकेत करती है कि तत्कालीन जैन समाज मे जो आचार हीनता एव क्रियाओ के पालन मे ढिलाई व्याप्त हो गयी थी, उससे कवि स्वय खिन्न थे। उन्हे शिथिलता जरा भी पसन्द नही थी। इसलिये उदयपुर जाने के पश्चात् ही उन्होने 'त्रेपनक्रियाकोश' को रचना निवद्ध किया। जिसके महत्व के सम्वन्ध मे उन्होने निम्न शब्दो का प्रयोग किया है—

सव ग्रथनि मे त्रेपन किरिया, इन करि इन विन भव वन फिरिया।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपनो कारिज सारै ।।२१३३।।

सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञान स्वरूपा अति प्रति वुद्धा ।।२१३४।।

है अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा।
ठौर ठौर इनको जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ।।२१३५।।

—रचना के अन्त मे कवि ने हिन्दी भाषा मे रचना का औचित्य-वर्णन करते हुए लिखा है कि गणधरो एव आचार्यों ने प्राकृत मे इन क्रियाओ का वर्णन किया है तथा सस्कृत भाषा को इस पचमकाल मे बहुत कम व्यक्ति समझते हैं, इसलिए सस्कृत कृतियो के आधार पर ही यह कृति उन्हे नर भाषा अर्थात् हिन्दी मे लिखी है। उस समय हिन्दी को 'नर भाषा' से सम्बोधन किया जाता था, ऐसा सकेत कवि की एक प्रशस्ति से मिलता है—

गणधर गावै मुनिवर गावें, देवभाष मै शबद सुनावै।
पचमकाल माहि सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ।।२१३६।।
तातै यह नर भाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारे लीनी।
जो नर नारि पढै मन लाई, सो सुख पावै अति अधिकाई ।।२१३७।।

रचना काल

त्रेपन क्रियाकोश की रचना उदयपुर मे रहते हुये की गई थी। उस दिन सवत् १७९५ की भादवा सुदी १२ मगलवार का शुभ दिन था। तथा कवि सवाई जयसिंह के पुत्र सवाई माधोसिंह के मत्री एव सवाई जयसिंह की ओर से उदयपुर दरबार मे जयपुर का प्रतिनिधित्व करते थे—

सवत सत्रासै पच्चाणव, भादव सुदि बारस तिथि जाणव।
मगलवार उदैपुर माहैं, पूरन कीनी ससै नाहै ।।२१३८।।
आनद सुत जयसुत को मत्री, जय को अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनिदासा, जिन मारग की शरण गहै ।।२१३९।।

विषय वर्णन :

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, त्रेपनक्रियाकोश मे ५३ क्रियाओ का वर्णन किया गया है। क्रियाकोश अध्यायो अथवा भागो मे विभक्त नहीं है, किन्तु नियमानुसार उसका नामोल्लेख कर दिया गया है। सर्व प्रथम ६९ पद्यो मे मगलाचरण किया गया है। जिसमे ६३ शलाका महापुरुषो को आचार्य कुन्द-कुन्द, दशलक्षण धर्म, षोडशकरण भावना, रत्नत्रय एव सब साधुओ को नमस्कार किया गया है। इसके पश्चात् त्रेपन क्रियाओ का वर्णन प्रारम्भ होता है। अष्ट मूलगुणो का त्याग करने के लिये कवि ने सोदाहरण

तर्क प्रस्तुत किया है। पच उदम्बर–बडफल, पीपल फल, पाकर, श्रमर एव कट्रूमर फलो मे असख्य जीवो का निवास रहता है इसलिए मद्य, मास एव मधु के साथ ही इनका सेवन भी वर्जित है। इसी प्रसंग मे २२ अभक्ष्यों का भी वर्णन आया है। इसके पश्चात् रसोई, जलगृह एव हाथ चक्की की क्रियाओ मे सावधानी बरतने के लिए कहा गया है। जिससे जीव हिंसा न हो। भोजन जितना सात्विक होगा उतना ही वह स्वास्थ्यप्रद होगा। भारतीय जीवन में खान-पान की शुद्धि को जो विशेष महत्त्व दिया गया है, इस दृष्टि से कवि ने इसका वर्णन किया है। जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म हैं, इसलिये भोजन की सभी क्रियाओ में अहिंसा धर्म का परिपालन आवश्यक है। कविवर दौलतराम ने अपनी इस कृति मे इन सब पर बडा ही सूक्ष्म वर्णन किया है—

अण जाण् फल त्यागहु मित्र, अणछाण्यो जल ज्यों अपवित्र।
त्यागो कदमूल बुधिवत, कदमूलमे जीव अनन्त ॥११६॥

× × × × ×

दधि गुड खावो कबहु न जोग, वरजे श्रीगुर वस्तु अजोग।

मूलगुणो का वर्णन करने के पश्चात् बारहव्रतों का विस्तृत वर्णन किया गया हैं। इन बारह व्रतो के नाम है—पच अणुव्रत —अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एव परिग्रहपरिमाणुव्रत। तीन गुणव्रत—दिग्व्रत, देशव्रत, एव अनर्थदण्डव्रत। चार शिक्षाव्रत—सामायिक, प्रोपधोपवास, भोगोपभोगपरिमाणव्रत एव वैयावृत्य। इन १२ व्रतो का वर्णन ३८८ पद्य से प्रारम्भ होकर १३५० पद्य सख्या तक समाप्त होता है। इस प्रकार क्रियाकोश ग्रथ का आधे से अधिक भाग इन व्रतो के वर्णन तक सीमित है। वास्तव में ये १२ व्रत ऐसे हैं जिनके पालने से मानव देवत्व सम बन सकता है। उसमें से बुराइयां समाप्त हो जाती हैं तथा अच्छाइयो की ओर उसकी जीवनचर्या बढने लगती है। यदि इन व्रतो का अणु मात्र भी हमारे जीवन में उतर जावे तो हमारा देश सभी दृष्टियो मे उन्नत हो सकता है।

व्रतो के वर्णन के पश्चात् १२ तपो के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। आत्मा के विकारो पर विजय पाने के लिए तपो का परिपालन आवश्यक बतलाया गया है। इनमे ६ बाह्य तप हैं जिनका शारीरिक क्रियाओ से सम्बन्ध है। उपवास करना, भूख से कम खाना, प्रतिदिन किसी एक रस

का परित्याग करना, शय्या छोडकर सोना तथा शरीर को क्लेश देना ये सभी वाह्य तप है। इनके परि-पालन से साधुओ की तपश्चर्या मे दृढता आती है। इसी प्रकार छह अभ्यतर तप भी है। जिन्हे साधक स्वयमेव करता है और जिनसे उदात्त भावो के शमन मे शान्ति मिलती है।

इसके पश्चात् सम्यक्त्व, ग्यारह प्रतिमाए, दान, जल छानने की विधि, रात्रि भोजनत्याग एव रत्नत्रय के परिपालन के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। कवि ने इन सभी मे अपनी अगाध ज्ञान की छाप छोडी है। साथ मे ऐसी क्रियाओ के महत्व को पद्यो मे लिखकर इसकी जनसाधारण को विस्तृत जानकारी भी दी है।

इस प्रकार 'त्रेपनक्रियाकोश' मे यद्यपि जैनाचार का वर्णन है, लेकिन यह मानव मात्र के लिए नैतिक सहिता है। जिसने अहिंसा धर्म का परिपालन, सत्य व्यवहार को जीवन मे उतारने पर जोर, चोरी, अनैतिक जीवन एव अनावश्यक सग्रह आदि की बुराइयो की खुलकर निन्दा की गयी है। व्रतो से जीवन को अत्यधिक सयमित, नियन्त्रित एव विकसित करने की कला सिखायी गयी है। वास्तव मे ऐसी पुस्तको को धार्मिक आवरण मे न रखकर सार्वजनिक उपयोग के लिए प्रस्तुत की जानी चाहिए।

भाषा —

भाषा की दृष्टि से यह कवि की प्रथम छन्दोबद्ध रचना थी। इसलिए कवि इसमे किसी एक शैली पर स्थिर नही रह सका। कही पर यदि शुद्ध हिन्दी का प्रयोग हुआ है तो कही पर राजस्थानी का। व्रज भाषा के शब्दो के प्रयोग से कवि बच नही सका है। इसी तरह अपने मन्तव्य के लिए कही प्राकृत पद्यो का उदाहरण दिया गया है तो कही सस्कृत छन्दो को भी उद्धृत किया गया है। यही नही एक दो स्थान पर तो अपने विषय का प्रतिपादन करने के लिए उसने गद्य का भी प्रयोग किया है।

जीवंधर चरित्र

'जीवधर चरित' कवि की दूसरी काव्यात्मक कृति है। इसमे जीवधर के जीवन का चित्रण किया गया है। जीवधर का जीवन जैन समाज मे अत्यधिक प्रिय रहा है। इसीलिए सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श आदि सभी भाषाओ मे जीवधर के जीवन पर अनेक रचनाए मिलती है। हिन्दी भाषा मे इस चरित को निबद्ध करने की प्रेरणा कवि को उदयपुर मे स्वाध्याय प्रेमियो

द्वारा मिली थी। कवि ने इस कृति की प्रशस्ति मे उनका साभार उल्लेख किया है। कवि धान मढी उदयपुर मे प्रतिदिन प्रवचन किया करते थे। एक बार उन्होने महापुराण पर प्रवचन किया। इसी महापुराण मे जीवधर की भी एक सुन्दर कथा आती है। जब श्रोताओ न उस कथा को सुना तो सभी श्रोताओ ने एव विशेषत कालाडेहरा के निवासी श्री चतुरभुज अग्रवाल ने कवि से निवेदन किया कि देव भाषा अर्थात् सस्कृत तो अत्यधिक कठिन है। उसका स्वाध्याय तो पडित लोग ही कर सकते हैं, लेकिन सामान्य श्रावको के लिये शक्ति के बाहर की बात हैं। इसलिये यदि इस काव्य की हिन्दी मे रचना हो जावे तो सभी सरलता से समझ सकेंगे। इसी प्रकार कवि के प्रमुख मित्र पृथ्वीराज का भी यही आग्रह था। सागवाड निवासी हुमड जातीय श्रावक सेठ वेलजी का आग्रह भी विशेष था। इन लोगो के आग्रह को टालना स्वय कवि के लिए भी सभव नही था। अतएव कवि को अन्त मे भाषा मे जीवन्धर चरित को प्रारम्भ करना ही पडा और सवत् १८०५ की आपाढ शुक्ला द्वितीया की शुभवेला मे इस ग्रन्थ की समाप्ति कर दी गई।

'जीवधर चरित' एक प्रबन्ध काव्य है। इसमे प्रबन्ध काव्योचित सभी गुण मिलते हैं। सारा काव्य अध्यायो मे विभक्त है। जिनकी सख्या पाच है। इन अध्यायो मे जिस प्रकार का वर्णन मिलता है, उसका सक्षिप्त परिचय अध्याय की पुष्पिका मे दिया गया है जिमसे इस अध्याय का पूरा चित्र सामने आ जाता है। इन अध्यायो मे कवि ने जीवन्धर चरित को अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा सरस, सुबोध, एव सरल बनाने का प्रयास किया है। कवि ने अपने काव्य के परम्परागत कथानक मे यद्यपि कोई विशेष परिवर्तन नही किया है फिर भी कुछ नवीन उद्‌भावनाओ की सृष्टि अवश्य हुई है। समूचा काव्य एक इतिवृत्तसा लगता है। जिसमें जीवन्धर के विभिन्न पक्षो की उद्-भावना हुई है। कथावस्तु का पूर्णत निर्वाह हुआ है। वह पाठको को कभी रुलाती तो कभी हसाती हुई आगे ले चलती है। वास्तव मे जीवन्धर का चरित क्या है—मानो उस महापुरुष की कहानी है, जिसने जीवन मे कभी हार नही मानी तथा जिसने कभी अन्यायी का पक्ष नही लिया। वह ऐसे मनुष्य की कहानी है, जिसे जीवन मे कुछ कर दिखलाने की तीव्र इच्छा है। वह एक ऐसे पुण्यात्मा की कहानी है, जिसने जीवन मे सब कुछ पाकर भी उसे निस्सार जानकर छोड दिया तथा अन्त में तपस्वी जीवन को अगीकार करके निर्वाण की प्राप्ति की।

काव्य वर्णन

कवि के सभी वर्णन उच्चकोटि के है। एक बार जीवन्धर नगर के बाहर अपने साथियो के साथ गोली का खेल खेल रहे थे। इतने मे एक तपस्वी ने जीवन्धर से नगर की दूरी के बारे मे पूछ लिया—इसका जीवन्धर ने जो सुन्दर उत्तर दिया वह कितना सामयिक एवं आकर्षक है

बोले कवर सबै यह जानै, बालक चेलक पथ पिछानै।
तू अति वृद्ध ज्ञान न तोकौ, कितौ दूर पुर पूछै मोकौ ।।६१।।
तरवर सरवर बाग बिसाला, बहुरि देखिए खेलत बाला।
तहा क्यौं न लखिए पुर नीरा, ससै कहा राखिए बीरा ।।६२।।
ज्यौं लखि धूम अगनि हू जाने, त्यौं बालक लखि पुर परवानै।
जीवधर के सुनिये बैना, तापस कीये नीचे नैना ।।६३।।

एक बार जीवन्धर रोने लगे। जब तपस्वी ने जीवन्धर से नहीं रोने के लिए कहा तो जीवन्धर ने उसका जवाब कितने व्यग्य से दिया, वह पढने योग्य है—

रोवे के गुन तुम नहि जानौ, मेरी बात हियै परवानौ।
जाय सलेखम जो दुख दाई, नेत्र विमल ह्वै अति अधिकाई।१०५।
तितै अहार हु सीतल होई, यामैं तौ औगुन नहि कोई ।।

आदि काल से ही लडकी के विवाह की चिन्ता माता-पिता को रही है। पुत्री के विवाह के पश्चात् उन्हे अपूर्व प्रसन्नता होती है। इसी तरह का एक प्रसग जोवन्धर चरित मे भी आया है, जिसमें इसी तरह की बात कही गयी है—

रहै कवारी कन्यका, व्याह जोगि घर माहि।
मात तात कौ दूसरी, ता सम चिंता नाहि ।।४७।।
पुत्री परणावन समा, नहि निचितता और ।।

प्रस्तुत काव्य मे नायक का चरित्र अलौकिक कार्यों से ही नही उभारा गया है, किन्तु वीणा-वादना प्रतियोगिता मे जीवन्धर की विजय बतलाकर

नायक के ही चरित्र को समुन्नत बनाया गया है साथ ही अपने स्वय की वीणा-वादन की कला पर भी प्रकाश डाला गया है—

सुनि करि चित्रत रहे भूचरा खेचरा।
मृग मोहित व्है महाराग मैं चित धरा।
या विद्या करि हुई कवर की कीरती।
जानी सब ससार राग मैं कीमती ।।३७।।२१

जीवन्धर सुगन्ध परीक्षा मे भी प्रवीण थे, इसलिए कवि ने "गध परखवा दूजो नांहि, जीवन्धर सो धरणी मांहि"—७०/२४ के शब्दो मे अपने नायक की प्रशंसा की है। जीवन्धर अत्यधिक दयालु थे। जब एक श्वान भयभीत होकर उल्टा तालाव में पड जाता है तो उसे वे अपने प्राणो की भी परवाह न करते हुए तालाव मे कूद पडते हैं और मरते हुए कुत्ते को णमोकार मत्र सुनाते हैं, जिससे वह मरकर यक्ष योनि को प्राप्त करता है—

प्राण छोडि वे सनमुख भयो, सुनिकै कुमर कढाई हि लयो।
जान्यो इह जीवै नहिं कोइ, याकौ मरण अवारहि होय ।।७२।।२५
तब ताके काननि मै आप, दियो मत्र जो नासै पाप।
नमोकार सो मत्र न और, इहै मत्र सब श्रुत कौ मौर ।।७३।।२५

कवि ने व्यापारियो की मनोवृत्ति पर अच्छी चुटकी ली है और लिखा है—

वनियनि की इह रीति अनादि, हरडै सू ठि आवला आदि।
वेचै और मोलि ले सही, इन तौ रीति और ही गही ।।९६।।२७

जीवन्धर .

काव्य का नायक जीवन्धर हैं। उसके पिता राज नगर के राजा थे। लेकिन उसका जन्म शमशान मे हुआ। जन्म लेते ही वह पितृ विहीन हो गया और अपनी माता विजयां रानी के द्वारा पालन होने के स्थान पर गधोत्कट सेठ के घर उसका लालन पालन हुआ। लेकिन जीवन्धर पुण्यात्मा था; इसलिए जहा भी गया वही पर उसे सव प्रकार की सुख सुविधा मिलती गयी। गधोत्कट सेठ ने जीवन्धर का लालन-पालन अत्यधिक स्नेह के साथ किया। वह

प्रारम्भ से ही व्युत्पन्न मति था, साहसी था, निडर था तथा आपत्तियो से जूझने वाला था। बचपन मे जब उसकी भेंट तपस्वी से हुई तो तपस्वी और उसके मध्य होने वाला वार्तालाप उसके व्युत्पन्न मति होने का स्पष्ट प्रमाण है। तपस्वी द्वारा नगर की दूरी पूछी जाने पर, जीवन्धर द्वारा दिया गया उत्तर उसकी उत्पन्न मति का द्योतक है।

जीवन्धर ने सर्व प्रथम भीलो का उत्पात शात किया और उनसे गायो को छुडा कर काष्टागार को सौंप दी। यह जीवन्धर की प्रथम सफलता थी। काष्टागार जैसे धूर्त राजा भी उससे लडने का साहस नही कर सके। उसे जीवन्धर ने अपने भाइयो को साथ लेकर ऐसी शिकस्त दी, जिससे जीवन्धर की वीरता की चारो ओर प्रशसा होने लगी। इसके पश्चात् जीवन्धर ने सुघोषा वीन बजाकर गधर्वदत्ता के साथ विवाह किया—वह उसका सगीत प्रावीण्य था। काष्टागार के बिगडे हुए हाथी असनिवेग को सहज ही मे वश मे कर लिया जिसके उपलक्ष्य मे उसे सुरमजरी जैसी सुन्दर कन्या प्राप्त हुई। काष्टागार के षडयन्त्र को विफल किया; पद्मोत्तमा का विष दूर कर उससे विवाह किया एव आधा राज्य भी प्राप्त किया। सहस्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलकर क्षेमसुन्दरी को विवाह मे प्राप्त किया। धनुष विद्या मे प्रवीणता दिखला कर हेमाभा को परिणय सस्कार मे बाध लिया तथा अपने ही नगर राजपुर मे आकर उसने विमला एव गुणमाला जैसी कन्याओ से विवाह किया। इनसे जीवन्धर की कीर्ति चारो ओर फैल गयी। यही नही रत्नावली को स्वयवर मे प्राप्त करके अपनी निशाने बाजी की कला मे सफलता पाई और अपने पिता की जघन्य हत्या करने वाले तथा प्रबल शत्रु काष्टागार को रण भूमि मे मारकर अपना राज्य वापिस प्राप्त किया और एक लम्बे समय तक अपने कुटुम्बीजनो के साथ उसने जनता को स्वच्छ प्रशासन दिया। इस प्रकार काव्य के नायक जीवन्धर का चरित्र अन्त तक निखरता गया है।

काव्य कला

प्रस्तुत 'चरित' मे सभी काव्य गुण उपलब्ध होते हैं। पाच अध्यायो मे विभक्त यह काव्य हिन्दी भाषा का प्रमुख काव्य है जो अभी तक विद्वानो की दृष्टि से ओझल रहा। दोहा, चौपई, सोरठा, वेसरी, अरिल्ल, बडदोहा, चालि छन्द, भुजगी प्रयात, छप्पय आदि छन्दो का प्रयोग किया गया है। कवि ने बीच-बीच में दोहा चौपई के अतिरिक्त अन्य छन्दो का प्रयोग करके काव्य की उपयोगिता मे वृद्धि की हैं। इसी तरह अलकारो का प्रयोग भी

यथेष्ट हुआ है । जिनमे उत्प्रेक्षा, उदाहरण, उपमा एव अनुप्रास अलकारो के नाम उल्लेखनीय हैं ।

'जीवन्धर चरित' शान्त रस का काव्य है । इसका नायक अनेक साहस पूर्ण कार्यों को करने के पश्चात् एव दीर्घ समय तक शासन सुख भोगने के उपरात ससार से विरक्त हो जाता है और अन्त मे घोर तपस्या करके मोक्ष को पाता हैं । अपने पूर्व भव मे १६ दिन तक हस के बच्चे को उसकी मा से विलग करने का फल जीवन्धर को इस भव मे अपनी माता से १६ वर्ष तक विछोह मिलता है । क्योकि सभी जीवो की समान आत्माए होती हैं और उन्हें भी सुख-दु ख का अनुभव समान रूप से होता है । जन्म से पूर्व ही पिता की मृत्यु, श्मशान मे जन्म, सेठ का श्मशान मे मृत पुत्र को लाना और उसके स्थान पर जीवन्धर को पालना, यक्षिणी द्वारा उपकार, रक्षा करना और फिर यक्ष द्वारा विपत्तियो मे सहायता ये सब कुछ ऐसी घटनाए हैं, जो कर्म सिद्धान्त मे अटूट विश्वास उत्पन्न करने वाली है ।

भाषा

'जीवन्धर चरित' की भाषा शुद्ध हिन्दी हैं । यद्यपि कवि ने उसे उदयपुर मे रहते हुए छन्दोबद्ध किया था लेकिन मेवाती और गुजराती भाषा का इस काव्य पर प्रभाव नही है । किन्तु कवि के जयपुर निवासी होने के कारण कही-कही ढू ढारी शब्दो का प्रयोग अवश्य हो गया है ।

३ अध्यात्मबारहखड़ी :

'अध्यात्म बारहखडी' कवि की अध्यात्मक कृतियो मे सबसे बडी रचना है । इसमे स्वर एव व्यजन के माध्यम से अध्यात्म विषय का वर्णन किया गया है । स्वय कवि ने इसका अध्यात्म बारहखडी नाम देकर इसके विषय को स्पष्ट किया है । एक प्रकार से वह अध्यात्म विषय का कोश ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक वर्णन भक्ति एव अध्यात्म रस से ओत-प्रोत हैं । कवि ने इसमे अपने पूरे ज्ञान को ही जैसे उ डेल कर रख दिया है । इस ग्रन्थ मे तीर्थकरो की विविध रूप पे स्तुति मिलेगी । सहस्रनाम, शतनाम जैसी अनेक रचनाए इसमे समायी हुई हैं । इस कृति का दूसरा नाम "भक्त्यक्षरमालिका बावनी स्तवन" भी दिया हुआ है । अध्यात्म बारहखडी इसका अलग नाम है—जैसा कि कवि ने कृति की प्रत्येक पुष्पिका मे उल्लेख किया हैं ।

कवि ने अपनी इस पूरी कृति को ८ परिच्छेदो मे निम्न प्रकार विभक्त किया है—

प्रथम परिच्छेे मे श्रोकार प्रणव महिमा एवं श्रकाशक्षर से प्रारम्भ होने वाले पद्य हैं। सर्व प्रथम ५ सस्कृत पद्यो मे मंगलाचरण किया गया है। इसके पश्चात् ६६ दूहा एव नाराच छदो मे प्रणवमहिमा, २६ चौपई छन्दो मे श्रोकार महिमा एव ११२, दोहा चोपई, छद वेसरी मे श्रकार का वर्णन किया गया है। प्रथम परिच्छेद की पुष्पिका निम्नप्रकार है—

"इति श्री भक्त्यक्षरमालिका वावनी स्तवन श्रध्यात्म वारहखडी नामध्येय उपासनात्रे जिनसहस्रनाम एकाक्षरीनाममालादि श्रनेक ग्रंथानुसारेण भगवद भजनानाधिकारे श्रानदराम सुत दौलतरामेन श्रल्पवुद्धिना उपायनीकृते प्रथम स्तुति प्रारमद्वारेण प्रणव महिमापूर्वक श्रकारमिश्राक्षर प्ररूपको नाम प्रथम–परिच्छेद ॥१॥

द्वितीय परिच्छेद मे श्रकार से लेकर श्र कार के १६ स्वरान्त पद्यो में भगवद्भक्ति एवं श्रध्यात्म की गगा वहायी है। इन स्वरान्त पद्यो की सख्या निम्न प्रकार है —

श्रकारान्त पद्य	४४२
श्राकारान्त ,,	१३५
इकारान्त ,,	९६
ईकारान्त ,,	३५
उकारान्त ,,	१६०
ऊकारान्त ,,	४४
ऋकारान्त ,,	१४४
ॠकारान्त ,,	१५
लृकारान्त ,,	१६
लॄकारान्त ,,	११
एकारान्त ,,	१९०
ऐकारान्त ,,	५०
श्रोकारान्त ,,	२४
श्रौकारान्त ,,	२५
श्रंकारान्त ,,	७२
श्रः कारान्त ,,	१२
	१४७१

जिन छन्दो का इस परिच्छेद मे प्रयोग हुआ है, उनमे दोहा, चौपई, चौपया, सवैया, कवित्त, छन्द गीता, भुजगीप्रयात, त्रोटक, सवैय्या इकतीसा, छन्द मोतीराम, पद्धडी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कवि ने कथाओ के माध्यम से भी जिन महिमा का वर्णन किया है। इकारान्त पद्यो के अन्त मे कवि ने अपने पुत्रो के नाम गिनाये हैं। ऋकार से पहिले जिनवाणी का स्तवन और फिर षट्ऋतुओ का वर्णन मिलता है। सभी वर्णन विस्तृत एव स्पष्ट हैं एव कवि की विद्वत्ता के द्योतक हैं।

तृतीय परिच्छेद .

यह परिच्छेद कवर्ग का है। जिसमे ककार, खकार, गकार, घकार एव ङकारान्त पद्यो को दिया गया है। इन परिच्छेदो मे ककारान्त के २०५ पद्य हैं, खकारान्त के ८१ पद्य, गकारान्त के ११७ पद्य और घकारान्त के ५६ पद्य एव ङकारान्त के २४ पद्य हैं। प्रारम्भ मे वर्णन करने से पूर्व सस्कृत पद्य अलग से दिये गये हैं। गृद्ध के प्रसग मे सीताहरण की कथा दी हुई है।

चतुर्थ परिच्छेद

इसमे चवर्ग के सभी पचाक्षरान्त पद्य हैं इनमे चकारान्त के १६०, छकारान्त के ७४, जकारान्त के ३२, झकारान्त के ४२ एव ञकारान्त के २० पद्य हैं। इस प्रकार यह परिच्छेद ३५८ पद्यो मे पूर्ण होता है। इनमे झकारान्त मे झूंठ की बुराइयो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस परिच्छेद का प्रमुख छन्द सवैया एव सोरठा है। वर्णन कुछ क्लिष्ट हो गया है।

पचम परिच्छेद `

इसमे टवर्ग के सभी पंचाक्षरान्त पद्य हैं। इनमे टकारान्त के ३७ पद्य, ठकारान्त के ३५ पद्य, डकारान्त के ७६, ढकारान्त के २६ पद्य एव णकारान्त के ४३ पद्य हैं। इस परिच्छेद मे सब मिलाकर २१७ पद्य हैं। इस परिच्छेद का वर्णन सामान्य है।

षष्ठम परिच्छेद

उसमे तवर्ग के पद्य दिये गये हैं। जिसमे तकारान्त के १७३ पद्य, थकारान्त १३६ पद्य, दकारान्त के ३४६ पद्य, धकारान्त के ७६ एव नकारान्त के १२६ पद्य हैं। सब मिलाकर हिन्दी पद्यो की संख्या ६६६ है,

जो एक सतसई के रूप मे हैं। इस परिच्छेद मे त्रेपन क्रिया, अष्ट मूलगुण, द्वादश व्रत, निश्चय व्यवहार नय, गुणस्थान, पाच ज्ञान—आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस परिच्छेद का प्रमुख छन्द दोहा चौपई एव सोरठा है।

सप्तम परिच्छेद·

इस वर्ग मे पवर्ग पर आधारित पद्य हैं। इनमे पकारान्त के ३३८ पद्य, फकारान्त के ७० वकारान्त के २७, भकारान्त के १३७ एव मकारान्त के १८६ पद्य है तथा कुल पद्यो की सख्या ८५८ है। कुण्डलिया, छाघय, सोरठा, शार्दूल विक्रीडित जैसे छन्दो का भी प्रयोग किया गया है। सभी वर्णन सरस, सरल एवं प्रवाहमय है। अलकारिक शब्दो का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है।

अष्टम परिच्छेद.

अध्यात्म वारहखडी का यह अन्तिम परिच्छेद है। जिसमे यकारान्त पद्यो की सख्या ११८, रकान्त ६३, लकारान्त ८६, वकारान्त ११३, शकारान्त १३३, षकारान्त १२६, सकारान्त ४५२, एव हकारान्त ६३ तथा क्षकारान्त के ८१ पद्य है, इस प्रकार इस परिच्छेद की कुल सख्या १२६८ पद्य हैं जो सबसे अधिक है। इसमे आध्यात्मिक वर्णन अपेक्षाकृत अधिक है। दोहा चौपई जैसे छन्दो के अतिरिक्त उपेन्द्रवज्रा, सवैय्या, कुण्डलिया सोरठा आदि इस परिच्छेद के छन्द हैं।

अध्यात्म वारह खडी काव्यत्व की अपेक्षा से एक अच्छी कृति है। यह एक कोश ग्रन्थ है, जिसकी रचना जिनसहस्र नाम नाममाला आदि अनेक कोश ग्रन्थ एव आध्यात्मिक ग्रन्थो के आधार पर की गई है। हिन्दी भाषा मे इस प्रकार की वहुत कम कृतिया देखने मे आती हैं।

वर्णन

शारदा—जिसका अपर नाम भारती, ईश्वरी एव सरस्वती है, वह सर्वज्ञ प्रभु के मुख से निकली हुई है। कवि ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—

"सरवगि के मुखतैं भई, सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती, सुर नर मुनिजन सेव ॥२७॥

श्रकारान्त मे श्रद्धा पर प्रकाश डालते हुये कवि ने लिखा है, कि श्रद्धा से भगवान जिनेन्द्र का नाम जपना चाहिए । श्रद्धा पूर्वक ही किसी को कुछ देना चाहिये । श्रद्धा से ही व्रत एव तप की आराधना की जानी चाहिए ।

श्रद्धा करि जिन नाव जपि, श्रद्धा करि कछु देहु ।
श्रद्धा करि व्रत शील धरि, नर भव लाहौ लेहु ।।

कवि जिनेन्द्र की भक्ति मे इतने सन्नद्ध थे कि इन्हे यह आश्चर्य लगने लगा था कि लोग उन्हें छोडकर अन्य की कैसे आराधना करते हैं—

ते नर नीच शृगाल सम, जे नहि ध्यावै तोहि ।
तोहि छोडि औरहि भजे, इह अचरजि अति मोहि ।।१०५।।

एक दूसरे प्रसग मे कवि ने फिर उनका स्तवन निम्न प्रकार किया है—

तेरौ निर्माता नही, रचिता जग मैं कोय ।
अनिर्मातृ भगवान तू, अनिर्वाच्य वो होय ।।३६१।।

जिनेन्द्र का वर्णन कर सकने मे असमर्थ अपने आपको कवि निम्न प्रकार प्रस्तुत करता है—

ओजस्वी तुम वर्णना, कथि न सकै जनि कोय ।
मैं मति हीन अजान जो, किम कहि सकि हौ तोय ।।३।।

'जिनेन्द्र' के स्तवन मे कवि के कुछ अत्यधिक सुन्दर, सरल एव भावपूर्ण पद्य देखिए—

'ख' कहिए आकास को, तू आकास स्वरूप ।
सद्ध चिदातम बोधमय, परम हस जगभूप ।।२।।
ख कहिए इन्द्रीनि कौ, तुम इन्द्रीनि तै दूर ।
मन अर बुधि हू कै परै, घटि घटि अन्तर पूर ।।३।।

× × ×

घर घर की सेवा करत, उपज्यौ अति गति खेद ।
अब तू अपनी टहल दे, ले निज माहि अभेद ।।१।।
धर घरणी मै हम लगे, धन धरणी की चाहि ।
चाहि हमारी मेटि सब, वहु भरमावै काहि ।।२।।

४ विवेक विलास

'विवेक विलास' कवि की पद्यात्मक कृतियो मे से सवसे महत्वपूर्ण कृति है। पूरी कृति रूपक काव्य है, जिसमे आदि से अन्त तक रूपको की मालाए ही मालाए हैं। यह एक ऐसी कृति है, जो किसी भी कवि की काव्य प्रतिभा परखने के लिए पर्याप्त है। कवि ने कृति का नाम विवेक विलास' दिया है जो पूर्णत सत्य है। इसमे जगत के प्राणियो को विवेकमय जीवन अपनाने की प्रेरणा दी गयी है। विभिन्न रूपको से उसे सच्चरित्रता एव सद्कार्य करने को कहा गया है। पूरा विलास दोहा छन्द मे है। जो ६२४ दोहा छन्दो मे समाप्त होता है। एक ही काव्य में दोहा छन्द का इतना वडा प्रयोग भी वहुत कम देखने को मिलता है। यह एक ही छन्द-कृति है। १८वी शताब्दी मे दोहा छन्द कवियो के लिए एव जनता के लिए कितना लाडला छन्द था। इसकी इस कृति से जानकारी मिलती है।

कवि ने अपनी इस कृति का नाम 'विलास' दिया है। विलास सज्ञक रचनाए वनारसीदास से ही लोकप्रिय रही हैं इसलिए प्रत्येक कवि की एक विलास सज्ञक कृति अवश्य मिलती है। इनमे वनारसी विलास, भूधर विलास, द्यानत विलास, दौलत विलास आदि के नाम उल्लेखनीय है। लेकिन अन्य विलास, सज्ञक रचनाओ मे एव विवेक विलास मे पर्याप्त अन्तर है। वनारसी विलास मे जहा वनारसीदास की सभी लघु कृतियो का सकलन किया गया है। वहा दौलतराम ने अपने विवेक विलास मे एक ही कृति को निवद्ध किया हैं।

विवेक विलास मे निजधाम वर्णन, २ ठगग्राम वर्णन, ३ निज वन निरूपण, ४ निजभवन वर्णन, ५. भावसमुद्र वर्णन, ६ भवसमुद्र वर्णन, ७ ज्ञान निरूपण, ८ गर्वगिरि वर्णन, ९ निज गगा वर्णन, १०. आशा वैतरणी विषनदी वर्णन, ११ भावसरोवर वर्णन, १२ विभाव सर वर्णन, १३ अध्यात्म वापिका वर्णन, १४ विषय वापी वर्णन १५ रस कूप वर्णन, १६ भवकूप वर्णन, १७ अन्तरात्मा ज्ञान राज वर्णन, १८. वहिरात्मा दशा वर्णन, १९ गुरु वचन—इस प्रकार 'विलास' का विषय वर्णन विभक्त किया हुआ है। यद्यपि विवेक विलास अध्यायो अथवा सर्गो मे विभक्त नही हैं, लेकिन विभिन्न वर्णन ही इसके अध्याय हैं। ये सभी अध्याय ज्ञान रूपी महल से चढने के लिए सीढी का कार्य करते हैं। एक के पश्चात् एक वर्णन इस क्रम से हुआ है, जिससे विलास की एक भी कडी नही टूट सकी है। और विषय सहज ही खुलता चला गया है। समूचा

विलास रूपको से ओत-प्रोत है तथा प्रत्येक दोहे मे किसी न किसी रूपक का प्रयोग हुआ है। इनसे कवि के अगाध ज्ञान एव विशाल काव्य-शक्ति का सहज ही पता लगाया जा सकता है।

रचना काल

कवि ने अपनी इस कृति को किस शुभवेला मे प्रारम्भ किया था, और किस शुभवेला मे समाप्त करके साहित्यिक जगत का महान् उपकार किया, इसके बारे मे अपनी अन्य कृतियो के समान समय देना उचित नही समझा। यही नही इस महत्वपूरण कृति की पूरे राजस्थान के जैन ग्रन्थगारो मे अभी तक एक ही पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है जो जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। यह पाण्डुलिपि स० १८२७ पौष सुदी ३ वृहस्पतिवार की लिखी हुई है। जयपुर मे आने के पश्चात् कवि ने एक ही पद्यात्मक रचना 'श्रीपाल चरित' को छन्दोबद्ध किया था, जिसमे भी स्पष्ट रूप से रचना काल दिया हुआ है। यह कृति सभवतः 'अध्यात्मबारहखडी' के पश्चात् लिखी गयी थी। वह कवि की काव्यशक्ति का सर्वोच्च समय था। और इसीलिए कवि की लेखनी से ऐसी उत्कृष्ट कृति का सर्जन हो सका। इसलिए इसका रचना काल स० १७९८ से १८०० तक का माना जा सकता है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से विवेक-विलास एक परिमार्जित हिन्दी कृति है। कवि ने शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करके तत्कालीन समय मे प्रचलित हिन्दी शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि कवि राजस्थानी थे। उदयपुर मे उस समय रहते थे, लेकिन विवेक-विलास की भाषा पर ढूढारी एव मेवाडी भाषा का सबसे कम प्रभाव पडा है। कवि ने शुद्ध हिन्दी मे अपनी इस कृति को प्रस्तुत किया है।

विषय वर्णन

विवेक-विलास 'निजधाम वर्णन' से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की महिमा एव उससे ब्रह्म पद प्राप्ति का कथन मिलता है। इसके पश्चात् कवि ने जगत मे अध्यात्म चर्चा एव भगवद्भक्ति को ही आत्म-साधना के प्रमुख उपाय बताये हैं। यह आत्मा अपने आत्म प्रदेश मे निवास करता है, वही उसका अभैपुर है। जहा उसे जरा भी काल का भय नही है।

धर्मपुर नगर का राजा आत्मा ही है। समरस भाव उसके मित्र हैं। सम्यक् ज्ञान ही उसका प्रधान अमात्य है। अनन्तवीर्य आत्मा का सेनापति है। भाव उसका दुर्ग है। उसका गम्भीर स्वभाव ही उसके यहा खाई है। आत्म ध्यान ही द्वार हैं और यही अध्यात्म का सार है। अनन्त चतुष्टय भाव ही चार सुभट है। इस प्रकार रूपको की प्रत्येक पद्य मे छटा दिखलायी देती है।

प्रथम अध्याय मे इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि आत्मा राजा है तथा गुण इसकी प्रजा है। शुद्ध भाव ही उसके शस्त्र हैं जिनसे उसकी जीत होती है। उस पुर मे कोई चोर नही है। वह आत्मा स्वय मालिक है। उसके पास महासुखो की सभी सामग्री उपस्थित रहती है। शुद्ध पारिणामिक भाव ही राजसभा के पार्षद हैं। जो सदैव आत्मा की सेवा मे उपस्थित रहते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व उसके महा-भट हैं जिसके बल पर यह आत्मा निष्कलक राज्य करता है। निज स्वभाव ही उसका सिंहासन है। उस पर वह बैठकर सब पर शासन करता है। दुःखो को हरण करने वाला स्वभाव ही उसका छत्र हैं तथा निर्भय भावो की तरग चमर है। इसके आगे कवि ने आत्मा के विभिन्न गुणो को रूपको द्वारा समझाया है।

ऐसी आत्मा परमानन्द दशा मे विराजती हैं, वहा उसे इन्द्रिय-भोगो की जरा भी चिन्ता नही हैं। आत्मानुभव ही अमृत है जिसका वह सदा पान किया करता है। उसे भूख एव प्यास की बाधा नही होती। जन्म, जरा एव मृत्यु का भय नही तथा रात्रि एव प्रात उसके लिए समान हैं। रात्रि मे विचरण करने वाले चोरो के समान रागादि भावो का वहा संचार नही और उसके आत्मपुर मे रोग-शोक आदि पिशाच नही है। ठग के रूप मे काम करने वाले काम एव लोभ का वहा नाम भी नही है। ऐसे प्रदेश मे वस्तु स्वभाव ही पुर है और वह धर्ममय है। जहा राजा और प्रजा दोनो धर्ममय है। वहा धर्म रहित होकर कोई नही रहता। ऐसे यह आत्मा जब अपने नगर मे रहता है, तब चारो ओर महान् सुख बरसता है। वह उसका नन्दन वन है, लेकिन इस उपवन मे न तो मायारूपी बेलि है और न विकल्पो का जाल है। क्रोधादि पखो का यहा पूर्णत अभाव है। उस वन मे शुभाशुभ कर्म वृक्ष नही है। वहा सुख रूपी सरोवर है। जिसमे सहज नीर भरा हुआ है। वहा अपने भाव वाले तरुवर हैं। इस प्रकार यह पूर्ण वर्णन रूपको से भरा हुआ है।

"विवेक-विलास" का दूसरा अध्याय 'ठग ग्राम वर्णन' है। इसमे कवि की भावाभिव्यक्ति है कि हे मनुष्य ! यह जगत ठगो का निवास-स्थान है। मोहादि वहा के अनन्त ठग हैं, जिनके नाम कहा तक लिए जावें। मोह इन सब ठगो का राजा है, क्योकि मोह की फासी के समान जगत मे दूसरी फासी नही है। जीवो को यह फासी देकर मान गुणो को हर लेता है। मोह निद्रा के समान दूसरी दीर्घ निद्रा नही है। यह जगत मोहवश ज्ञान चेतना खोकर सोता रहता है। ममता मोह की प्रिया है। जिसके समान अन्य कोई ठगिनी नही है। यह ममता सुरेन्द्र नरेन्द्र आदि सभी को ठग लेती हैं। सबसे बडे ठग राग एव द्वेष हैं, जिनकी भुजाओ के प्रताप से मोह जगत पर शासन करता है। राग की प्रिया सरागता है। विषयो मे अनुरागता ही यहा अद्भुत ठगिनी हैं। द्वेष के समान कोई दुर्बुद्धि नही है। द्वेष की प्रिया दुर्जनता है, जिसने अभी सभी को ठगा है। इसी तरह इस नगर मे काम के समान दूसरा कोई प्रबल ठग नही है, जो जगत का शील हरण करके बदफैल करता रहता है। काम की प्रिया रति है, जो जगत को भरमाती रहती है। इसी प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ रोग, शोक असयम आदि और भी ठगो के नाम गिनायें हैं।

'विलास' का तीसरा वर्णन 'निज वन निरूपण' के नाम से है। यह २५ दोहा छन्दो मे पूर्ण होता है। इसमे कवि ने बतलाया है कि जब यह आत्मा अपने वन मे क्रीडा करती है तो उसे मृत्यु का भी डर नही रहता। आत्म-वन अमर उद्यान है जिसमे परमानन्द प्राप्त होता है। यह वन आत्महस के लिए केलि करने का स्थान है लेकिन यह हस हिंसा से रहित है। तथा शान्त रस का धारण करने वाला है। इस वन मे आत्मकला के समान कोई कोयल नही है। वह आत्म-वेलि ही रसिया है। यहा सरवर सम भाव के रूप मे है। चपल स्वभाव वाले मृग नही है तथा दुष्ट भाव वाले दुष्ट पशु भी नही है। इस आत्मवन मे न तो मोह रूपी दैत्य का निवास है और न कषाय रूपी किरात ही निवास करता है। इसी तरह से वन मे मिलने वाली सामग्री को आत्मवन के रूप मे चित्रित किया है। वहा न तो काटे हैं और न विकल्पो का जाल है और न माया रूपी विष वेलि ही है। इस वन में रागादिक के रूप मे रजनीचर नही विचरते हैं। आत्म ज्ञान के रूप मे घने वृक्ष हैं। वहा तो स्वभावरूपी अमृत वृक्ष है जो सदा अमर फल देते है। यह एक ऐसा रमणीक वन है, जहा आत्म राजा विचरण करता हैं।

चतुर्थ अध्याय 'निज भवन वर्णन' के रूप मे है। यह विस्तृत वर्णन है, जो ७७ दोहा छन्दो मे पूर्ण होता है। 'भव वन' अत्यधिक विरूप है। इसलिए

यह आत्मा उसमे जरा भी विचरण नही करती। इस भव वन मे दुष्ट स्वभाव के रूप मे दैत्य विचरते है। मोह दैत्य शिरोमणि है। राग एव द्वेप रजनी चर हैं, पाप के रूप मे पिशाच हैं। सात व्यसनो की सेना मे महाहिंसक पुरोहित है, जिसमे दया का कण भी नही है। ऐसे भव वन मे मोह राजा है। ममता उसकी पटरानी है। आठ कर्मों के रूप मे विप वृक्ष हैं, जो काटो से युक्त है तथा छाया रहित है। वह मृत्यु के रूप मे उपहार देता रहता है। शुद्धात्म अनुभूति के समान अमृत लता नही है। शुद्ध भावो के रूप मे अमृत वृक्ष नही है। इसके आगे कवि ने और भी भय वन के डरावने रूप का विस्तार से वर्णन किया है।

भव वन के समान ही भाव समुद्र का रूपात्मक वर्णन किया गया है। इसमे सागर मे मिलने वाले जड स्वभाव के रूप मे जलचर, मोह भाव, माया एवं लोभ के रूप मे मगर, लोलपी जिह्वा के रूप मे मछलिया, निष्ठुर कछुवा, वृथा विवाद करने वालो के रूप मे मीडके, तुच्छ स्वभाव के रूप मे झीगर आदि का वर्णन किया गया है।

आगे भव समुद्र वर्णन, गर्व गिरि वर्णन, निज गंगा वर्णन, आशा-वैतरणी विप नदी वर्णन, भाव सरोवर वर्णन, विभाव सर वर्णन, अध्यात्म वापिका वर्णन, विपय वापी वर्णन, आदि वर्णनो के रूपको मे काफी साम्यता है। समुद्र मे पाने वाले मगर, मछली, जलचर, मच्छर, कछुवा आदि के रूपको का समावेश किया गया है। सभी वर्णन भावमय है। इसी तरह विलास के सभी वर्णनो मे रूपको के अम्बार लगे हुए है।

'विवेक विलास' की भापा प्रौढ है तथा वर्णन रुचिकर है। वडी ही प्रभावक रीति से कवि ने अध्यात्म की गगा वहायी है, जिसमे आत्मतत्व की प्रधानता है। कवि ने आत्मा के विविध गुणो का विभिन्न रूपको के माध्यम से सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। यह आत्मा स्वभावत शुद्ध है। निजानन्द रसलीन है। आत्मा ही नगर है और आत्म भाव ही सागर है तथा आत्मा ही स्वय का राजा है जो स्वय के पास है।

आतम भावहि नगर है, आतम भाव पयोधि।
आतम राम ही एक है, यह निज घर मे सोधि ॥३०८॥

'आतम तत्व' की पहिचान जिसे भी हो गई, वही भवसागर से तिर गया तथा जिसने इसकी सिद्धि करली, उसे जन्म मृत्यु के जाल से छुटकारा मिल गया। कवि ने अपनी इस कृति मे आत्मा को कलुषित करने वाले, शुद्ध

चैतन्य दशा से दूर रखने वाले, ससार मे रुलाने वाले अवगुणो का, बुराइयो का एव दुस्साधनो का जिस स्पष्टता से उल्लेख किया है, वे कवि के गम्भीर चिन्तन की ओर सकेत करते हैं। वास्तव मे यह विलास एक ऐसी कृति है। जिसका धर्म एव सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नही। वह केवल अपने ही मे निवास करने वाले आत्म तत्व तथा उसमे निहित परम शक्तियो का दर्शन कराना चाहता है। वह मनुष्य मात्र को बार-बार चेतावनी देता है कि—

निज गुर अबुधि मैं बसै, ताहि न पावो ताप।
तातै सकल विलास तजि, सेवो आपनि आप॥
विषै पच इन्द्रीनि के, कालकूट विष तेहि।
विष की मूल भयकरा, भव कानन है एहि॥

५ श्रेणिक चरित

यह कवि की प्राथमिक रचनाओ मे से हैं। 'पुण्यास्रवकथाकोश' की भाषा —टीका के पश्चात् उन्होने इस काव्य की रचना की थी। यह एक प्रबन्ध काव्य हैं जिसमे महाराजा श्रेणिक का जीवन चरित निबद्ध है इसमे ५०१ छन्द हैं तथा विना किसी सर्ग अथवा अध्याय-भेद के कवि ने एक ही प्रवाह मे श्रेणिक की जीवन-कथा को छन्दोबद्ध किया है। कवि की यह रचना अधिक लोकप्रिय नही हो सकी, क्योकि अभी तक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे इसकी केवल दो ही पाण्डुलिपिया मिली हैं—

१ एक पाण्डुलिपि भरतपुर के पचायती मन्दिर मे हैं, जिसकी पत्र स० २५६, तथा लेखनकाल सवत् १८८८ है।

२ दूसरी पाण्डुलिपि 'यश कीर्ति सरस्वती भवन, ऋषभ देव' में सग्रहीत है। इसमें ४६ पत्र हैं तथा लेखनकाल संवत् १८०७ कार्तिक सुदी ८ है।

प्रस्तुत परिचय दूसरी पाण्डुलिपि के आधार पर है। पर यह पाण्डुलिपि भी अशुद्ध लिखी हुई है तथा उसकी लिपि भी अच्छी नही हैं।

कवि ने श्रेणिक चरित' की रचना सवत् १७८२ चैत्र शुक्ला ५ के दिन पूर्ण की थी। इस दिन चन्द्रवार था।

समत सतरेसै बीआसी औ चैत्र सुकल तिथि जान।
पचमी दिने पूरण करी, बार चन्द्र पहचान॥५०१॥

चरित की भाषा हिन्दी है। इसमे कवि का काव्य कला की ओर अधिक ध्यान न होकर काव्य के नायक की कथा का वर्णन करने का रहा हैं।

इक दिन भूप गयो वन माही, मारग जती जसोधर पाही।
आतापन तप तपीये कोही, देखी श्रेणिक इम कही ।।६२।।

मुनि पे कुक्कर दीये, छुडाय, तब उन दीन दक्षरणा जाय ।।६३।।
नमस्कार करी बैठे स्नान, भूपती लखी राणी गुर जान ।।६४।।
मरत साप मुनि गल घरो, नरक सातमी को बध पडो।
चौथे दिरा रेनकी वार, कही भूप राणी सब छार ।।६५।।

कवि यह काव्य रावचन्द्र के काव्यानुसार लिखा है, ऐसा उन्होने ग्रन्थ की प्रसारित में उल्लेख किया हैं।

सिवानन्द सुनि राम सीष्यो, रामचन्द्र रिषी नाम।
तिन अनुसार बनाय के, रची सो दौलतराम ।।५००।।

६ श्रीपाल चरित

'श्रीपालचरित' कवि का प्रवन्धकाव्य है जिसमें कोटिभट श्रीपाल का जीवन चरित निबद्ध है। श्रीपाल के जीवन पर जैनाचार्यों ने सभी भाषाओ मे काव्य लिखे हैं। हिन्दी मे कवि के पूर्व ब्रह्म रायमल ने 'श्रीपाल रास' (स० १६३०) तथा परिमल कवि ने श्रीपाल चरित (स० १६५१) की रचनाएं लिखकर काव्य रचना के मार्ग को प्रशस्त कर दिया था। श्रीपाल एवं मैना सुन्दरी का जीवन अत्यधिक लोकप्रिय रहा है और इसी कारण इनके जीवन पर विविध रचनाए उपलब्ध होती हैं।

महाकवि दौलतराम ने श्रीपाल के जीवन की कथा की लोकप्रियता को देखकर ही सवत् १८२२ फागुण सुदी ११ को चरित काव्य के रूप मे उसे छन्दोबद्ध किया। कवि ने इस काव्य को सोमसेन भट्टारक के श्रीपाल चरित के आधार पर बनाया है, जिसका उल्लेख स्वय कवि ने इस प्रकार किया है—

सवत् अष्टादस तसु जान, ऊपर बीस दोय फिर आन।
फागुण सुद इग्यार निस माहि, कियो समापत उर हुलसाय ।।७५४।।

सोमसेन अनुसार ले, दौलतराम सुखदाय।
एह भाषा पूरन करी, सकल सघ सुखदाय ।।७५५।।

श्रीपाल चरित सतसई के रूप मे है, जिसमे ७५५ दोहा चौपई हैं। कवि ने इस काव्य मे भी कथा का धारावाहिक ही वर्णन किया है। बीच २ मे सर्ग एव अध्यायो में उसे विभक्त नही किया। काव्य की भाषा सीधी एव सरल है। कवि ने उसमे काव्यत्व लाने का सभवत कोई प्रयास नही किया फिर भी रचना में काव्यत्व स्थान २ पर उपलब्ध होता है।

सुनि श्रीपाल निसकित होय, मन माही इम चिंतित सोय।
देखे कहा कर्म करेय, मोनधारी तिनमे सचरेय ॥१८४॥
इनकू पट भूषण पहराय, कियो तिलक पूजे इन पाय।
फेरि चले मारन के काज, ल्याए जिहाज पासी सेठराज ॥१८५॥
कोटी भट अर रूप अपार, फिरि फहरे पट भूषण सार।
सीस तिलक सोभे इमराय, मानू जस लछमी वर आय ॥१८६॥

इस प्रकार समूचा ही काव्य सरल भाषा में निबद्ध है। काव्य की वर्णन शैली एव भाषा दोनो ही उत्तम हैं।

'श्रीपाल चरित' में भाग्य एव पुरुषार्थ की लडाई मे भाग्य की विजय हुई है। श्रीपाल की रानी मैना सुन्दरी भाग्य पर प्रबल विश्वास रखती थी, जबकि उसका पिता पुरुषार्थ का समर्थक था। भाग्य को नीचा दिखाने के लिए उसने अपनी सुन्दर एव यौवनपूर्ण पुत्री मैना' का विवाह एक कोढी राजा के साथ कर दिया। पर भाग्य से उसका कुष्ठ रोग दूर होगया और उसे पति के रूप मे कोटिभट राजा प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् भी श्रीपाल के जीवन मे कितनी ही विपत्तिया आयी, लेकिन उन सभी विपत्तियों मे वह स्वर्ण के समान तप करके निकला। उसे अपना राज्य एव अन्य सभी सम्पदाए यथावत् मिल गयी। लेकिन कुछ समय बाद श्रीपाल को ससार से उदासीनता हो गई और उसने सपरिवार वैराग्यमय तप साधना करके निर्वाण को प्राप्त किया।

७ चौवीस दण्डक भाषा :

यह महाकवि की लघु कृति[1] है। इसमे ५७ दोहा एव चौपई छन्द हैं। प्रस्तुत कृति में एक गति वाला जीव अन्य किस किस गति में जा सकता है—

---

१ महावीर भवन, जयपुर के सग्रह में वेष्टन सं० १६६६ के गुटके में सग्रहीत है।

इसका वर्णन किया गया है। कवि ने अपने वर्ण्य-विषय को निम्नप्रकार प्रस्तुत किया है—

पहलौ दडक नारक तनौ, भवनपति दस दडक भनौ।
जौतिग बिंतर सुरग निवास, थावर पच महादुखरास ॥७॥
विकलत्रय अरु नर तिरजच, पचेद्री धारक परपच।
एहे चौवीसौ दडक कहे, अब सुनि इनमैं भेद जु लहै॥

'तीर्थंकर' के माता-पिता मर कर किस गति में जाते हैं इसका कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

तीर्थकर के पिता प्रसिद्ध, सुरग जाय कै होहै सिद्ध।
माता सुरग लोक ही जाइ, आखरि सिवपुर वेग लहाय॥

कवि ने पहिले सात नरको में पैदा होने वाले जीवो का, फिर स्वर्गगति में जाने वाले देवो का, इसके पश्चात् पशु गति और फिर मनुष्य गति में उत्पन्न होने वाला जीव कम से कम किस गति में एव अधिक से अधिक किस गति में (नरक, स्वर्ग एव मोक्ष) जा सकता है—इसका वर्णन किया गया है—

ए चौबीसौं दडक कहै, इन्कु त्यागि परम पद लहे।
इनमैं रुलै सजग कौ जीव, इनतैं रहै तसु त्रिभुवन पीव ॥५२॥

कवि ने इस कृति के रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल अन्त में अपना नामोल्लेख करके ही कृति को समाप्त कर दिया है—

अतैकरन जो सुधि होय, जिन धरमो अभिराम।
थोरी बुद्धिप्रकास तै, भाषी दौलतराम॥

८ सिद्ध पूजाष्टक

यह कवि की पूजा विषयक कृति है, जिसमे सिद्ध परमेष्ठियो की पूजा लिखी गयी है। इसमे १२ पद्य है। यह पूजाष्टक विना आह्वानन के है तथा प्रारम्भ मे मगलाचरण के पश्चात् जल चढाने का पद्य है, इसी तरह अन्त में अर्घ के पश्चात् जयमाला नही दी गयी है। अन्तिम दो पद्य

१ महावीर भवन, जयपुर के सग्रह मे गुटका स० १०८१ वे. स १५५० में सग्रहीत।

निम्न प्रकार है—

अरघ करी उछाह सो, नमो आठों अ ग निवाय ।
आनन्द दौलतराम को, प्रभु भौ भौ होइ सहाय ।।११।।

च्यार ग्यान धर नहि देखैं, हम देखै सरधावंत ।
जानैं मानैं अनुभवैं, तुम राशी पास महत ।। अर्घम् ।।

६ पुण्यास्रव कथाकोश :

कथाओ के माध्यम से जन सामान्य मे नैतिकता एव सदाचार को प्रोत्साहन देना देश की प्राचीन परम्परा रही है। इस दृष्टि से लिखा हुआ कथा–सहित्य सस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश एव हिन्दी आदि सभी भाषाओं मे मिलता है। जैनाचार्यों ने अपने कथा साहित्य मे नैतिकता एव सदाचार के प्रयास को सर्वाधिक प्रमुखता दी और देश की प्राय सभी भाषाओं में विशाल कथा साहित्य का निर्माण किया। पुण्यास्रव कथाकोश, व्रतकथाकोश, आराधना कथाकोश, कथाकोश आदि नामो से उन्होंने सैकड़ो कथाए लिखी और बालको, युवको एव पाठको में स्वाध्याय के प्रति गहरी रूचि पैदा की तथा बुराइयो से बचते हुये शिष्ट जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी।

'पुण्यास्रव कथाकोश' को सर्व प्रथम मुमुक्षु रामचन्द्र ने सस्कृत भाषा मे लिखा था। इसकी कथाए जैन समाज मे काफी लोकप्रिय है। कविवर दौलतराम ने इन्ही कथाओ को हिन्दी भाषा मे निबद्ध करके हिन्दी भाषा भाषी पाठको के लिए एक महान् अवसर उपस्थित किया। कथाकोश में ५६ कथाएं हैं। मुमुक्षु रामचन्द्र के कथाकोश की प्रशसा कवि ने निम्न प्रकार है—

पुण्यास्रव की कथा रसाल, पूजादिक अधिकार विसाल ।
षट् अधिकार परम उतकिष्ट, छप्पन कथा मध्य है मिष्ट ।।१।।

आदिपुराणादिक जे कह्या, अभिप्राय तसु यामैं लह्या ।
आचारिज जिम करि अभिलाष, लिखी कथा सस्कृत भाष ।।२।।

× × ×

रामचन्द्र मुनि अति परवीन, कथा कोश पुण्यास्रव कीन ।
तिनकी कहा वडाई करो, वदन करि निज उर मे धरो ।।१०।।

दौलतराम युवावस्था मे पदार्पण करते ही किसी कार्य वश जब आगरा गये, तब उन्होने वहा पुण्यास्रव कथाकोश सुना। सुनकर उन्हे अत्यधिक आनन्द आया और अत्यधिक रुचि के साथ उन्होने इसकी भाषा टीका लिखी। काव्य-रचना मे पाव रखने का उनका यह प्रथम अवसर था। इसलिए उन्होने अत्यधिक ध्यान पूर्वक इसकी भाषा टीका लिखी और सवत् १७७७ भादवा सुदी पचमी शुक्रवार के शुभ मुहूर्त मे उन्होने इसे पूर्ण करके हिन्दी भाषा भाषी पाठको को भेंट किया।

सवत् सत्रहसै विख्यात, ता परि धरि सत्तरि अरु सात।
भादव मास कृष्ण पक्ष जानि, तिथि पाचै परवो परवानि ॥२८॥

रवि सुत को पहिलो दिन जोय, अर सुर गुरु के पीछे होय।
वारैह गनि लीज्यो सही, ता दिन समापत लही ॥२९॥

रचना का प्रमुख कारण ·

कवि के आगरा जाने पर उन्हे वहा सचालित अध्यात्म शैली मे जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस शैली के जिन प्रमुख सदस्यो के नाम दौलतराम ने गिनाये है, उसमे सर्व प्रथम कविवर भूधरदास का उल्लेख आता है, जिनके लिए लिखा गया है कि वे स्याहगज मे रहते थे तथा जो जिन स्मरण एव पूजन मे लगे रहते थे और अपने अशुभ कर्मो को नष्ट किया करते थे। ये कवि भूधरदास वे ही है जिन्होने सवत् १७८९ मे आगरा में 'पार्श्वपुराण' की रचना की थी और जिन्होंने अपने आपका "आगरे में बाल बुद्धि भूधर खण्डेलवाल" पक्तियो से परिचय दिया था। इनके अतिरिक्त सदानन्द, अमरपाल, बिहारीलाल, फतेचन्द, चतुर्भुज आदि उस शैली के प्रमुख सदस्य थे, जो वहा आकर परस्पर चरचा किया करते थे।

भूधरदास जिनधर्मी ठीक, रहै स्याहगज मैं तहकीक।
जिन सुमरिन पूजा परवीन, दिन प्रति करै असुभ कौ छीन ॥१५॥

हेमराज साधर्मी भलै, जिन वच मानि असुभ दल मलै।
अध्यातम चर्चा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै ॥१६॥

सदानन्द है आनन्द मई, जिन मत की आज्ञा तिह लही।
अमरपाल भी यामै लिख्यो, परमागम को रस तिन चख्यो ॥१७॥

लाल बिहारी हूँ नित सुनै, जिन आगम कौ नीकै मुनै ।
फतेचद है रोचक जीके, चरचा करै हरष धरि जीकै ।।१८।।

चत्रभुज साधरमी जोर, धुकी भकति जसु प्रभु की वोर ।
मिलै आगरै कारन पाय, चरचा करै परस्पर आय ।।१६।।

दौलतराम को मुख्य प्रेरणा ऋषभदास से प्राप्त हुई थी और उनके उपदेशो से धर्म के प्रति श्रद्धा एव साहित्य निर्माण के प्रति रूचि पैदा हुई थी ।

रिषभदास उपदेस सौ, हमैं भई परतीति ।
मिथ्यातम को त्यागि कै, लगी धर्म सौ प्रीति ।।२१।।

पुण्यास्रव कथाकोश मे जिन कथाओ का वर्णन है, जो सभी मुमुक्षु रामचन्द्र के पुण्यास्रव, कथाकोश के आधार पर है । सभी कथाओ को सरस एव रोचक शैली मे लिखा गया है । कथाओ की तालिका निम्न प्रकार है —

१ जिनपूजाव्रतकथा, २ महाराक्षस विद्याधर कथा, ३ मेंढक की कथा, ४ भरत कथा, ५ रत्नशेखर चक्रवर्ती कथा, ६. करकण्डु कथा, ७ वज्रदन्त चक्रवर्ती कथा, ८ श्रेणिक कथा, ९ पच नमस्कार मत्र कथा, १० महाबली कथा, ११ भामण्डल कथा, १२ यजराजा की कथा, १३ सुकुमाल मुनि कथा, १४ भीम केवली कथा, १५ चाण्डाल कूकरी कथा, १६ सुकौशल मुनि कथा, १७ कुवेरू प्रियाश्रेष्ठी कथा, १८ मेघकुमार कथा, १९ सीता जी की कथा, २० रानी प्रभावती कथा २१ राजा वज्रकरण कथा, २२ बाई नीली कथा, २३ चाण्डाल कथा, २४ नागकुमार कथा, २५ भविष्यदत्त कथा, २६ अशोक रोहिणी कथा, २७ नन्दिमित्र कथा, २८ जामवन्ती कथा, २९ ललितघण्टा कथा, ३० अर्जुन चाण्डाल कथा, ३१ दान कथा (महाराज श्रेणिक सम्बन्धी), ३२ जयकुमार सुलोचना कथा, ३३ वज्रजघ कथा, ३४ सुकेत श्रेष्ठी कथा, ३५ सागर चक्रवर्ती कथा, ३६ नलनील कथा ३७ लवकुश कथा, ३८ दशरथ कथा, ३९ भामण्डल कथा, ४० सुषीमा कथा, ४१ गधारी कथा, ४२ गौरी कथा, ४३ पद्मावती कथा, ४४ धन्यकुमार कथा, ४५ अग नीला ब्राह्मण कथा, ४६ पात्र केसरी कथा, ४७ अकलक देव कथा, ४८ समन्तभद्र कथा, ४९ सतकुमार चक्रवर्ती कथा, ५० सजय

मुनि कथा, ५१ मधुपिंगल कथा, ५२. नागव्रत कथा, ५३ ब्राह्मण चक्रवर्ती कथा, ५४. अजन चोर कथा, ५५ अनन्तमती कथा, ५६ उदयन कथा, ५७ रेवती रानी कथा, ५८ सेठ सुदर्शन कथा, ५९ वारिषेण मुनि कथा, ६० विष्णुकुमार मुनि कथा, ६१ वज्रकुमार कथा, ६२ प्रीतिकर कथा, ६३ सत्यभामा पूर्वभव कथा, ६४ श्रीपाल चरित्र कथा, ६५ जम्बू स्वामी कथा।

उक्त ५६ कथाओ के अतिरिक्त ९ लघु कथाएं प्रमुख कथाओ मे आ गयी हैं जिससे उनकी संख्या ६५ हो गयी हैं। इस प्रकार पुण्यास्रव कथाकोश—कथाओ का वास्तव मे कोश ग्रन्थ है। जिनसे जीवन निर्माण की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक कथा कहने का मुख्य उद्देश्य कथा नायक के जीवन का वर्णन करने के अतिरिक्त नैतिकता, सदाचार और अच्छे कार्यों को करने की परम्परा को जन्म देना है। साथ ही ये कथाए कर्म सिद्धान्त का भी मुख्य रूप से प्रतिपादन करती हैं। जैसा हम करेंगे—उसी के अनुसार हमे परिणाम भुगतना पडेगा। इन सभी कथाओ के नायक भारतीय संस्कृति के महापुरुष हैं और इन्ही महापुरुषो की जीवन गाथा से ये कथाएं अधिक निखर पडी हैं। कुछ कथाए ऐसी भी हैं, जिन पर कितने ही काव्य, चरित एव रास लिखे गये हैं और उन्ही को कवि ने सक्षिप्त रूप मे इस कृति मे प्रस्तुत किया है। ऐसी कथाओ मे—नागकुमार, भविष्यदत्त, श्रेणिक, जयकुमार सुलोचना, धन्यकुमार, प्रीतिकर, श्रीपाल एव जम्बूस्वामी की कथाओ के नाम लिये जा सकते हैं।

लोकप्रियता

पुण्यास्रव कथाकोश समस्त जैन समाज मे अत्यधिक प्रिय कृति के रूप मे समादृत है। ऐसा कोई शास्त्र भण्डार नही जिसमे इस कथाकोश की दो चार प्रतिया नही मिलती हो। स्वाध्याय प्रेमियो के लिए इस कथाकोश का स्वाध्याय आवश्यक माना जाता है। हिन्दी मे इससे पूर्व इतकी बडी कृति किसी भी विद्वान् के द्वारा नही लिखी गयी थी। इसलिए देश के अहिन्दी भाषा भाषी प्रदेशो मे भी इस कथाकोश का स्वाध्याय करने के लिए सैकडो हजारो व्यक्तियो ने हिन्दी सीखी। कवि की इस कृति का चारो ओर जोरदार स्वागत हुआ और देश के कोने-कोने मे इसका स्वाध्याय होने लगा। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे इसकी एक प्रति सवत् १७८८ मगसिर बुदी १३ रविवार के दिन की लिखी हुई है। जिसकी प्रतिलिपि अहमदाबाद मे हुई थी। इस पाण्डुलिपि से स्पष्ट है कि गुजरात मे भी इसकी प्रतिया लिखी जाती थी और उनको अन्यत्र भेजा जाता था।

भाषा

कवि द्वारा पुण्यास्रव कथाकोश की रचना करीव २५० वर्ष पूर्व आगरा मे की गयी थी। उस समय आगरा जिला ब्रज भाषा का केन्द्र था लेकिन वहा खडी बोली का प्रचलन एव लेखन भी प्रारम्भ हो गया था। इस कथा कोश की भाषा खडी बोली के अधिक निकट है। यहा इस कथाकोश में से चार उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे पाठकगण इस कृति की भाषा का अच्छी तरह पता लगा सकेंगे।

एक दिन राजा सिकार जाय छो। राह मे आताप नाम जोग धरया जिसोधर मुनिराज देख्या। कोप करि राणी का गुर जाणि कुकरा छोड्या। वै स्थान नमस्कार करि जाय वैठ्या। जब देखि मुनि का गला मै मुवो साप नाख्यो तीही विरिया सातवा नरक की आय वाधी। चौथे दिन राति नै राणी नै कही। तब चेलना कही महा पाप कीयौ। आतमा नै नरक मे वोयौ। या कहि महा दुख कीयौ। राजा कही राणी वै काई दूरि करिवा सकै न छै चेलणा कही महामुनि वौन करै। अर यौ वे करै तौ ये मुनि नही। पत्र स० २१

× × ×

नागकुमार जी पचमी को उपवास लीयौ। अर विधि पूछी सो साधक कहे छै। फागुण कै महीनै तथा आषाढ काती कै महीनै सुदी ४ नै पवित्र होय पूजाकरि शास्त्र सुणि। साधु नै विधिपूर्वक आहार के पाछै आप एकाभुक्त कीजै। ठामि भात पाणि ले सकल ससारी धन्धो छोडि धरम कथा करि दिन पूरो कीजै। रात्रि जागरण कीज्ये। प्रभु का चरणा चित लगाजै। पाछै उपवास कै दिन च्यार प्रकार आहार कषाय कौ त्याग करि विषय स्यौं पाइ सुख होय। पत्र स० ६५

× × ×

जवूद्वीप पूर्व विदेह पुष्कालवती देस। पुडरीकणी नगरी विषै राजा वसुपाल श्रीपाल। तिह नगरी वाहरी सिवकर उद्यान विषै भीम केवली कौ समोसरण आयो। तंठै खचरवती सुभगा रतिसेना सुसोमा ए चारि वितरी आप केवली नै पूछती हुई। हे प्रभु म्हा कौ पति कोण हवेसी।

पत्र स० ११८

× × ×

"मालव देस उजेणी नगरी विषै राजा अपराजित राणी विजया त्याकै विनयश्री नाम पुत्री हुई। हस्तिशीर्षपुर कै राजा हरिषेण परणी। एक दिन दपति वरदत्त मुनि नै आहारदान देता हूवा। पाछै वहुत कालताइ राज्य कीयौ। एक रात सज्याग्रह विषै विनयश्री पति सहित सूती थी। अगर का धूप का धूम करि राजा राणी मृत्यु प्राप्ति हूवा। मध्य भोगभूमि विषै उपज्या। तहा सौ विनयश्री कौ जीव चद्रमा कै देवी हुई।"   पत्र स० १५७

इन उदाहरणो को पढने से ज्ञात होगा कि कवि की भाषा कितनी निखरी हुई है। यद्यपि कवि के राजस्थान निवासी होने से इस पर ढूढारी भाषा का भी कुछ प्रभाव है तथा कही-कही ब्रज भाषा के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है लेकिन फिर भी कथाकोश को हम खडी बोली की ही कृति कहेगे। इसमे विभिन्न नामो का पूर्णत शुद्ध रूप मे व्यवहार किया गया है। इनका तद्भव रूपान्तर नही किया गया है। ऐसे सभी शब्द तत्सम हैं—वर्द्धमान स्वामी, वारिषेण, चम्पापुरी, भरतक्षेत्र, रामदत्ता, जम्बूद्वीप मान्यखेट, पात्रकेसरी, अकलक, नि कलक। भाषा टीका मे 'मेँ" के स्थान पर "विषै" शब्द का प्रयोग हुआ है। ज्याकै (१३५) उतरचा (१३४) देवालागी (१३३)। लेकिन निम्न उद्धारणो से ज्ञात होगा कि कवि ने कथा कोश को कितनी परिष्कृत भाषा मे निवद्ध किया था।

(क) "पीतकर जी स्त्री सहित नाव मे वैठा तव क्यों वस्तु भूलि आया था। सो वै कलेवा निमित्त नगर मे आया तव नागदत्त पापी जिहाज चलाय दीनी।"   पृ० स० २०७

(ख) एक दिन रात्रिवत सिद्धकूट चैताले वदवानै गयो थो सो हरिचन्द मुनिकनै धर्म श्रवण करि दिगम्बर हुवो। सो एक दिन वन विषै गुफा मे कायोत्सर्ग तिष्टै थो। दुर्धर तप करि अत्यन्त खीण सरीर देख्यौ॥
पृ० स० १६०

(ग) "अर सातसै अ ग रक्षक जो कोढ पीडित छा सो निरोग हुआ। अहो सिद्धचक्र की पूजा करिवा थकी उत्कृष्ट फल नै कल्पवृक्ष की वेलि की नाई ई भव मे दे छै।"   पृ० स० २१७

अभी तक 'पुण्यास्रव कथाकोश का' भाषा की दृष्टि से अध्ययन नही हुआ है जिसकी अत्यधिक आवश्यकता है। हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास मे इस कृति का पर्याप्त महत्व है। दि० जैन साहित्य मे इससे पूर्व इतनी

खडी भाषा टीका किसी विद्वान् द्वारा नही लिखी गई थी। इसलिए कवि के इस प्रथम प्रयास का सब ओर से मर्मस्पर्शी स्वागत हुआ और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इसका स्वाध्याय होने लगा। यहा तक यह ग्रन्थ गुजरात एव महाराष्ट्र मे भी लोकप्रिय बन गया। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र-भण्डार मे इसकी एक प्रति सवत् १७८८ मगसिर सुदी १३ रविवार के दिन की लिखी हुई है, जिसकी प्रतिलिपि अहमदाबाद मे हुई थी। इसलिए इस ग्रन्थ की भाषा ऐसी है जो तत्कालीन माज मे अत्यधिक लोकप्रिय रही।

१० पद्म पुराण

पुण्यास्रव कथा कोश की रचना के पश्चात् कवि की यह दूसरी विशाल गद्य कृति है, जिसने अपने युग मे तुलसीदास की रामायण के समान समाज मे जैन रामायण के रूप मे सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी। इसका घर-घर एव मन्दिर-मन्दिर मे स्वाध्याय होने लगा था और जिसकी लोकप्रियता ने उस समय के सभी रिकार्ड तोड दिये थे। जयपुर आने के पश्चात् कवि ने इसकी रचना कब से प्रारम्भ की इसका तो इसमे कोई उल्लेख नही मिलता, लेकिन इसकी रचना समाप्ति काल स १८२३ है। उस समय महा प० टोडरमल की गद्यात्मक कृतियो की ख्याति उच्च स्तर तक पहुच चुकी थी तथा जनता की इच्छा भी पद्यात्मक कृति की अपेक्षा गद्यात्मक कृति को अधिक मनोयोग से पढने की थी। इसलिए दौलराम ने भी गद्यात्मक कृतियो की ओर विशेष ध्यान दिया।

'पद्म पुराण' कवि की मूल कृति नही है। किन्तु १०-११वी शताब्दी के महाकवि रविषेणाचार्य की सस्कृत कृति का हिन्दी भाषानुवाद है। लेकिन कवि का लेखन शैली एव भाषा पर पूर्ण अधिकार होने से यह मानो उसकी स्वय की मूल रचना के समान लगती है। इसमे १२३ पर्व हैं जिनमे जैन धर्म के अनुसार ' रामकथा" का विस्तार से वर्णन हुआ है। भगवान महावीर के समवसरण मे जाने के पश्चात् राजा श्रेणिक राम कथा को सुनने की इच्छा करते हैं और तब भगवान महावीर रामकथा पर विशद व्याख्यान करते हैं। राम कथा के साथ मे राक्षस वशी एव वानर वशी विद्याधरो का, रावण का जन्म, अजना सुन्दरी और पवनजय का विवाह वर्णन, हनुमान जन्म कथा, रावण को चक्र प्राप्ति एवं राज्याभिषेक और इसके पश्चात् रामकथा की पुन वर्णन किया गया है। जिसमे राम-लक्ष्मण को ऋद्धि-प्राप्त, राम को लोकापवाद की चिन्ता, सीता का वन मे विलाप, सीता को लव-कुश की

प्राप्ति, एवं उनका लक्ष्मण के साथ युद्ध, सीता की अग्नि परीक्षा आदि विविध वर्णनो के पश्चात् राम निर्वाण प्राप्त करते हैं और इस प्रकार अत्यधिक सुन्दर ढग से तथा भक्ति पूर्वक राम कथा की समाप्ति होती है । इस कथा के प्रारम्भ मे कवि ने निम्न शब्दो मे राम के जीवन की प्रशसा की है—

'कैसे हैं श्रीराम, लक्ष्मी कर अलिंगित है हृदय जिनका और प्रफुल्लित है मुख रूपी कमल जिनका, महापुण्याधिकारी हैं, महाबुद्धिमान हैं गुणन के मन्दिर और उदार है चरित्र जिनका, केवल ज्ञान के ही गम्य है ।"

महाकवि दौलतराम ने "पद्म पुराण" को हिन्दी गद्य में लिख कर के स्वाध्याय प्रेमियो के लिए महान् अवसर प्रदान किया । यही नही हिन्दी के पाठको को गद्य मे राम कथा देकर एक नवीन परम्परा को जन्म दिया । अब तक जितनी भी रामायण लिखी गयी थी वे सव पद्य मे ही थी । महाकवि विमलसूरि ने प्राकृत मे, महाकवि स्वयम् ने अपभ्रंश मे, महाकवि वाल्मीकि ने सस्कृत मे, रविषेणाचार्य ने सस्कृत में जो रामकथाए लिखी, वे सव पद्य मे ही थी, लेकिन दौलतराम ने इसे गद्य में निबद्ध कर उसकी लोकप्रियता मे वृद्धि की तथा उसे जैन समाज के घर-घर में पढी जाने वाली कथा वना दी ।

"पद्म पुराण" की भाषा खडी वोली के रूप में है । यद्यपि कुछ विद्वानो ने इसे ढूंढारी भाषा के रूप मे स्वीकार किया है लेकिन वास्तव मे कवि ने व्रजभाषा प्रभावित खडी वोली के रूप मे इसे प्रस्तुत किया है । जो अत्यधिक मनोरम एव हृदयग्राही बन गई है । कही तो इसकी भाषा इतनी आलकारिक वन पडी है, मानो वह हिन्दी की कादम्वरी हो । कवि ने इसे विभिन्न उपमानो से सवारा है ।

"पद्म पुराण" की रचना मे साधर्मी भाई रायमल्ल का अनुरोध विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसका स्वय कवि ने निम्न प्रकार से उल्लेख किया है—

रायमल साधर्मी एक, जाके घर मे स्वपर विवेक ।
दयावत गुणवत सुजान, पर उपकारी परम निधान ।।
दौलतराम सु ताको मित्र, तासो भाष्यो वचन पवित्र ।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ, तामे लोक शिखर को पथ ।।
भाषा रूप होय जो येह, बहुजन वाच करै अति नेह ।
ताके वचन हिये मे धार, भाषा कीनी मति अनुसार ।।

११ आदिपुराण

'आदि पुराण' सस्कृत मे आचार्य जिनसेन की रचना है। काव्य, भाषा एवं वर्णन की दृष्टि से यह रचना सस्कृत भाषा की अनूठी कृति है। इसमे ४७ पर्व हैं तथा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र सम्राट भरत तथा महायोगी बाहुबलि आदि का जीवन विस्तृत रूप से वर्णित है। जैन समाज का यह एक अत्यधिक प्रिय ग्रन्थ है, जिसका स्वाध्याय करना प्रत्येक श्रावक एव श्राविक के लिए आवश्यक माना है। त्रेसठ शलाका महापुरुषो का जीवन जानने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कृति है। ऐसे पुराण की भाषा टीका का कार्य महाकवि दौलतराम ने अपने हाथ में लेकर हिन्दी भाषा-भाषियो के लिए महान् उपकार का कार्य किया। कवि ने जब सस्कृत मे रचित आदि-पुराण का स्वाध्याय एव प्रवचन किया तो सभी श्रोताओ ने विशेषत दीवान रतनचन्द ने उनसे इस पुराण की भाषा-टीका करने का अनुरोध किया। कुछ अन्य श्रोताओ एव स्वाध्याय प्रेमियो ने भी इसके लिए आग्रह किया। उस समय जयपुर मे स्वाध्याय का अत्यधिक प्रभाव था। महाविद्वान टोडरमल का प्रभाव चरमोत्कर्ष पर था। इसलिए कवि को तत्कालीन स्वाध्याय प्रेमियो के आग्रह को मानना ही पडा और उन्होने इसकी भाषा टीका प्रारम्भ करदी। सवत् १८२३ मे पद्मपुराण की रचना के ठीक ७ मास पश्चात् ही उन्होने यह एक और विशाल गद्य कृति पूर्ण की।

अठारह सै सम्वता ता ऊपर चौवीस।
कृष्ण पक्ष आसोज को पुण्य नक्षत्र वरीश।
शुक्रवार एदादशी पूरण भयो ये ग्रथ।।

इस ग्रन्थ के निर्माण की प्रेरणा मे प० टोडरमल के दोनो पुत्र हरिचन्द एव गुमानीराम तथा देवीदास गोधा का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। कवि ने भाषा टीका के प्रारम्भ मे अपनी जिस रूप मे लघुता प्रगट की है। वह उल्लेखनीय है।

ता परि भाषा वचनिका, भाषू मैं मति मन्द।
लेहु सुधारि सूपडिता, ज्ञान रूप निर्द्वन्द।।
महिमा महापुराण की, मो पै कही न जाय।
जानै श्री जिन केवली, तीन भुवन के राय।
निज मति माफिक कछू मैं, भाषू भाषा रूप।
सुनहु भव्यजन भावधरि, भजहु भजहु जिन रूप।।

आदि पुराण विशाल काव्य ग्रन्थ है लेकिन कवि ने भाषा टीका की एक ही शैली को अपनाया है। आचार्य जिनसेन के क्लिष्ट शब्दो का अर्थ जितने सरल, बोधगम्य शब्दो मे किया है, वह कवि के सस्कृत एव हिन्दी के अगाध ज्ञान का द्योतक है। पुराण की सरस शैली होने के कारण इसका शीघ्र ही सारे देश मे प्रचार हो गया और सैकडो स्वाध्याय प्रेमियो ने इस ग्रन्थ के स्वाध्याय करने के लिए ही हिन्दी भाषा सीखी।

१२ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय

यह आचार्य अमृतचन्द्र की कृति है जो सस्कृत भाषा मे निवद्ध है। यह ग्रन्थ लघुकाय होने पर भी गागर मे सागर का कार्य करता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने इसमे जैन धर्म की तात्विक गम्भीरता का वर्णन किया है। जो उनके महापाण्डित्य का दिग्दर्शन कराता है। इसकी हिन्दी टीका जयपुर के ही महापण्डित टोडरमल ने प्रारम्भ की थी, जो महाकवि दौलतराम के समकालीन विद्वान थे। लेकिन उनका असमय मे ही स्वर्गवास होने के कारण वे इसे पूरी नही कर पाये। तव तत्कालीन जयपुर समाज के प्रमुख दीवान रतनचन्द्र ने दौलतराम से उसे पूर्ण करने का अनुरोध किया। दौलतराम ने सवत १८२७ मे मगसिर सुदी २ के पावन दिन इस ग्रन्थ की भाषा टीका पूर्ण की—

तासु रतन दीवान ने, कही प्रीत कर एह
करिये टीका पूरण, उरधर धर्म सनेह।
तब टीका पूरण करी, भाषा रूप निधान।
कुशल होय चहु सघ को, लहे जीव निज ज्ञान।
सुखी होय राजा प्रजा, होय धर्म की वृद्धि।
मिटै दौष दुख जगत के, पावे भविजन सिद्धि।
अट्ठारहसै ऊपरे सवत सत्ताईस मास
मार्गशिर ऋतु शिशिर दोयज रजनीश॥

इसके पहले कवि ने प० टोडरमल्ल के नाम का उल्लेख किया है। जिन्होने उक्त टीका का प्रारम्भ किया था और उसका कितना भाग शेष रह गया था, इसका भी उल्लेख किया है—

अमृतचन्द्र मूनीन्द्रकृत ग्र थ श्रावकाचार,
अध्यातम रूपी महा आर्या छन्द जु सार।
पुरुषारथ की सिद्धि को जामै परम उपाय।
जाहि सुनत भव भ्रम मिटै, आतम तत्व लखाय।

भाषा टीका ता ऊपर कीनी टोडरमल्ल
मुनिवर कृत बाकी रही ताके माहि अचल्ल ।
ये तो परभव कू गये जयपुर नगर मझार ।
सब साधर्मी तब कियो मन मैं यह विचार ।

सम्पूर्ण ग्रन्थ मे २२८ श्लोक हैं । इनमे अहिंसा धर्म पर विशेष जोर दिया है । इसके अतिरिक्त पच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत के वर्णन के अतिरिक्त रात्रि भोजन का जबरदस्त निषेध किया गया है ।

महाकवि दौलतराम ने ग्रन्थ के उत्तर भाग की भाषा टीका लिखी । तथा अत्यधिक सरल शब्दो मे उसे प्रस्तुत किया ।

"विवेकी पुरुष जो हैं जो गृहस्थ अवस्था मे भी ससार से विरक्त होकर सदा ही मोक्ष मार्ग मे उद्यमी रहते हैं और वे ही अवसर पाकर शीघ्र ही मुनि पद को धारण करके सकल परिग्रह को त्याग कर निर्विकल्प ध्यान मे आरूढ होकर पूर्ण रत्नत्रय को मानकर ससार के भ्रमण का उच्छेद कर शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति करते हैं"

महापण्डित टोडरमल की भाषा ब्रज भाषा को लिए हुए हैं, जब कि दौलतराम की भाषा खडी बोली का रूप लिए हुए है। सस्कृत के दुरूह शब्दो को भी उन्होने सरल हिन्दी शब्दों मे समझा दिया है। कवि ने पहिले श्लोको की टीका, विषय का स्पष्टीकरण के लिए अर्थ तथा फिर भावार्थ दिया है ।

१३ हरिवश पुराण

हरिवश पुराण 'पद्मपुराण' की राम कथा के समान ही कृष्ण कथा है, जिसमे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन-चरित के वर्णन के प्रसग मे पूरे महाभारत के पात्रो के जीवन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । जैनाचार्यों द्वारा पद्मपुराण के समान अपभ्र श मे स्वयभू का रिट्ठणेमिचरिउ तथा सस्कृत मे जिनसेनाचार्य का 'हरिवश पुराण' इस विषय की प्रमुख रचनाएं है । दौलतराम ने ऐसे विशाल पुराण की हिन्दी गद्य टीका करके हिन्दी की लोक प्रियता में श्रीवृद्धि का एक और प्रयास किया और उसमे वह पूर्णत सफल भी रहा । 'हरिवश पुराण' का स्वाध्याय घर-घर होने लगा और अहिन्दी क्षेत्रो मे भी उसके स्वाध्याय का प्रचार हो गया । राजस्थान के कितने ही भण्डारो मे हरिवश पुराण की एक से अधिक प्रतिया उपलब्ध होती हैं जो उसके स्वाध्याय के प्रचार को द्योतित करती है ।

इस कृति का रचनाकाल सवत् १८२९ चैत्र सुदी पूर्णिमा है। इसकी रचना जयपुर नगर मे सम्पन्न हुई थी। यह कवि की अन्तिम कृति है। इसकी रचना की घटना भी बडी विचित्र हैं। कवि के परम मित्र भाई रायमल्ल जब मालवा गये, तब उन्होने वहा की समाज को उनके द्वारा रचित आदिपुराण एव पद्मपुराण की भाषा–टीका को पढकर सुनायी। एक तो भाई रायमल्ल की प्रवचन शैली, दूसरी इन कृतियो की सरसता—दोनो ने वहा के श्रावकगणो को आनन्दित कर दिया। उन्होने इसे बार-बार सुनने की इच्छा प्रकट की। इसका फल हुआ कि इन दोनो ग्रन्थो का मालवा मे बराबर स्वाध्याय होने लगा। पर श्रावको की प्यास और भी जागृत हुई। उन्होने भाई रायमल्ल से पद्मपुराण के समान हरिवश पुराण की भी भाषा टीका लिखवाने की प्रार्थना की क्योकि वे श्रावक दौलतराम की विद्वत्ता से परिचित हो चुके थे। भाई रायमल्ल को उनकी बात माननी पडी। उन्होने वहीं से दौलतराम को पत्र लिखा कि हरिवश पुराण की भी ऐसी भाषा टीका लिखो, जो सब को अच्छी लगे। पत्र लेकर आने वाले साधर्मी भाईयो ने भी महाकवि से भाषा–टीका करने का अनुरोध किया और शीघ्र ही इस महान कार्य को पूरा करने की प्रार्थना की, क्योकि शरीर का पता नही कि वह कब धोखा दे जावे। वैसे भी दौलतराम उस समय काफी वृद्ध हो चुके थे। जयपुर के तत्कालीन दीवान रतनचन्द और उनके भाई विरधीचन्द ने भी पंडितजी से आग्रह किया। फिर क्या था—महाकवि इस कार्य मे जुट गये। उन्होने दो शीघ्रलिपि लेखक सीताराम एव सवाईराम को अपने साथ लिया। और शीघ्र ही संवत् १८२९ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन इस महान ग्रन्थ की भाषा को पूर्ण कर दिया इस ग्रन्थ के समापन के साथ ही मानो कविकी साहित्य—साधना सफल हो गयी। यह उनके जीवन की अन्तिम कृति थी। इसे प्राप्त कर समूचा साहित्यिक जगत निहाल हो गया। १९ हजार श्लोक प्रमाण गद्य कृति लिखना कितनी असाधारण साहित्यिक उपलब्धिथी! इसका अनुमान भी करना आसान कार्य नही है।[1]

भयो कौन विधि ग्रन्थ यह, भाषा रूप विशाल।

सो तुम सुनहु महामती, जिन आज्ञा प्रतिपाल ॥१॥

जम्बूद्वीप मझार यह, भरतक्षेत्र शुभ थान।

ताके आर्य्ज खड मे, मध्य देश परवान ॥२॥

वस्तुत हरिवश पुराण हिन्दी भाषा की महान निधि है। कवि ने जिस तरह आलकारिक भाषा मे कथा का वर्णन किया है, वह आज से २०० वर्ष पूर्व किसी विद्वान के सामर्थ्य के बाहर था। पद्यकार तो बहुत थे, पर गद्य मे और वह भी ललित भाषा मे कथा का वर्णन प्रत्येक के वश की बात नही थी।

नगर सवाई जयपुरा, जहा बसे बहु न्यात।
राजा पृथिवीसिंह है, जो कछुवाहा जाति ॥३॥

शिरोभाग राजन मे, ढू डाहड पति सोय।
ताके मत्री श्रावका, और न्यातहु होय ॥४॥

बहुत बसै जैनी जहा, जीव दया व्रत पाल।
पूजा करे जिनेद्र की, आगम सुने रसाल ॥५॥
बहुत जीव श्रद्धावती, चरचा माहि सुजान।

ग्रन्थ अध्यातम आगमा, सुने बहुत वर कान ॥६॥

सस्कृत भाषामई, भये जु आदि पुराण।
पद्मपुराणादिक बहुरि, भाषा भये निधान ॥७॥

रायमल्ल के रुचि बहुत, व्रत क्रिया परवीन।
गये देश मालव विषै, जिन शासन लवलीन ॥८॥
तहा सुनाये ग्रन्थ उन, भाषा आदिपुराण।
पद्मपुराणादिक तथा, तिन को कियो बखान ॥९॥

सब भाई राजी भये, सुनकर भाषा रूप।
तिनके रुचि अति ही बढी, धारी कथा अनूप ॥१०॥

रायमल्ल से सबन ने, करी प्रार्थना येह।

करवाओ हरिवश की, भाषा बहु गुण गेह ११
आगे दौलतराम ने, टीका भाषा माहि।
करी सो ही यह अब करे, यामे सशय नांहि ॥१२॥

तब भेजी पत्री यहा, रायमल्ल धर भाव।
लिखो जु साधर्मीन को, करण धर्म प्रभाव ॥१३॥

तथा जु दौलतराम को, मल्ल लिखी वह बात ।
करहु भाषा हरिवंश की, सबके चित्त सुहात ।।१४।।

सब सार्धमिन मिले जब, श्री चैत्यालय माहि ।
भाषी दौलतराम से, जिन श्रुतसे अघ जाहि ।।१५।।

जिनवानी रस अमृता, जा सम सुधा न और ।
जाकर भव भरमरा मिटे, पावे निश्चल ठौर ।।१६।।
यामैं विलम्ब न कीजिये, करो शीघ्र ही येह ।
सफल होहि जाकर सही, उत्तम मिनग्वा देह ।।१७।।

रत्नचद दीवान एक, भूपत के परधान ।
तिन के भाई शुभ मती, विधीचद परवान ।।१८।।
सो दौलत के मित्र अति, भये जु उद्यम रूप ।
तिन के आग्रहते यह, टीका भई अनूप ।।१९।।

दौलत ने अति भाव धर, भाषा कीनी ग्रन्थ ।
महा शान्त रस को भरो, सुगम मुक्ति को पथ ।।२०।।
सीताराम जो लेखका, और सवाईराम ।
तिन पर लिखवायो जु यह, बहुत कथा को धाम ।।२१।।

ताकर सुधरे भव यह, अरु पावे शुभ लोक ।
होये अति आनन्द अरु, कबहु न उपजे शोक ।।२२।।
सुखी होह राजा प्रजा, होहु सकल दु.ख दूर ।
बढो धर्म जिनदेव को, जाहि बखाने सूर ।।२३।।

न्याति खडेल जु वाल है, गोत्र कासलीवाल ।
सुत है आनन्द राम को, बसवे वास विशाल ।।२४।।
सेवक नरपति को सहो नामसु दौलतराम ।
ताने यह भाषा करी, जपकर जिनवर नाम ।।२५।।

अट्ठारह सौ सवता, तापर धर गुणतीस ।
बार शुक्र पून्यो तिथी, चैत मास रति ईस ।।२६।।

पुराण के कितने ही प्रसग है, जिनमे महाकवि ने अपनी सारी लेखनी को उंडेल कर रख दिया है। वर्णन शैली सरस एव आकर्षक है। कवि ने प्रारम्भ मे ग्रन्थ की उत्पत्ति तथा उसके पश्चात अनुक्रमणिका दी है जो हरिवश पुराण का सक्षिप्त सार है। मात्र इस सार को ही पढकर कोई भी इस महान् कृति के विषय वर्णन से परिचित हो सकता है। अन्त मे स्वय महाकवि ने भी "यह हरिवश पुराण का विभाग सक्षेप कर रहा है।"—लिख कर अपने प्रतिपादित ग्रन्थ के विषय मे जानकारी दे दी है। यहाँ एक गद्याश प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे हरिवश -पुराण की गद्य शैली का अनुमान हो सकेगा—

भावार्थ.—माता ही स्वामिनी है अर निद्रा ही सखी है सो इस निद्रा सखी ने ऐसी जानी जो मोह कर मेरी स्वामिनी आनन्द रूप शुभ स्वप्न के दर्शन को प्राप्त भई सो मैं कृतार्थ भई। सेवक का यही धर्म है जो स्वामी को आनन्द उपजावे इसी कर सेवक को कृतार्थता है ॥७६॥ माता तो आप ही जाग्रतरूप है परन्तु दिक्कुमारी जगाने के अर्थ माता को ऐसे शुभ शब्द कहती भई सो वे शब्द केवल मगल ही के अर्थ है। अर माता तो जाग्रतरूप है देवी कहा शब्द कहे सो सुनो। हे विबुधार्थ कहिये माता ? तू कैसी है जाना है पदार्थों का रहस्य जिसने सो तू विबुध्यास्व कहिये जाग। हे विवर्धने! कहिये वृद्धि रूपिणी अब तू सबको आनन्द वढा। अर हे देवी! विजय लक्ष्मी की स्वामिनी देवी पूर्ण हैं मनोरथ जिसके सो तू विजय के भाव को प्राप्त हो ॥१७॥ हे माता! अब यह चन्द्रमा तुम्हारे मुखरूप चन्द्र को देख कर लज्जावत होय प्रभा रहित होय गया है तुम्हारा मुख निष्कलक अर गुण कर कहिये गुणो की खान अर चन्द्रमा दोषी कहिये रात्रि उसका करणहारा है उससे दोपकर अर कलंकी है ॥७९॥ अर दीपो की ज्योति मद भासे है सो मानो ये दीपक अपने प्रकाश को हसे हैं जो यह जिनेन्द्र के माता पिता का गृह नखों के उद्योत समान चाद सूर्य का प्रकाश नही यहा हम प्रकाश करें इस

ता दिन यह पूरण भया, श्री हरिवश पुराण।
पढो सुनो अरु सरदहो, पडित करो बखान ॥२७॥
श्री हरिवश पुराण की, भाषा सुनह सुजान।
सकल ग्रन्थ सख्या भई, उन्नीस सहस प्रमाण ॥२८॥
दो हजार अरु चार सौ, ता ऊपर पचास।
सवत वीर जिनेशका, कियो ग्रन्थ परकास ॥२९॥

समान मूढता कहा ॥८०॥ अब सध्या दुष्ट की मित्रता समान निष्फल डिगती भासे है कैसी है दुष्ट की मित्रता अत्यन्त सुख विषै है राग जिसका अर क्षरण मात्र मे राग मिट जाय है अर यह साझ भी प्रथम तो राग कहिये आरक्तरूप भासे है। अर क्षरण मात्र मे आरक्तता मिट जाय है ॥ भावार्थ—अब सध्या की भी ललाई मिटे है ॥८१॥ अब सूर्य की प्रभा सज्जन की मित्रता समान बढे है कैसी है मित्रता अबन्ध्य कहिये सफल है अर्थ जिस विषे अर कैसी है सूर्य की प्रभा सफल है सकल कार्य जिस विषे ॥८२॥

१४ परमात्म प्रकाश भाषा—

"परमात्म प्रकाश" आचार्य योगीन्दु की (६-७वी शती) कृति है जिसकी रचना का प्रमुख उद्देश्य प्रभाकर भट्ट के उद्बोधन के लिए रहा था। अपभ्रश भाषा मे निबद्ध यह ग्रथ अध्यात्म विषय का प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। यह दोहा छन्द मे लिखा गया है, जिसकी सख्या ३४५ है। इसके दो अधिकार है, जिनमे बहिरात्मा, अन्तरात्मा एव परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह जैन साहित्य की एक लोकप्रिय कृति रही है।

महाकवि दौलतराम कासलीवाल ने इस पर हिन्दी मे विस्तृत टीका लिखी, जो ६८६० श्लोक प्रमाण है, जैसा कि स्वय कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

'यह परमात्म प्रकाश ग्रन्थ का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट के सबोधने अर्थि श्री योगिन्द्र देव नें कीया था ता परि श्री ब्रह्मदेव नै सस्कृत टीका करी। श्री योगीन्द्राचार्य नै प्रभाकर भट्ट सबोधिवे कै अर्थि दोहा तीनसै तीयालीस कीए ता परि ब्रह्मदेव नै संस्कृत टीका हजार पाच च्यारि ५००४ कीए ता परि दौलत-राम नै भाषा वचनिका का श्लोक अडसठिसैनिवे ६८६० सख्या प्रमाण कीए। श्री योगीन्द्राचार्य कृत मूल दोहा ब्रह्मदेवकृत सस्कृत टीका दौलतिराम कृत भाषा वचनिका पूर्ण भई ॥'

कवि ने अपनी भाषा टीका मे विषय का प्रतिपादन अत्यधिक बुद्धिमत्ता पूर्ण किया हैं, जिससे प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी के वह समझ मे आ सके। कवि ने इसकी भाषा कब लिखी इसका इसमे कोई उल्लेख नही किया किन्तु इस कृति को भी कवि ने उदयपुर रहते हुए ही लिखी थी ऐसा मालूम होता है। क्योकि जयपुर आने के वे तो उन्होने आदिपुराण पद्मपुराण एव हरिवश पुराण जैसे विशालकाय ग्रन्थो की रचना करने मे सलग्न हो गये थे।

'परमात्म प्रकाश' कवि की उत्तम कृति है तथा तत्कालीन प्रचलित हिन्दी गद्य का सुन्दर रूप है।

१५ तत्वार्थ सूत्र टव्वा टीका—

'तत्वाथ सूत्र' जैन सिद्धान्तो को प्रतिपादित करने वाला सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रथ है। यह सूत्र रूप मे है और आचार्य उमास्वामी विरचित है। इसका रचनाकाल दूसरी-तीसरी शताब्दी माना जाता है। यह ग्रन्थ दोनो ही सम्प्रदायो मे समान रूप से समादृत हैं। इस पर सस्कृत मे कितनी ही टीकाएं उपलब्ध हैं और उनमे पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि (छठी शती) अकलकदेव का तत्वार्थराजवार्तिक (७७७-८३७) एव विद्यानन्द की श्लोकवार्त्तिक टीकाए (स० ८१०) सर्वाधिक प्रसिद्ध एव लोकप्रिय हैं। हिन्दी मे भी कितनी ही टीकाए मिलती है।

कविवर दौलतराम ने इस पर टव्वा टीका लिखकर इसके स्वाध्याय के प्रचार मे अपना योगदान दिया। कवि ने अध्यायो के अन्त में "इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्र ए दशमी अध्याय अर्थ सहित पूरो हुवो और अन्त मे इति उमास्वामि मुनि विरचित तत्वार्थ सूत्र टव्वा सहित समाप्ति"—इस प्रकार अपनी टीका का परिचय दिया है। अर्थ सूत्रो पर दिया गया है तथा कही-२ तो पर्याप्त रूप से विस्तृत बन गया है। इसकी एक पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर पाण्डे लूणकरण जी, जयपुर के शास्त्र भण्डार मे सगृहीत है। ग्रथ की टव्वा टीका का एक उदाहरण देखिये—

"अपना पर का उपकार के अर्थि अपना चित का देना सो दान है। तहा अपना पर का उपकार सो अनुग्रह कहिए सो अपना उपकार तो पुण्य का सचय होना है और पर का उपकार सम्यग्दशन, ज्ञान-चारित्र की वृद्धि होना है, सो इन अर्थनितैं स्व कहिता धन ताका अतिसर्ग कहिए त्याग सो दान है।"

१६ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टव्वा टीका[1]—

यह प्राकृत भाषा का अपूर्व ग्रन्थ है जिसमे बारह अनुप्रेक्षाओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। दौलतराम ने इसी की हिन्दी मे टव्वा टीका लिखकर इसके स्वाध्याय के प्रचार को प्रोत्साहन दिया। कवि ने इसकी प्रशस्ति मे लिखा है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टव्वा टीका इन्द्रजीत के बोध कराने को लिए सवत् १८२६ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्ण की थी—

१ देखिये अनेकान्त,

सुखी होहु राजा प्रजा, सुखी होई चौसग।
पावहु शिवपुर सज्जना, सो पद सदा अलध।
इन्द्रजीत के कारने, टवाजु वालावोध।
भाष्यो दौलतराम ने, जाकर होय प्रवोध।।

१७ वसुनन्दि श्रावकाचार भाषा—

आचार्य वसुनन्दि का श्रावकाचार प्राकृत भाषा का सुन्दर एव महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमे श्रावको के आचार धर्म का वर्णन किया गया है। महाकवि दौलतराम जब उदयपुर मे थे, तभी उन्होने अपनी शास्त्र सभा मे इस श्रावकाचार पर प्रवचन किया था। ग्रथ प्राकृत मे होने के कारण कवि के द्वारा समझाने पर एक बार तो समझ मे आगया, लेकिन पुन उसका स्वाध्याय कैसे किया जावे यह प्रश्न सभी के समक्ष आया। अन्त मे शास्त्र सभा के प्रमुख श्राताओ मे सेठ वेलजी ने दौलतराम से निवेदन किया कि यदि इस ग्रथ की टव्वा टीका हो जावे तो इसका स्वाध्याय करने मे सभी को सुविधा होगी। वेलजी सेठ का अनुरोध सुनकर कवि इसकी टव्वा टीका करने को सहमत हो गये और उन्होने शीघ्र ही अपने कार्य को समाप्त कर दिया।

अब तुम सुनहु भव्य इक वैन, जा विधि टव्वा भयौ सुख दैन
उदियापुर मे कियो वखान, दौलतिराम आनन्द सुत जान।
वाच्यौ श्रावक व्रत विचार, वसुनन्दी गाथा अधिकार।
वोले सेठ वेलजी नाम, सुनि नृप मत्री दौलतिराम।
टव्वा होय जो गाथा तनौ, पुन्य उपजै जिसकौ घनौ।
सुनि के दौलति वेल सु वैन, मन धरि गायो मारग जैन।
नदौ विरधौ जिन मत सार, सुख पावो चउसध अपार।
दौलति वेल कहो निज वोध, होहु होहु सवको प्रतिबोध।

टीका काफी विस्तृत है तथा भाषा एव शैली की दृष्टि से वह काफी अच्छी है।

१८ सार चौबीसी

यह कवि को पद्यात्मक आध्यात्मिक कृति है जिसमे मानव जीवन का, जगत की गतिविधियो का, आत्म स्वभाव का एव धार्मिक जीवन की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। इसी के साथ एक रुपात्मक कथा का भी वर्णन मिलता है। एक बार जीवात्मा ने भवसागर से पार उतरने का उपाय अपने

सद्गुरु ने पूछा । इसके उत्तर मे इन्होने बतलाया कि मोह की सुता मायानारी भव जाल से निकलने मे सबसे बडी बाधा है । इसलिये अपने हृदय से मोह पर विजय प्राप्त करो । कुमित्रो की आज्ञा को मत मानो और ज्ञान को अपना प्रधान-मत्री बनाओ । सुबुद्धि को अपनी स्त्री नियुक्त करो । विवेक को पुरोहित और अपनी आत्मशक्ति को ही सेनापति रखो । भगवद् भक्ति के सहारे मोह पर विजय प्राप्त करो तभी जाकर इस भव से मुक्ति मिल सकती है । इसके पश्चात् इस जगत मे कौन कौन से पदार्थ सर्वोत्तम हैं उनका भी इसमे वर्णन मिलता है ।

धेनु नही सुर धेनु सी, रस अमृत सो नाहि
उदधि न क्षीरोदधि जिसे, पडित लोक कहाहि ।।८७।।
ऐरावत से गज नही, सुरपुर से पुर नाहि ।
वन नही सुरवन सारिखो, क्रीडा रूप लखाहि ।।

७८ वें पद्य से १०३ पद्यो तक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है । पूरी रचना १०४ पद्यो मे समाप्त होती है । इसमे रचना काल नहीं दिया हुआ है किन्तु अन्तिम पद्य मे अपने नामोल्लेख के साथ ही रचना समाप्त करदी गयी है ।

सार समुच्चै यह कह्यौ, गुर आज्ञा परवान ।
आनद सुत दोलति नै, भजि करि श्रीभगवान ।।१०४।।

इस ग्रथ की एक प्रतिलिपि जयपुर के वधीचन्द जी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे १०८२ सख्या वाले एक गुटके मे सग्रहीत है ।

कवि की विचारधारा

महाकवि दौलतराम साहित्य की किसी एक धारा मे नही बहे । और न वे किसी परम्परा से ही बधे रहे । उन्होने अपना जीवन कथाकोप लिखने से प्रारम्भ किया और अन्त हरिवश पुराण से किया । ५२ वर्ष के लम्बे साहित्यिक जीवन मे कितने ही उतार चढाव आये लेकिन उनकी साहित्यिक धारा अजस्र बहती रही । वे रीति कालीन कवि थे । मुगल बादशाहो एव राजा महाराजाओ की शान शौकत का युग था । आमेर के दरबारी कवि बिहारी की सतसई ने तत्कालीन जनता पर जादू जैसा काय किया था । चारो ओर मस्ती थी । रगीन एव शृगार रस से ओत प्रोत कविताए थी और उनमे डूबा हुआ था सारा हिन्दी समाज । लेकिन दौलतराम राज दरबार मे रहते हुए हुए भी इस क्षणिक मस्ती से दूर थे । वे जानते थे कि यह जीवन निर्माण का मार्ग नही है । सरागता जीवन की सच्चाई तक नही पहुँचने देती

जबकि वीतरागता उसके अन्तिम छोर तक पहुँचने मे सहायक होती है। इसलिए कवि ने "पुण्यास्रव कथाकोष" की रचना करके पाठको को अध्ययन का एक नवीन मार्ग बतलाया। ये सब ऐसी कथाए है जिनमे जीवन निर्माण का मार्ग मिलता है। सरसता एव धारा प्रवाहिकता मे ये कथाए किसी से कम नही। भाव, भाषा एव शैली सभी दृष्टियो से उत्तम। आगरा की गलियो मे अध्यात्म सैलियो मे तथा मन्दिर एव स्वाध्याय शालाओ मे इन कथाओ को पढा जाने लगा और इस एक ही कृति मे दौलतराम लोकप्रियता के शिखर पर जा बैठे।

उदयपुर मे जब वे पहुँचे तो वहाँ भी राजाशाही थी। कामिनी एव सुरा का दौर दौरा था। और कवि को इन राजदरबारो मे भी उपस्थित रहना पडता था। जयपुर महाराजकुमार के सरक्षक जो ठहरे। लेकिन यहाँ भी कवि ने अपने आपको कमल के समान निर्लिप्त रखा?

उदयपुर जाने के पश्चात् उनका साहित्यिक जीवन निखर गया। आगरा मे उन्हे वहाँ की अध्यात्मक शैली मे रहने का अवसर मिला। और भूधरदास जैसे महाकवि से साहित्यिक विचार विमर्श करने का सौभाग्य मिला। आगरा से पुन जयपुर आने के पश्चात् भट्टारको एव तत्कालीन विद्वानो के विचारो को जानने एव समझने का समय प्राप्त हुआ। और जब उदयपुर पहुँचे तो उन्हें एकान्त मे अपने विचारो का मन्थन करने का खूब समय मिला। वहाँ आगरा एव जयपुर जैसा न तो साहित्यिक वातावरण था और न सामाजिक सगठन ही। यहाँ उन्होने अपने योग्य वातावरण का स्वय को निर्माण करना पडा। एव शास्त्र प्रवचन के माध्यम से अपने विचारो को प्रसारित करने का सुन्दर अवसर भी मिला। इसलिये उदयपुर जाने के पश्चात् उन्होने समाज को सर्वप्रथम "क्रियाकोश" दिया। इसके आधार पर हम कवि की विचार-धारा का अच्छी तरह अध्ययन कर सकते हैं। कवि ने इसमे गृहस्थो के लिए आवश्यक त्रेपन क्रियाओ का जिस सुन्दरता एव विशदता से वर्णन किया वह कवि के विचारो का द्योतक है। उसने सभी क्रियाओ को जीवन विकास के लिये आवश्यक माना है और उनके पालन करने के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। आरम्भ मे उसने इन कार्यों का नामोल्लेख किया है जिनके सम्पादन से मानव जीवन सामान्यतया प्रशस्त बनता है तथा जिन्हे हम श्रावक मात्र के लक्षण कह सकते हैं। ऐसे शुभ कार्यों के नाम निम्न प्रकार हैं—

मोक्ष मारगी मुनिवरा, जिनकी सेव करेय।
सो श्रावक धनि धन्य है जिन मारग चित देय ॥६०॥

जिन मदिर जो शुभ रचै, अरचै जिनवर देव ।
जिन पूजा नित प्रति करै, धरै साधु की सेव ।।६१।।
करै प्रनिष्ठा परम जो, जान्या करै सुजान ।
जिन सासन के ग्रन्थ शुभ, लिखवावै मतिवान ।।६३।।
चउ विधि सघ तणी सदा, सेवा धारै वीर ।
पर उपगारी सर्व की, पीडा हरै जु वीर ।।६३।।

उक्त पक्तियाँ श्रावक के लिए प्रशस्त मार्ग को निर्देशित करने वाली है। इससे यह स्पष्ट है कि वे इन सभी क्रियाओ के पालन करने के पक्ष मे थे जिन्हे पूर्वाचार्यों ने प्रतिपादित की थी। उनकी दृष्टि से जीवन निर्माण के लिये आचार की प्रधानता है चारित्र की विशेषता है। और त्रेपन क्रियाओ के सम्बन्ध मे उन्होने इसी दृष्टि से विस्तृत प्रकाश डाला है। कवि ने अपनी इस कृति के माध्यम स उदयपुर के सामाजिक वातावरण को स्वच्छ बनाया और श्रावको को इन क्रियाओ को जीवन मे उतारने पर विशेष जोर दिया। कवि इससे पुरातन पथी नहीं बना किन्तु उसने जीवन मे चारित्र की, सयम की, अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य एव परिग्रहपरिमाण आदि व्रतो की पुन प्रतिष्ठापना की। षट् कर्मों के परिपालन को जीवन का आवश्यक अग बतलाया तथा मद्य मास एव मधु को मानव मात्र के लिये त्याज्य बतलाया। कवि के इन विचारो से समाज मे नव चेतना का सचार हुआ। इसके लिये उन्होने शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया और उसे अपने विचारो को लोगो तक पहुँचाने का माध्यम बनाया।

भक्त कवि के रूप मे

उदयपुर मे रहते हुए कवि ने अध्यात्म बारहखडी की रचना की। यह कवि की सबसे विशाल पद्यात्मक काव्य कृति है जिसे हम अध्यात्म एव भक्ति का महाकाव्य भी कह सकते हैं। इस कृति मे वे भक्त कवि के रूप मे हमारे सामने उपस्थित हुए हैं। बारहखडी के रूप मे उन्होने जिस रूप मे भक्ति एव अध्यात्म की गगा बहायी है वह हिन्दी काव्य जगत् मे अनोखी है। उसने सर्व प्रथम निम्न शब्दो म निर्ग्रन्थ जिनवर का स्तवन किया है—

और न दूजो देवता और न दूजो पथ ।
शिव विरचि जगनाथ है, जो जिनवर निग्रंथ ।।१०।।

१ अध्यात्य बारहखडी पद्य सख्या ४८

सब वामे वह सवनि मे, वह है सब ने भिन्न ।
वा तै सब ही भिन्न है वह भिन्नो च अभिन्न ।।

कवि के शब्दो मे ब्रह्मा, विष्णु एव महेश जिन स्वरूप है इसलिये उसने परमात्मा की निम्न शब्दो मे भक्ति की है—

तुही जिनेश सकरो, सुखकरो प्रजापती ।
तुही हिरण्य गर्भ को, अगर्भ को धरापती ।।

वह परमात्मा अनन्त गुणात्मक है । अनन्त सुख एव वीर्य का धारी है । उसके समान वही है और दूसरा कोइ भी नही है । तेरी समता तू ही सामी, तो सौ और न अन्तरयामी" कह कर वह प्रभु का स्तवन करता है और अपने "सकल्पा अर सकल विकल्पा, मेरे मेटि जु देव अकल्पा" की याचना की है । कवि का प्रभु अमरेश्वर द्वारा पूजित है । सूर्य एव चन्द्रमा जिनकी सेवा करते हैं । चारो निकायो के देवो द्वारा पूजित है । जिन सहस्रनाम मे जिस प्रकार भगवान जिन देव के १००८ नामो का गुणानुवाद किया है उसी प्रकार इस बारहखडी मे उसने उसी रूप मे जिनदेव का स्तवन किया है । उसने भगवान से कर्म रूपी कलंक को हटाने की प्रार्थना की है । वास्तव मे तो जो अरहत सिद्ध आदि पच परमेष्ठियो का स्तवन करता है उसके स्वत ही माया एव मोह दूर हो जाते हैं । एक स्थान पर उसने कहा है जब किसी भक्त को भव सागर से तारा है तो इन पच परमेष्ठियो की भक्ति ने ही उसे तारा है अन्य ने किसी ने नही । क्योकि वह सब देवो का भी देव है—

जब तारै जब तू ही तारै, तो विनु और न कर्म निवारै ।
सब देवनि को तू ही देवा, सब करि पूजति एक अभेवा ।

कवि ने उन सभी महापुरुषो का, भक्तो का, आचार्यों एव साधुओ का नामोल्लेख किया है जिन्होने जिनेन्द्र भक्ति से भव सकटो से मुक्ति प्राप्त की है क्योकि जिनेश्वर सब के रक्षक हैं और सब भेदाभेद से विमुख हैं ।[1] णमोकार मत्र की महिमा का भी कवि ने वर्णन किया हैं । इस मत्र की महिमा से मरणासन्न श्वान ने भी देवगति प्राप्त की दी ।

मरत सुन्यौ स्वाने चितधारी, अघते रहित भयो शुभकारी ।

लेकिन कवि की भक्ति एव भक्त की कामना दोनो ही उल्लेखनीय है । वह प्रभु

---

१. अध्यात्म बारहखडी—पृष्ठ सख्या १९२ पद्य सख्या १९६

से सासारिक इच्छाओ की पूर्ति के लिये निवेदन नही करता। स्त्री, सन्तान, स्वास्थ्य एव सुन्दर शरीर की वह अपने प्रभु से वाछा नही करता और न वह कोट्याधीश बनने की याचना करता। वह तो उनसे स्वय परमात्मा स्वरूप को प्राप्त करने की प्रार्थना करता है क्योकि उसने इन्ही के जाल मे पड कर जन्म जन्मन्तरो मे महान दु ख पाये हैं जिनका वर्णन करना भी कठिन है।[1] वह स्वय तीर्थकर बनने की कामना करता है इसलिये वह निम्न शब्दो मे स्तवन करता है—

अतिसै जग के दासन मागे, दे अतिशय चउतीस जु मोहि
अष्ट जु प्रातिहारहू देहौ, केवल दै विनऊ कह तोहि।
देहु अनत चतुष्टय निश्चै, तू अतिशय तन चिदघन होहि।
अतिशय प्रातिहार नहि देतो, अन्न त चुतुष्टय दे प्रभु सोहि ॥४०६॥

भगवान जिनेन्द्र देव जहा विराजते हैं उसका वर्णन भी कवि ने भक्ति वश किया है। वहाँ केवल आत्म सुख ही आत्म सुख है। जगत् का अन्य कोई व्यापार नही। न असि का व्यापार है और न वहाँ मसि का कार्य है। व्यापार एव वणिज वहाँ नही होता। निर्वाण होने के पश्चात उस लोक मे न पठन पाठन की आवश्यकता है और न गुरू शिष्य का भेद है वहाँ यह आत्मा शुद्ध स्वरूप मे निवास करती हैं। मोह द्रोह एव अन्य वैभाविक क्रियाओ को वहाँ कोई स्थान नही है और ऐसे ही स्थान प्राप्ति के लिये वह अपने प्रभु से प्रार्थना करता है।[2]

इस प्रकार सम्पूर्ण अध्यात्म बारहखडी भक्ति भावना से ओत प्रोत है। कवि ने इसमे अपना हृदय खोल कर रख दिया है और जितना भी उसे शाब्दिक ज्ञान था उसे उसने अपने भावो मे उतारा है। भक्ति एव स्तवन मे कवि ने जैन सिद्धान्त का भी अच्छा वर्णन किया है क्योकि जिन भगवान भी उन्ही सिद्धान्त मय हैं। यही नही वर्ष भर के प्रमुख पर्वो के महात्म्य का भी इसी प्रसग मे वर्णन कर दिया है। क्योकि इन पर्वो का महात्म्य भी तो इनके जीवन की किसी घटना का कारण है। और उनके जीवन की घटनाओ का सागोपाग

---

१ सो मेरी मेटो जगनाथा, निज परणति कौ देहु साथा।
पर परणति तें मैं दुख पायो, आप विसारि जु जन्म गवायो ॥२४०॥
२ अध्यात्म बारहखडी—पद्य संख्या ४३० पृष्ठ सख्या २४१

वर्णन भी भक्ति का एक अग है। अक्षय तृतीया पर्व के महात्म्य को कवि ने निम्न शब्दो मे प्रस्तुत किया है—

वैशाखी शुक्ला जु तीज अक्षय भई
रिपभ कियो जा दिवस पारनौ विधि ठई।
वरप एक उपवास धारि यम धार जो।
मारग प्रगट कियो जु मोह मद मार जो ।।५१।।
घटिया थे दस पुनीत कियो जाने सही।
सो मानुज भवतारि किय सिव ईसही।
ईस रसाहारी जु देवपति देव जो
अपैतीज सम करहु करी हम सेव जो ।।५२।।

गद्य निर्माता के रूप मे

दौलतराम हिन्दी गद्य साहित्य के प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने अपनी चार वृहद् गद्य रचनाए साहित्य प्रगत को भेंट की। उनकी प्रथम कृति पुण्यास्रवकथा-कोश सवत् १७७७ (सन १७२०) की रचना है। उस समय तक हिन्दी कृतियो का अर्थ पद्यात्मक कृतियो मे लिया जाता था। यद्यपि डा० जयकिशन शर्मा ने व्रज भाषा गद्य का पूर्ण विकास एव उसका उत्कर्ष काल सवत् १५०० से १७०० तक स्वीकार किया है और इस काल की कुछ रचनाओ के नाम भी गिनाए हैं।[1] इन कृतियो मे या तो लघु गद्य रचनाएँ है या फिर वचनिका, टीका मत्रक रचनाएँ है लेकिन कविवर दौलतराम न हिन्दी गद्य मे विशालकाय कृतिया प्रस्तुत की और हिन्दी पाठको मे हिन्दी के प्रति गहरी रुचि पैदा की। कवि ने जिस धारावाहिक शैली को अपनाया आगे चलकर सारे जैन कवि ही नही किन्तु जैनेतर कवियो ने भी उसी शैली का अनुकरण किया। यद्यपि दौलतराम की चारो ही रचनाओ को हम अनुदित रचनाये कह सकते हैं ये केवल अनुवाद अथवा वचनिका मात्र नही हैं किन्तु इनमे मौलिकता का सर्वत्र सद्भाव है जिससे ये

---

१ हिन्दी साहित्य की प्रवत्तियाँ पृष्ठ सख्या ५१२–१३

दौलतराम का हिन्दी गद्य सस्कृत परिनिष्ठ है। वह अपभ्रस, प्राकृत तथा देशी शब्दो से मुक्त है। वह व्रज भाषा का गद्य हैं लेकिन फिर भी उसमे खडी वोली का पूर्व रूप देखा जा सकता है।

कृतियाँ स्वतन्त्र गद्य काव्यो के रूप मे सामने आती है। पुण्यास्रव कथाकोश के अतिरिक्त आदिपुराण, पद्मपुराण एव हरिवश पुराण जैसी कृतियो की भाषा एव शैली की दृष्टि से कवि ने उन्हें सर्वथा मौलिकता प्रदान की और जो अनुवाद मे सूना सूना सा नजर आता था उसे अपनी कृतियो में जड से उखाड फेंका। यही कारण हैं कि उनका पद्मपुराण एव हरिवशपुराण का स्वाध्याय गत २०० वर्षों मे जितना हुआ उतना स्वाध्याय सभवत अन्य किसी रचना का नही हुआ होगा। बल्कि महाकवि के पूर्व तक हिन्दी गद्य रचनाओ के प्रति पाठको का जो उपेक्षा भाव था उसे भी दौलतराम ने अपनी रचनाओ के माध्यम से दूर किया ' इसके अतिरिक्त अब तक भाषा टीका लिखने की जो परम्परा विद्यमान थी वह भी धीरे धीरे समाप्त हो गयी और विद्वान हिन्दी गद्य मे लिखने की ओर झुकने लगे। २०वी शताब्दी मे हिन्दी गद्य या उपन्यास, कहानी एव निबन्धो के रूप मे जो विकास हुआ उसमे भी वही भावना काम करती है जिस भावना से दौलतराम को अपनी कृतिया का माध्यम हिन्दी गद्य को स्वीकार किया था। 'खेतनि विषै नाना प्रकार के खेत हरे हो रहे हैं अर सरोवरनि मे कमल फूल रहे हैं अर वृक्ष महारमणीक दीखे है' यह शैली आज से २०० वर्ष से भी अधिक समय की है। गत दो सौ वर्ष मे हिन्दी भाषा के प्रयोग मे कितना परिवर्तन आया है इससे हम परिचित हैं लेकिन संवत १८२३ मे भी हिन्दी गद्य मे लिखने वाले इतने उच्चस्तरीय विद्वान थे यह देखकर हमे आश्चर्य होता है। और उनकी विद्वत्ता एव लिखने की शैली को देखकर के ही मालवा समाज ने हरिवशपुराण को हिन्दी गद्य मे निर्माण करने की ओर प्रार्थना करवायी।

"उनकी वार्त्ता पुर ग्रामादि विषै प्रसिद्ध भई सो दर्मन भूपति बलदेव के समाचार सुन कर सका मान नाना प्रकार के आयुध धर उपसर्ग करने वे आये। तब सिद्धार्थ देव उनको ऐसी माया दिखाई वे जहा देखे तहा दीखे।"

उपर्युक्त उदाहरण हरिवशपुराण का है। कवि ने इस पुराण मे बडे बडे वाक्य लिखे हैं क्रियाओ का प्रयोग कम से कम किया है और उसके प्रयोग से स्थान पर अर्द्ध क्रिया पदो का प्रयोग करके वाक्य को लम्बा करता गया है। लेकिन फिर भी भाषा एव शैली के आकर्षण मे कोई कमी नहीं आती है और पाठक उसे सहज भाव से पढता है। हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से दौलतराम के इन कृतियो का अत्यधिक महत्त्व है इसलिये इनका समीक्षात्मक अध्ययन आवश्यक हैं।

समकालीन शासक, विद्वान् एवं श्रावक

१ महाराजा सवाई जयसिंह (सन् १७०१ से १७४३)

महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर राज्य के योग्यतम शासक थे। वीरता, शौर्य्य एव सूझ-बूझ के लिए अपने समय मे देहली दरबार मे अत्यधिक लोकप्रिय थे। वे सन् १७०१ मे आमेर की गद्दी पर बैठे, लेकिन जब उन्होंने आमेर को अपने राज्य के लिए बहुत छोटा नगर पाया तो सन् १७२७ मे जयपुर नगर को बसाया[1]। इस नगर को महाराजा ने जिस वैज्ञानिक ढंग से बसाया उससे उनकी कीर्ति विश्व मे फैल गयी। तत्कालीन जैन कवि बख्तराम साह ने अपने बुद्धिविलास मे इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

कूरम सवाई जयस्यंघ भूप सिरोमनि,
सुजस प्रताप जाको जगत मै छायौ है।
करन-सौ दानी पाडवन-सौ कृपानी महा,
मानी मरजाद मेर राम-सौ सुहायौ है॥

महाराजा सवाई जयसिंह ने एक लम्बे समय तक राज्य पर शासन किया अपने राज्य की सीमाओ मे अत्यधिक वृद्धि की।

शासकीय गुणो के अतिरिक्त महाराजा साहित्य, संस्कृति तथा कला के विशेष प्रेमी थे। विद्वानो एव कलाकारो को वे खूब सरक्षण प्रदान करते थे। महाकवि दौलतराम का इनसे प्रथम साक्षात्कार कब हुआ—इसका तो कोई उल्लेख नही मिलता, लेकिन महाकवि ने सर्वप्रथम अपने 'त्रेपनक्रियाकोश' मे (स० १७९५) अपने आपको जयसिंह का अनुचर एव जयसिंह के सुत (महाराज कुमार) का मंत्री के रूप मे प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात् जब तक महाराजा जीवित रहे तब तक महाकवि उनकी सेवा मे रहे।

---

[1] सोहै अवावतिकी दक्षिण दिसि सागानेरि,
दोऊ वीचि सहर अनोपम बसायौ है।
नाम ताको धरयौ है, सवाई जयपुर।
मानौं सुरनि ही मिलि सुरपुर-सौ रचायो है॥९८॥

महाराजा जयसिंह यद्यपि वैष्णव धर्मानुयायी थे, लेकिन जैनधर्म, साहित्य तथा सस्कृति से उनका विशेष प्रेम था और उनके शासन काल मे पूरे राज्य मे नये-नये जैन मन्दिरो का निर्माण होता रहा। जयपुर नगर मे भी उन्होंने दो चौकडिया (मोदीखाना एव घाट दरवाजा) विशेष रूप से जैनो को बसने के लिए प्रदान की। उनके शासन मे जयपुर नगर मे जिस भारी सख्या मे विशाल एव कलापूर्ण जैन मन्दिरो का निर्माण हुआ, वह उनकी जैन धर्म के प्रति अनुराग का द्योतक है। कर्नल टॉड ने अपने ग्रन्थ "राजस्थान" मे यह भी लिखा है कि इस राजा को जैन धर्म के सिद्धान्तो का अच्छा ज्ञान था और उनकी विद्या बुद्धि के कारण भी वह जैनो का काफी सम्मान एव आदर करता था।[1] इनके शासनकाल मे सैकडो ग्रन्थो की प्रतिलिपिया की गई और उनको देश के विभिन्न भण्डारो में विराजमान किया गया। श्रीमहावीरजी क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से प्रकाशित ग्रन्थ सूचियो (५ भाग) एव प्रशस्ति सग्रह में ऐसे सैकडो ग्रन्थो का उल्लेख आया है, जिनकी प्रतिलिपि जयपुर में तथा राज्य के विभिन्न नगरो में हुई थी।

इनके शासनकाल में सवत् १७५८, १७६१, १७६३, १७६६, १७७२, १७७३, १७७७, १७७६, १७६१, १७६६ आदि में प्रतिष्ठापित मूर्तिया एव यन्त्रराज राजस्थान के विभिन्न नगरो मे उपलब्ध होते हैं। सबसे बडी प्रतिष्ठा इनके शासनकाल में वासखोह (जयपुर) नगर में हुई थी, जिसे आमेर गादी के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने करवायी थी। इस सवत् की मूर्तिया जयपुर एव राजस्थान के विभिन्न नगरो के मन्दिरो में विराजमान है।

महाराजा जयसिंह के समय मे आमेर, सागानेर एव जयपुर में कितने ही विद्वान् हुए, जिनमें अजयराज पाटनी, खुशालचन्द काला, नेमीचन्द, दीपचद कासलीवाल एव किशनसिंह के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानो ने तत्कालीन शासन की भूरि-भूरि प्रशसा की है।

२ महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह (१७४३–१७५०)

महाराजा सवाई जयसिंह के पश्चात् महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे। यद्यपि ये अधिक दिनो तक शासन नही कर सके, लेकिन जितने वर्षों तक जीवित रहे, अत्यधिक कुशलता से शासन किया। इनके राज्य में अधिकाशत शान्ति रही। कविवर बख्तराम ने इनके शासन की

---

१ एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान—पृ० २६७

निम्न शब्दो मे प्रशसा की है—

> वहुत वर्ष लौ राज किय, श्री जयस्यघ अवनीप ।
> जिनकै पटि वैठे स्वदिनि, ईश्वरस्यध महीप ।।१७०।।
> तिनकी दान कृपान को, जय जस करत अपार ।
> जिन सौं जग जुरे तिन्है, करि छाडे पतझार ।।१७१।।

महाकवि दौलतराम ने इनके शासनकाल का अपनी कृतियो में उल्लेख नही किया है, क्योकि उस समय वे महाराज कुमार माधोसिंह की सेवा में उदयपुर रहते थे ।

महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह को इमारते वनाने का वडा शौक था और ईश्वर लाट (सरगासूली) उन्ही के समय मे वनायी गयी थी ।

३ महाराजा सवाई माधोसिह (१७५०–१७६७)

महाकवि दौलनराम महाराज कुमार माधोसिंह के मत्री होकर उदयपुर गये थे और जव तक माधोसिंह जयपुर के शासक नही वने, तव तक वे मत्री के रूप में उदयपुर में ही रहे । महाराजा सवाई माधोसिंह के शासनकाल में राज्य का काफी विस्तार हुआ और रणथम्भौर का प्रसिद्ध किला जयपुर राज्य को आसानी से प्राप्त हो गया । वख्तराम साह ने इनके सम्वन्ध में जो कवित्त लिखे हैं वे निम्न प्रकार है—

दोहा : वहुरि पाटि वैठे नृपति, रामपुर तैं आय ।
भाई माधवस्यघजू, दुरजन कौं दुखदाय ।।१७३।।

कवित्त जिन रामपुर मै करी निज चाकरी,
सो धरि राखी विचारि हिये ।
फिरि पाय कै राज ढुढाहर को,
सु नऊ निधि के सुख आनि लिये ।।
भनि 'राम' कृपातैं भले ही भलै,
अमरेस के से जिनु दान दिये ।
हरि ऐक सुदामा निवाज्यो कहू,
नृप माधव केई सुदामा किये ।।१७४।।

सौरठा · दिये दिवाये दान, जस प्रगट्यो दसहू दिसनि ।
उवै जगत परिभान, राज कियो यम मुलक परि ।।१७५।।

आगै नृपति अनत, जतन किये आयो न गढ ।
रणथम्भौर महत, सौ माधव सहजै लह्यौ ।।१७६।।

कवित्त : असी मौज कढत सवाई माधवेस कर,
सुवरन-झर ज्यौ प्रवाह नदी नद के ।
मान-वस भान जयसाहि कै समान स्याम,
हरत गुमान निज दान सौ धनद के ।।
मोती अनहद के जराऊ साज सदके,
कर द्वार रदके अनाथ दीन दरदके ।
जोन जम्बूनदके तुरग करी-कदके,
मतग मति मद के कढत सदा सदके ।।१७७।।

सोरठा चढी फौज करि कोप, भिरि भागे जट्टा प्रबल ।
नई चढी यह वोप, कछवाहन की तेग को ।।१७८।।

लेकिन महाराजा पुरोहितो से अधिक प्रभावित थे । एक वार उन्होने अपना सारा राज्य ही श्याम तिवारी को सौंप दिया, जिसने जैनो पर अनेक जुल्म ढाये । मन्दिरो को लूटा गया और मूर्तियो को तोड डाला गया । लेकिन महाराजा ने सदैव जैनो का पक्ष लिया । जव उन्हे श्याम तिवारी द्वारा किये गये अत्याचारों का पता चला तो उसे उन्होने तत्काल अपने नगर से निकाल दिया और राज्य मे साम्प्रदायिक सद्भाव को पुन उत्पन्न किया । महापण्डित टोडरमल ने अपनी अधिकाश रचनायें इन्ही के शासन काल मे लिखी थी । इसी तरह महाकवि दौलतराम ने भी श्रीपाल चरित (स १८२२) पद्मपुराण (स० १८२३) एव आदिपुराण (स० १८२४) जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की थी । भाई रायमल्ल ने महाराजा माधोसिंह के शासनकाल का वर्णन करते हुए जो लिखा है, वह अत्यधिक महत्व है तथा उस समय शासन पर जैनो के प्रभाव का स्पष्ट द्योतक है—

"राजा का नाम माधवसिंह है । ताके राज विषै वर्तमान एते कुविसन दरवार की आज्ञातै न पाईए है । अर जैनी लोग का समूह वसै है ।

दरबार के मुतसद्दी सर्व जैनी है और साहूकार लोग सर्व जैनी है । जद्यपि और भी है परि गौणता रूप है मुख्यता रूप नाहि । छह, सात वा आठ वा दस हजार जैनी महाजना का घर पाइए है । ऐसा जैनी लोगो का समूह नग्र विषै नाहि और इहा के देश विषै सर्वत्र मुख्य पणै श्रावग लोग वसै हैं तातै एह नग्र वा देश वहोत निर्मल पवित्र है । तातै धर्मात्मा पुरुष वसने का स्थानक है । अबार तो सक्षात धर्मपुरी है ।"

४ महाराजा सवाई पृथ्वीसिंह . (१७६६–१७७७)

महाकवि दौलतराम के जीवन-काल मे ये चतुर्थ महाराजा थे । सवत् १८२४ चैत्र वदी ३ को ये जयपुर की गद्दी पर बैठे । कविवर बख्तराम ने बुद्धि विलास मे इनके सम्बन्ध मे निम्न पद्य लिखा है—

पृथ्वीस्यघ विख्यात जा दिन तै भूपति भऐ ।
मिटे सकल उतपात, सुखी भई सारी प्रजा ।।१८१।।

इनके शासनकाल के दो वर्ष पश्चात् ही जयपुर राज्य मे शासन पर एक वर्ग विशेष का जोर हो गया, जिसने मन्दिरो, मूर्तियो एव उनके अनुनायियो पर बहुत अन्याय बरसाये । कवि बख्तराम ने अपने बुद्धि विलास मे इस घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

फुनि भई छब्बीसा कै साल, मिने सकल द्विज लघु र विशाल ।
सबनि मतौ यह पक्कौ कियौ, सिव उठान फुनि दूसन दियो ।।१३०७।।

द्विजन आदि बहु मेल हजार, बिना हुकम पाये दरबार ।
दौरि देहुरा जिन लिय लूटि, मूरति विघन करी बहु फूटि ।।१३८।।

लेकिन जब महाराजा को इन अत्याचारो का पता लगा तो उन्होंने अपने राज्य मे फिर साम्प्रदायिक सद्भाव की घोषणा की और राज्य भर मे फिर से सब सम्प्रदाय के अनुयायी शान्ति पूर्वक रहने लगे ।

महाराजा के शासनकाल मे सवत् १८२६ मे सवाई माधोपुर मे विशाल पच कल्याणक महोत्सव हुआ, जिसमे हजारो मूर्तियो की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई । ऐसा विशाल समारोह सारे देश मे अपने ढग का अकेला था । सवत् १८२६ मे प्रतिष्ठापित सैकडो हजारो मूर्तिया आज भी उत्तरी भारत के अधिकाश मन्दिरो मे मिलती है । यह प्रतिष्ठा समारोह भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा सम्पन्न हुआ था ।

महाकवि दौलतराम ने साम्प्रदायिक अशान्ति रहने पर भी अपना साहित्य का निर्माण का कार्य यथावत रखा और हरिवंश पुराण (संवत् १८२६) जैसे महान् ग्रन्थ की भाषा टीका करने मे सफल हुए। महाकवि ने पृथ्वीसिंह के शासन काल की निम्न पंक्तियो मे प्रशंसा की है—

नगर सवाई जयपुरा, जहा बसे वहु न्यात।
राजा पृथिवीसिंह है, जो कछुवाहा जाति ॥३॥
शिरोभाग राजान मे, ढूंढाहड पति सोय।
ताके मंत्री श्रावका, और न्यातहु होय ॥४॥

५ महाराणा जगतसिंह

महाराणा जगतसिंह उदयपुर के महाराणा थे। महाकवि दौलतराम ने इनका जीवंधर चरित की प्रशस्ति मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

उदियापुर ता माहि, राजधानी अति सौहै।
जगतसिंह महराण, पाट सोसोदिन को है ॥
× × × ×
रहै राणा के पास, राण अति किरपा करई।
जानै नीकौ जाहि, भेद भाव जु नहि धरई ॥

महाराणा जगतसिंह और सवाई जयसिंह के परस्पर मधुर सम्बन्ध थे। यही नही, महाराजा सवाई माधोसिंह उदयपुर महाराणा की राजकुमारी के राजकुमार थे।

६ अमरपाल

'अमरपाल' का 'पुण्यास्रव कथाकोश' मे उल्लेख हुआ है। कवि ने इनकी 'परमागम को रस तिन चख्यो' के रूप मे प्रशंसा की है। महाकवि बनारसीदास के साथियो मे कौरपाल का नाम उल्लेखनीय है। 'सूक्तिमुक्तावली' का पद्यानुवाद बनारसीदास और कौरपाल ने मिलकर किया था।[1] 'अमरपाल'

---

१ नाम सूक्ति मुक्तावली, द्वाविंशति अधिकार।
शत श्लोक परमान सव, इति ग्रंथ विस्तार ॥१॥
कुंअरपाल बनारसी, मित्र जुगल इक चित्त।
तिनहिं ग्रंथ भाषा कियो, वहुविधि छन्द कवित्त ॥
सोलहसै इक्यानवें, ऋतु ग्रीष्म वैशाख।
सोमवार एकादशी, करन छत्र सित पाख ॥

सभवत कौरपाल के सुपौत्र अथवा वशज थे। और उन्ही के समान अध्यात्म सैली के प्रमुख सदस्य थे। अध्यात्म विषयक रुचि अमरपाल को वश-परम्परा से मिली होगी—ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

७ आनन्दराम

'आनन्दराम' महाकवि दौलतराम के पिता थे। सर्व प्रथम 'पुण्यास्रव कथाकोश' मे कवि ने आनन्दराम सुत लिखकर अपना परिचय दिया है। आनन्दराम बसवा (जयपुर) के रहने वाले थे। और वही रहकर सभवत अपना काम-धन्धा करते थे। आनन्दराम के पुत्रो तथा उनकी पत्नी के बारे मे कवि ने कोई परिचय नही दिया है। 'पुण्यास्रव कथाकोश' के अतिरिक्त कवि ने त्रेपन क्रियाकोश, जीवधर चरित, पद्मपुराण और हरिवशपुराण आदि सभी कृतियो मे 'आनन्दराम' का सादर उल्लेख किया है। जो उनकी अपने पिता के प्रति अनन्यतम भक्ति का प्रतीक है।

कर्णदास ·

ये उदयपुर के रहने वाले थे तथा महाकवि की शास्त्र-सभा के प्रमुख सदस्यो मे से थे। कवि से 'आध्यात्मबारहखडी' लिखवाने मे इनका विशेष योग रहा था।

९ खेतसिंह .

खेतसिह दि० जैन अग्रवाल मन्दिर, उदयपुर का टहलवा था, जो स्वय भी पण्डित था। महाकवि दौलतराम ने इनका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

> मण्डी धान की नगर माहि, जहा जैन मन्दिर महा।
>
> तहा टहलवा पडितो इक, खेतसिंह नामा कहा॥

१० चतुरभुज

ये भी आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख श्रोता थे। कवि ने इन्हे साधर्मी लिखा है। भगवद् भक्ति की ओर इनकी विशेष रुचि थी। आध्यात्मिक चर्चाओ मे भी ये बडी रुचि रखते थे। महाकवि दौलतराम को इन्ही से शास्त्र प्रवचन एव साहित्य निर्माण की प्रेरणा मिली थी। 'पुण्यास्रव कथाकोश' मे कवि ने इनका सादर स्मरण किया है।

११ चतुरभुज अग्रवाल .

एक चतुरभुज का हम पहले उल्लेख कर चुके है। ये दूसरे चतुरभुज हैं, जिन्होंने महाकवि को उदयपुर मे जीवधर चरित की रचना करने के लिए आग्रह किया था। ये अग्रवाल श्रावक थे तथा कालाडहरा (जयपुर) के रहने वाले थे। कवि के ये परम प्रशसको मे से थे। तथा उदयपुर के अग्रवाल मन्दिर मे चलने वाली शास्त्र-सभा के प्रमुख श्रोता थे। जब महाकवि ने बीस हजार श्लोक प्रमाण वाले 'महापुराण' का स्वाध्याय समाप्त किया तो इन्होने उनसे 'जीवधर चरित' को हिन्दी मे रचने का आग्रह किया और इसके लिये निम्न आधार प्रस्तुत किया—

देव भाष गभीर, ससकृत विरला जानै।
पडित करै बखान, अलप मति नाहि वखानै॥

जो ह्वै ग्र थ अनूप, देस भाषा कै माहो।
वाचै बहुत हि लोक, या महै सकै नाहो॥

सब गिरथ की वनि न आवै, तौ इह जीवधर तनी।
अवसि मेव करनी सुभाषा, पृथीराज भी इह भनी॥६॥
सुनी 'चतुर' मुख बात, सोहि दौलति उरधारी।

—इस प्रकार इन्ही के आग्रहवश दौलतराम ने 'जीवधर चरित' की रचना प्रारम्भ की और सवत् १८०५ मे उसे समाप्त कर हिन्दी को एक प्रबन्ध-काव्य भेंट किया।

१२ पण्डित चोमा

ये उदयपुर के रहने वाले थे। स्वय कवि ने इनको पडित की उपाधि लगाकर स्मरण किया है। ये कवि के विशेष प्रशसक थे तथा तत्वचर्चा मे मग्न रहा करते थे। अध्यात्मबारहखडी के निर्माण मे कवि को इनसे विशेष प्रेरणा मिली थी।

१३ पृथ्वीराज

पृथ्वीराज सभवत श्रावक थे तथा प० दौलतराम की शास्त्रसभा के ये नियमित श्रोता थे। जीवधर चरित की रचना करने मे इन्होने भी कवि से

आग्रह किया था, जिसका कवि ने ग्र थ-प्रशस्ति मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

सब गिरथ की वनि न आव, तौ इह जीवधर तनी ।
अवसिमेव करनी सुभाषा, प्रथीराज भी इह भनी ।।६।।

१४ फतेचन्द

आगरा नगर के अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्यों मे फतेचन्द का नाम भी उल्लेखनीय है । फतेचन्द अपने समय के प्रतिष्ठित श्रावक थे तथा शास्त्रो की चर्चा मे सदैव तल्लीन रहते थे । ये प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन मे जाते और नयी-नयी चर्चायें करके श्रोताओ की जिज्ञासा बढाते तथा विषय का स्पष्टीकरण करते थे । महाकवि दौलतराम ने अपने "पुण्यास्रव कथाकोश" मे—"फतेचन्द है रोचक नीके, चरचा करैं हरष धरि जीके" इन शब्दो मे इनकी प्रशसा की है । फतेचन्द आगरा निवासी थे अथवा कवि के समान ये भी बाहर से ही वहां आये थे—इस सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी नही मिलती, क्योकि कवि ने आगे "मिले आगरै कारन पाय" शब्द कहे हैं ।

१५ वखतावरदास

इनका कवि ने अध्यात्म बारहखडी की प्रशस्ति मे उल्लेख किया है । ये उनकी शास्त्र-सभा के प्रमुख सदस्य थे और कवि के विशेष सम्पर्क मे रहते थे । तत्वचर्चा एव धार्मिक-चिन्तन में विशेष योग देते थे । ये भी उदयपुर के रहने वाले थे ।

× × × ×

१६ बिहारीलाल

श्रावक बिहारीलाल आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे । प्रतिदिन शास्त्र सभा मे आते और ध्यान एव मनन पूर्वक शास्त्र श्रवण करते थे । विद्वानो को शास्त्र-प्रवचन की ओर प्रोत्साहित करते और स्वय भी उनकी सेवा मे सदैव तत्पर रहते । दौलतराम ने इनका 'पुण्यास्रव कथाकोश' की प्रशस्ति मे सादर स्मरण किया है और इनके सम्बन्ध मे निम्न पक्तियां लिखी हैं—

लाल बिहारो हू नित सुनै, जिन आगम को नीकै मुनै ।।

१७ बेलजी सेठ

इनका कवि ने अपनी दो कृतियो में उल्लेख किया है । ये हू वड जाति के श्रावक थे तथा सागवाडा के निवासी थे । शास्त्र श्रवण मे इनकी

गहरी रुचि थी। जीवन्धर चरित की रचना करने के लिए कवि से इन्होंने भी आग्रह किया था[1]। इसी तरह वसुनन्दि श्रावकाचार की टब्बा टीका करने के लिए उन्होंने विशेष आग्रह किया था।[2] जब तक दौलतराम उदयपुर मे रहे, तब तक वेलजी सेठ इनके विशेष प्रशसक रहे।

१८ भूधरदास .

'भूधरदास' महाकवि दौलतराम के समकालीन विद्वान् थे। पुण्यास्रवकथा कोश की प्रशस्ति मे सर्व प्रथम इन्हीं का स्मरण किया गया है। ये ही वे भूधरदास हैं, जिन्होंने 'पार्श्वपुराण' जैसे प्रबन्ध काव्य की रचना सवत् १७८९ मे समाप्त की थी। आगरा की अध्यात्म शैली के ये प्रमुख विद्वान् थे। कवि का सर्व प्रथम इन्ही से परिचय हुआ और इन्ही की प्रेरणा से वे साहित्य निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए। इनका विस्तृत परिचय प्रस्तावना ११ के पृष्ठ पर देखिए।

१९ मनोहरदास

जब महाकवि उदयपुर मे महाराजकुमार माधोसिह के मन्त्री बनकर गये तो उन्होंने वहां भी दि० जैन अग्रवाल मन्दिर मे शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया और आगरा के समान ही उसे भी अध्यात्म शैली का रूप दिया। इस शैली के प्रमुख सदस्यो मे मनोहरदास का नाम उल्लेखनीय है। मनोहरदास ने कवि से अध्यात्म बारहखडी को छन्दोबद्ध करने का विशेष आग्रह किया था, जिसका उल्लेख स्वय कवि ने उसकी प्रशस्ति में किया है।

---

१ सुनी चतुर मुख बात, सोहि दौलति उर धारी।
सेठ वेलजी सुघर, जाति हूमड हितकारी॥
सागवाड है वास, श्रवण की लगनि घरोरी।
सब साधरमी लोक, धरैं श्रद्धा श्रुत केरी॥
तिननैं आग्रह करि कही फुनि, दौलति कै मन मैं वसी।
सस्कृत तैं भाष कीनी, इहै कथा है नौर सी॥७॥

२ बोले सेठ वेलजी नाम, सुनि नृप मन्त्री दौलतिराम।
टब्बा होय जो गाथा तनौ, पुन्य उपजै जिसको घनौ॥

२० रतनचन्द दीवान

प० भवरलाल न्यायतीर्थ ने इनका दीवान काल सवत् १८१३ से १८२५ तक का माना है। महाकवि दौलतराम से इनका परिचय उनके अन्तिम दिनो में हुआ था, जिसका उल्लेख उन्होने अपने हरिवश पुराण की प्रशस्ति में "रतनचन्द दीवान एक, भूपत के परधान" के रूप में किया है। इस पक्ति के आधार पर इनका सवत् १८२५ क वाद भी दीवान होना जाहिर होता है।

दीवान रतनचन्द महापडित टोडरमल की शास्त्रसभा के विशेष श्रोताओ मे से थे और पडित जी का पूरा सम्मान करते थे। भाई रायमल्ल ने अपनी पत्रिका में उस समय के जिन दो दीवानो का उल्लेख किया है, उनमें एक रतनचन्द तथा दूसरे दीवान बालचन्द छावडा थे। इन्होने जयपुर में वधीचन्द जी के मन्दिर का निर्माण कराया था और मन्दिर निर्माण करने के पश्चात् उसे अपने बडे भाई के नाम से प्रसिद्ध किया था।

२१ भाई रायमल्ल

'भाई रायमल्ल' महाकवि दौलतराम के समकालीन श्रावक थे। धर्म एव साहित्य प्रचार की उत्कट प्रेरणा लेकर वे विद्वानो की सेवा में जाते थे और उनसे नव साहित्य निर्माण का सानुरोध निवेदन करते थे। जहा भी उन्हे विद्वान एव पण्डित दिखाई देते थे, वे उनके पास जाकर अपनी हार्दिक भावनाए प्रस्तुत करते।

उनका जन्म सवत् १७७० के लगभग माना जाता है। बचपन में ही इनके ज्ञान की पिपासा बढने लगी और २२ वर्ष की अवस्था में ही उन्होने साहिपुरा के विद्वान् श्रावक नीलपति साहूकार से धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया और उसके पश्चात् ही वे पूर्ण सयमित जीवन व्यतीत करने लगे एव ज्ञान-वृद्धि को ही एक मात्र अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। सवत् १८०५ के पूर्व ही वे महाकवि दौलतराम से मिलने उदयपुर पहुचे। वहा की आध्यात्मिक शैली एव वहा के श्रावको मे धर्म प्रचार को देखकर उन्हे अत्यधिक सन्तोष हुआ। इस घटना का भाई रायमल्ल ने अपने पत्र में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"उहा दौलतराम के निमित्त करि दस बीस साधर्मी व दस बीस बाया सहित शैली का वाणा वणि रह्या—ता अवलोकन करि साहिपुरा पाछा आया।

'महाकवि दौलतराम' जब जयपुर आ गये, तब उन्होने कवि को पद्मपुराण की भाषा करने के लिए विशेष आग्रह किया जिसका कवि ने उक्त ग्रन्थ प्रशस्ति मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट मे स्व-पर विवेक।
दयावत गुणवत सुजान, पर उपकारी परम निधान ।।
दौलतराम जु ताको मित्र, तासो भाष्यो वचन पवित्र।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रथ, तामे लोक शिखर को पथ ।।
भाषा रूप होय जो यह, बहुजन वाचै करि अति नेह।
ताके वचन हिये मै धार, भाषा कीनी मति अनुसार ।।

इसके पूर्व भाई रायमल्ल महापण्डित टोडरमल के घनिष्ट सम्पर्क मे आ चुके थे। उन्होने सिघाणा जाकर गोम्मटसार जैसे महान् एव विशाल ग्रथो की भाषा टीका करवाने मे सफलता प्राप्त की।[1]

महापण्डित टोडरमलजी भी भाई रायमल्ल से काफी प्रभावित थे। उन्होंने निम्न शब्दो मे उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है—

रायमल्ल साधर्मी एक, धर्म सधैय्या सहित विवेक।
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यहु उत्तम कारज सयो ।।

सवत् १८२१ मे जयपुर मे जो इन्द्रध्वज महोत्सव हुआ था, उसका भाई रायमल्ल ने अतीव सजीव वर्णन किया है। उससे तत्कालीन जयपुर नगर की साहित्यिक, सास्कृति एव धार्मिक गतिविधियो का भलीभाति परिचय मिलता है।

सवत् १८२७-२८ मे रायमल्ल मालवा देश गये हुए थे। वहा उन्होंने महाकवि दौलतराम द्वारा भाषा मे निबद्ध आदि पुराण एव पद्मपुराण का प्रवचन किया। दोनो ग्रन्थो को सुनकर सभी श्रावक हर्षित हो गये और उनमे स्वाध्याय की रुचि मे वृद्धि हुई। उसी समय वहा के श्रावको ने भाई रायमल्ल से दौलतराम के द्वारा हरिवश पुराण की भी टीका करने का निवेदन

---

१ शुभ दिन टीका प्रारम्भ हुई वे तो टीका बणावते गये। हम बाचते गये। बरस तीन में चारि ग्रथा की ६५००० टीका भई। पीछे जयपुर आए।

किया। जिससे इस महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय भी सुगमता से हो सके। भाई रायमल्ल ने वहीं से दौलतराम को पत्र भेजा, जिसमें सारी वस्तु स्थिति का दिग्दर्शन कराया। महाकवि को भाई रायमल्ल का आग्रह स्वीकार करना पड़ा। इस घटना को कवि ने हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में उल्लेख किया है।

२२ रिषभदास

'पुण्यास्रव कथाकोश' की रचना में तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करने की ओर सबसे अधिक प्रेरणा देने वालों में रिषभदास का नाम उल्लेखनीय है। इन्हीं के उपदेश से कवि मिथ्याचरण त्याग कर सम्यक आचरण की ओर प्रवृत्त हुए थे। महाकवि ने रिषभदास की प्रशंसा में निम्न पंक्तियां लिखी हैं—

> रिषभदास उपदेस सौं, हमैं भई परतीति।
> मिथ्यातम को त्यागि कैं, लगो धरम सौ प्रीति ॥२१॥
> रिषभदेव जयवन्त जग, सुखी होहु तसु दास।
> जिन हमको जिन मत विषैं, कीयो महा सुवास ॥२२॥

२३ सदानन्द

सदानन्द आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। कवि ने "सदानन्द है आनन्द मई, जिनमत की आशा तिह लही"—शब्दों में इनका स्मरण किया है।

२४ सीताराम-सवाईराम

ये दोनों महाकवि के समय के ग्रन्थ लेखक थे। महाकवि हरिवंश पुराण की भाषा-टीका बोलते गये थे और ये दोनों उसे लिखते गये थे। उसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

> सीताराम जु लेखका और सवाई राम।
> तिन पर लिखवायो जु यह, बहुत कथा को धाम ॥

२५ हरिदास

ये उदयपुर के रहने वाले थे। यहां पर कवि द्वारा सचालित शास्त्र-सभा के ये प्रमुख श्रोता थे तथा उनके विशेष सम्पर्क में रहते थे। कवि ने 'अध्यात्म बारहखड़ी' की प्रशस्ति में इनका विशेष रूप से स्मरण किया है।

२६ हेमराज

कवि ने हेमराज का 'पुण्यास्रव कथाकोश' मे स्मरण किया हैं और उनके सम्मान मे निम्न पद्य लिखा है—

हेमराज साधर्मी भलै, जिन बच मानि असुभ दल मले।
अध्यातम चरचा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै।।

हेमराज जैन धर्मावलम्वी थे जिनवाणी मे उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। तथा अध्यात्म-चर्चा मे सलग्न रहा करते थे।

आगरा के ही अन्य पाण्डे हेमराज सभवत उनसे भिन्न विद्वान् थे।

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल

जीवन्धर स्वामि चरित्र

रचनाकाल : सवत् १८०५ आषाढ़
शुक्ला २ गुरुवार

रचनास्थान : उदयपुर (राजस्थान)

दोहा

मगल पाठ—

वरधमान भगवान कौं, करि वदन मनलाय ।
जिनवानी कौं करि प्रणति, नमि गौतम के पाय ।।१।।

जीवधर मुनिराय की, कहौं कथा सुखदाय ।
बुद्धि पराक्रम रस भरी, सुनो भव्य मनलाय ।।२।।

राजा श्रेणिक द्वारा सुधर्माचार्य से प्रश्न—

एक दिवस श्रेणिक नृपति, समवसरण कै माहि ।
लखत फिरत है जिन विभव, जा सम जग मैं नाहि ।।३।।

लखि सोभा चउ वननि की, उपज्यो हर्ष अपार ।
वन असोक मैं वृक्ष तलि, देख्यो मुनि अविकार ।।४।।

ध्यानारूढ विसुद्ध जो, मगन महा परवीन ।
मानौ बैठो सिद्ध ही, निज स्वरूप लवलीन ।।५।।

देखि अवस्था धीर की, सफल करे नृप नैन ।
दे प्रदक्षणा करि प्रणति, धन्य धन्य कहि वैन ।।६।।

आय सुधर्माचार्य पै, पूछो प्रसन रसाल ।
स्वामी देख्यो साधु इक, रहित सकल जगजाल ।।७।।

अति सुरूप सुदर महा, जो' वन माहि महत ।
जीत्या वैठो मदनमद, निसचल निरमल सत ।।८।।

तन वच मन बुधि कै परै, पहुँच्यो मुनि वरवीर ।
परमतत्व परचै किया, तिष्ठै गुण गम्भीर ।।९।

कौन पुरिष ए सौ कहौ, करि किरपा गुरदेव ।
सुरनर मुनिवर खेचरा, करै तिहारो सेव ।।१०।।

तव सुधर्म गुरु बोलिया, सुनि हो श्रेणिक भूप।
कहौं कथा जोगिन्द्र की, अद्‌भुत अति रस रूप ।।११।।

चौपई

कथा का प्रारम्भ—

याही 'भरतक्षेत्र' कैं माहि, 'हेमांगद' इक देश वसाहि।
तहा 'राजपुर' नगर अनूप, राज करै सत्यधर भूप ।।१२।।

पटरानी 'विजया' गुण खानि, जा समान रति रूप न मानि।
मंत्री 'काष्टागारिक' एक, प्रोहित 'रुद्रदत्त' अविवेक ।।१३।।

महारानी विजया द्वारा स्वप्न दर्शन—

एक समै विजया पटरानि, देखे सुपना दुख सुखदानि।
आप उतारि धरचो मुझ सीस, मुकुट जु सत्यंधर धरणीस ।।१४।।

अष्ट हेम घटा जुत सोहि, चिह्न राज कौ मुखि इह होहि।
बहुरि लख्यो सुपिना मैं एक, तरु असोक आश्रित अविवेक ।।१५।।

तानै तरु काट्यो ता माहि, ऊग्यो बालवृक्ष सक नाहिं।
लह लहाट करतो तत्काल, अति सुदर रसरूप रसाल ।।१६।।

स्वप्न फल—

प्रात समै राजा ढिग जाय, सुपिन भेद भाखे समुझाय।
नृप बोले रानी सुनि बात, निश्चै होय हमारी घात ।।१७।।

अष्ट लाभ हैं तुमकौं सही, लहि हौ सुत राजा अतिमही।
सुनि करि नृप वियोग नृपनारि, भई सोक जुत अर्थ विचारि ।।१८।।

राजा सुभ वचननि तै पोषि, सोक रहित कीनी अति तोषि।
कैयक दिवस वीतिया अबै, रह्यो गर्भ रानी कौं तबै ।।१९।।

चय करि सुर्ग थकी सुरमहा, उयर मझार वास जिह लहा।
जैसे सरद विषै सर माहि, राज हस थिरता जु धराहि ।।२०।।

गंधोत्कट वणिक् के पुत्र का अभाव—

और सुनों इक बात रसाल, इक गंधोत्कट वणिक्क विसाल।
अति धनवत महा मतिवत, ताहि पुरि निवसै गुणवत ।।२१।।

एक दिवस वड भाग प्रभाव, देखे सीलगुप्त मुनिराव।
नाम 'मनोहर' वन है एक, तहाँ विराजे परम विवेक ।।२२।।

तीन ज्ञान धारक जगनाव, तिनकौ नमि पूछ्यौ निज भाव।
हे प्रभु, मेरे सुत वहु भये, अलप आय हूँ मरि मरि गये ।।२३।।

हुइहैं दीरघ आयु हु कोइ, मुनि बौले, अद्भुत सुत होइ।
मन धरि बात सेठ इक सुनौं, पाप पुन्य के नाटक सुनौं ।।२४।।

पुत्र प्राप्ति के लिये भविष्यवाणी—

पुत्र होयगौ तुम्हरै अवै, ततखिण मृत्यु होयगौ तवै।
तुम जै हो नाषन वन ठाम, तहां पाय हौ सुत गुणधाम ।।२५।।

महा मडलिक नृपपद धार, अति विद्यानिधि अति अविकार।
सकल त्यागि भव भाव महंत, तद्भव मुकत होई सो संत ।।२६।।

ये मुनि वचन सेठ कौं कहे, ते इक जखिणी नें उर गहे।
सुत अर माता कौ उपगार, करिवा गई भूप कै द्वार ।।२७।।

राज लोक मैं पहुँचौ सोइ, रानी की अति वल्लभ होय।
गरुड यत्र तै रक्षा करी, धर्मवत सेवा चित धरी ।।२८।।

एक समय मधुरितु परताप, फूले तरवर हर सताप।
काहू दिवस राज दरवार, प्रोहित आयो प्रात मझार ।।२९।।

राजा सत्यन्धर की उदासीनता—

आभूषण रहिता पटरानि, देखी विजया गुण की खानि।
पूछयो कहा विराजैं राव, मेरैं नृप दरसन कौ भाव ।।३०।।

रानी भाख्यो पोढे भूप, देख्यो जायन नृप को रूप।
ऐसे वैन सुने द्विज जवै, निमत विचारयो मन मैं तवै ।।३१।।

होय अमगल नृप कै सही, या माहै कछु ससै नही।
बाहुरि आयो मत्री गेह, प्रात समै ही करि अति नेह ॥३२॥

राज पुरोहित द्वारा काष्टागार को भडकाना—

प्रोहित स्वामी-धर्म तै गयौ, ले एकात कहत यो भयो।
काष्टागारिक सुनि मुझ बात, करि तू तुरत राव को घात ॥३३॥

तेरै राज होय तहकीक, मेरौ वचन न मानि अलीक।
सुनि करि मत्री प्रोहित वैन, कान मू दि नीचे करि नैन ॥३४॥

बोल्यो जोगि नही इह रीति, तुम भाषी सो बडी अनीति।
मैं जु करत हो वोछे काम, करि किरपा नरपति गुणधाम ॥३५॥

मो कौ आप बराबरि कियो, अति दुर्ल्लभ मत्री पद दियो।
तब बोल्यो प्रोहित जडमति, मेरो वचन भू ठ नहि रती ॥३६॥

नृप सुत करिहै तेरो अत, तातै जतन करौ वुधिवत।
अैसे कहि प्रोहित घर गयो, पाप प्रभाव रोग अति भयो ॥३७॥

दिन तीजै नर देही त्यागि, नरकि गयो द्विज अघपथ लागि।
ताके वचन धारि परधान, आप मरण तै डरचो अयान ॥३८॥

काष्टागार द्वारा विद्रोह—

नृप मारण की इच्छा धरी, धरम-करम की परिणति हरी।
द्वै सहस्र भट अपने किये, बहुत द्रव्य दे निज मै लिये ॥३९॥

घेरचो जाय राजदरबार, तब भूपति नै किये विचार।
गरुड यत्र करि रानी काढि, लरिवा आयो आप गुणाढि ॥४०॥

नृप दरसन करि कैयक भटा, काष्टागारिक दल तै फटा।
तिनकौं लारलेय नृप लरचो, भागौ मत्री मन मैं डरचो ॥४१॥

सत्यन्धर की मृत्यु—

तव मत्री सुत सेना लाय, मिल्यो तात सौं तुरतहि आय।
पिता पुत्र दोऊ इक होय, हत्यो जुद्ध मैं भूपति सोइ ॥४२॥

काष्टांगारिक राजा भयो, कृतघन स्वामि धर्म तें गयो ।
जैसें सठ करि सविष अहार, चाहै भूख तनों परिहार ।।४३।।

जिम कोई करि कपटी मित, चाहै जडमति भयो नचित ।
ज्यौं हिसक मत धरि खल होइ, चाहै सुगति सु कैसें होय ।।४४।।

तैसें मंत्री अधम अयान, लियो राज तजि धर्म विधान ।
स्वामि द्रोह सौ और न पाप, पापी लहैं नरक संताप ।।४५।।

विजया रानी की रक्षा—

गरुड यंत्र परि करि असवार, जखिणी ह्वै रानी की लार ।
लेय गई जु मसाणनि माहि, रोवत राखी मसै नाहि ।।४६।।

पुत्रोत्पत्ति—

करी रात्रि कौ रक्षा महा, तहा पुत्र नैं जनम जु लहा ।
महा मनोहर रूप रसाल, मानो ऊग्यो चंद्र विसाल ।।४७।।

रानी कैं नृप कौ जु वियोग, पति विछोह सौ और न सोग ।
तातैं उछव कछु नहि कियो, वारवार भरि आवै हियो ।।४८।।

तुरत उठायो जखिणी बाल, रतन दीप जोये ततकाल ।
देखी रानी विमनो इसी, दौ करि जरी लता ह्वै जिसी ।।४९।।

यक्षिणी द्वारा उद्‌बोधन—

तब जखिणि दीयो उपदेश, सुनि हे रानी धर्म जिनेस ।
सब संबंध विनश्वर जानि, सब थानक दुस्थानक मानि ।।५०।।

धन जोवन क्षण भंगुर देह, दीप सिखा सम जीतब एह ।
अर इह काय असुचि कौ ठाम, यासौ प्रीति तजै गुणधाम ।।५१।।

राज जगत मैं जानौ इसौ, चपला चमतकार ह्वै जिसौ ।
अविअ पुन्य वीमूढ मति देह, सब वस्तुनि स्यौं कियो सनेह ।।५२।।

ते सब जाहि अवसि इह रीति, दाह दायनी जग की प्रीति ।
छति वस्तु सौ रति नहि करै, अर अछती की चाह न धरै ।।५३।।

विनासीक जानै जग भाव, उत्तम जन कौ इहै स्वभाव।
सब व्यापक है जाको ज्ञान, सो सर्वज्ञ देव भगवान ॥५४॥

तानै सकल लखी परजाय, कबहू कोई थिर न रहाय।
काहू सौ करिवौ नही प्रीति, परद्यम तौ आछी इह रीति ॥५५॥

अर जौ कहूँ प्रीति हू करै, तौ इह वात हिये मैं धरै।
वरतमान अर ह्वैगौ जोहू, इन सौं प्रीति होय तौ होहु ॥५६॥

गई वस्तु सौ कैसी प्रीति, वृथा सोक धरिवौ सठ रीति।
कौन पुरिष अर कौनु जु नारि, जीव त्रिलिंग रहित अविकारि ॥५७॥

लखि झूठौ ससार चरित्र, कर्म जोग सबध विचित्र।
चरिम सरोरी सुत इह जानि, अति परतापी पूजि प्रवानि ॥५८॥

दुष्ट शत्रु कौं करै निकद, तो कौ उपजावे आनन्द।
करि सनॉन लै जोगि अहार, समाधान धरि मन मैं सार ॥५९॥

सोक किये भरतार न मिलै, काल पदारथ सब कौ गिलै।
भिन्न भिन्न सबकी गति जानि, कर्म भेदतै भेद प्रवानि ॥६०॥

इत्यादिक युक्तिनि समुझाय, सोक रहित कीनी सुत माय।
आप रही याही कै पासि, महा मित्रता रीति प्रकासि ॥६१॥

गधोत्कट को मृत पुत्र की प्राप्ति—

दुख मे कवहु न छाडे सग, इह मित्रनि कौ धर्म अभग।
अव आयो गधोत्कट जहा, मृतग पुत्र नाषै नर तहा ॥६२॥

नाषि आपनौ मिरतक वाल, जात हुतौ घर कौ ततकाल।
सुन्यौ तवै सुस्वर गभीर, रानी सुत कौ सेठ सुधीर ॥६३॥

जीवधर की प्राप्ति—

तवै चितारे मुनि के वैन, चित मैं पायो बहुतहि चैन।
जीवो जीवो वालक महा, पुण्य प्रभाव जनम इह लहा ॥६४॥

हाथ पसारे करि अति नेह, रानी जान्यौ श्रेष्ठी एह।
दियो पुत्र तव ताकै हाथ, जौ हूहै पिरथी को नाथ ॥६५॥

समुझायो फुनि या विधि ताहि, पालौ सेठ जतन करियाहि ।
काहू पासि भेद मति कहौ, इहै वात गाढी करि गहौ।।६६।।

यो ही करिहौं निहसदेह, यो कहि सेठ ले गयो गेह ।
सेठ नारिकौ नदा नाम, तासौ सेठ खिज्यो गुणधाम ।।६७।।

तो मै बुद्धि नही है मूलि, कहौ कहा लौ तेरी भूलि ।
विनु परखे ते जीवत मान, नाखन सौंप्यो पुत्र निधान ।।६८।।

दीरघ आय मनोहर काय, इहै पुत्र तोकौ सुखदाय ।
लै लै याहि प्रीति करि पालि, अर अब सौ सब भूलि जु टालि ।।६९।।

तव हरषी सेठानी महा, अति आदर तै वालक गहा ।
जीतै बाल भानु कौ एह, अपराजित वलवत अछेह ।।७०।।

पुत्रोत्सव

कियो सेठ उछाह अपार, जैसो पुत्र जनम व्योहार ।
करी क्रिया सूत्रोकति सवै, धरचो नाम जीवधर तवै ।।७१।।

धरचो तवै जीवधर नाम, जासौं सुधरै सवही काम ।
अब विजया जखिणी ले लार, गरुड यत्र पर ह्वै असवार ।।७२।।

गई पित्रवन तै ततकाल, दडकवन पहुँची गुणमाल ।
जहा परमती तापस रहैं, धरि आश्रम कदादिक गहैं ।।७३।।
तहा रही निज नाम छिपाय, पति वियोगनी दुरबलि काय ।
जखिणी शोक हरण कै हेत, रानि कौं उपदेशहि देत ।।७४।।

जे प्राचीन कथा सति रूप, ते याकै ढिग कहै अनूप ।
भाखै इह झूठौ ससार, साचो जिन मारग भवतार ।।७५।।

जिन जिन माहि आपदा परी, अर आपद मैं थिरता धरि ।
तिन तिन की परकासै बात, जिम सुनि या सहु सोक विलात ।।७६।।

जति अर श्रावक की जो धर्म, सो सहु प्रकट करै विनु भर्म ।
या विधि जीखणी दे उपदेस, करी धर्म जुत याहि विसेस ।।७७।।

छंद वेसरी

अब तुम सुनौं और इक वाता, जा विधि मिलै अष्ट ही भ्राता।
विजया की द्वै सौकि वखानी, सत्यधर की ल्हौरी रानी ॥७८॥

रति इक अवर अनग पताका, तिनकै पुण्य कर्म परिपाका।
मधुर वकुल द्वै पुत्र विसुद्धा, सुनि जिन धर्म भये प्रतिबुद्धा ॥७६॥

धारे श्रावक व्रत्त सवैही, जिनके धारे मोह दवैही।
अर सेनापति हौ राजा कै, नांम विजैमति सुभ मति ताकै ॥८०॥

होती जयावती सुभ नारी, ताकैं देवसेन सुत भारी।
अर प्रोहित हौ सागर नामा, हुती श्रीमती ताकै भामा ॥८१॥

जाके पुत्र महा परवीना, बुद्धिषेण विद्या लवलीना।
अर इक श्रेष्ठी हौ धनपाला, ताकै श्रीदत्ता सुभचाला ॥८२॥

हुती नारि ताके गुणवता, पुत्र भये वरदत्त कुलवता।
अर आगै मतिसागर नामा, मत्री हौ नृप कै अभिरामा ॥८३॥

ताकै नारि अनुपमा रूपा, जाकै मधुमुख पुत्र प्ररूपा।
मधुर वकुल अर ए चउ जोधा, मिलि हूये षट् सुभट प्रबोधा ॥८४॥

षट द्रव्यनि से भासै भाई, एक क्षेत्र वासी सुखदाई।
रहैं सेठ घरि कला विसुद्धी, जीवधर के सखा सुवुद्धी।
जीवधर जुत सातौं एही, सत्य सुरूपी परम सनेही ॥८५॥

सप्त तत्व ज्यौं लोक मझारे, सौहैं सातौं अति गुण भारे।
बालकेलि अति चाव कराए, महा परायण प्रीत धराए ॥८६॥

राति दिवस विछुरैं न कबैही, जिनकौं वहुतहि विरद फवैही।
वहुरि सेठ की नारि जु नवा, ताकै सुत नवाख्य अनदा ॥८७॥

भयो महाहितकारी वीरा, तब ए आठ भये अतिधीरा।
अष्ट गुणनि से आठौं एही, सब सुरूप सुन्दर सुचि देही ॥८८॥

बालक्रीडा एव तपस्वी से भेंट—

एक दिवस या पुर कै पास, कवर करत हे केलि विलास ।
लाख तनी गोली करि वाला, खेलत है रस रूप रसाला ।।८९।।
एक पुरिख तापस कै रूपा, जीवधर कौ देखि अनूपा ।
पूछन लागौ होय खुश्याला, केती दूर नगर है लाला ।।९०।।
बोले कवर सबै इह जानै, बालक चेलक पथ पिछानै ।
तू अति वृद्ध ज्ञान न तोकौ, किती दूर पुर पूछै मोकौ ।।९१।।
तरवर सरवर बाग विसाला, वहुरि देखिए खेलत वाला ।
तहाँ क्यो न लखिये पुरनीरा, ससै कहा राखिये वीरा ।।९२।।
ज्यौं लखि धूम अगनि हूँ जाने, त्यौ वालक लखि पुर परवानै ।
जीवधर के सुनिये वैना, तापस कीये नीचे नैना ।।९३।।
क्राति कवर की अर सब चेष्टा, देखी वृद्ध तापसी श्रेष्ठा ।
अर सुनि सुभसुर सु दर वानी, जानी वालक है अति ज्ञानी ।।९४।।
ऐसा[1] मान्य जगत जन नाही, परम पुरष प्रगटे भू माही ।
महाराज परकाज सुधारा, चिह्नन करि लखिए गुणभारा ।।९५।।
वहुरि वस परखन कौ एही, बोल्यो सुनिहो कवर सनेही ।
भोजन देहु भूख मुझ लागी, तू वड घर सुत है वडभागी ।।९६।।
तब दैनौ करि भोजन याकौ, लाये लाला कह्यो पिता कौ ।
भोजन तापस कौ दे ताता, तुम ही दाता जगत विख्याता ।।९७।।
विनै जुक्त सुनि सुत के वैना, गंधोतकट पायो अति चैना ।
धन्य भाग्य अपने लखि भाई, लियो कवर को कठ लगाई ।।९८।।
कह्यो सेठ सुनि प्राण अधारा, हम ए करि है लार अहारा ।
तुम पहली जीमौं निहचिता, जीवधर जीवनि के मिता ।।९९।।
करि सनान जीमैं हम पाछै, तापस कौसु जिमावै आछै ।
जनक वचन सुनि भोजन कारन, बैठे जीवधर जगतारन ।।१००।।

---

१ मूल पाठ एमा

सकल सखा जुत अद्‌भुत बालक, अति मन भावन पर दुख टालक ।
तहा वाल लीला करि लौटे, रोवत खिजत महागुण मोटे ।।१०१।।
उस्न अन्न हूँ जीमौं कैसे, मासौ बोले वचन जु अैसे ।
मा कौं अति विह्वल जव कीनी, तव तापस इह सिक्षा दीनी ।।१०२।।
तो कौं रोवौ जोगि न लाला, तू मगल मूरति गुणमाला ।
यद्यपि तेरी वय है छोटी, तौ पनि तो मैं मति अति मोटी ।।१०३।।
धीरज आदि गुणनि करि भाई, तू सव जग कौ सिखर दिखाई ।
सुनि तापस के वचन विवेकी, बोले आप भाव करि एकी ।।१०४।।
रोवे के गुन तुम नहि जानौ, मेरी बात हिये परवानौ ।
जाय सलेखम जो दुख दाई, नेत्र विमल ह्वै अति अधिकाई ।।१०५।।
तितै अहार हु सीतल होई, यामैं तौ औगुन नहि कोई ।
इन बचननि तापस सुख पायो, अर माता कौ हियो सिहायो ।।१०६।।
सकल सखा जुत पुत्र जिमाए, पाछै श्रेष्ठी कौ पधराए ।
तापस कौ अति तिरपत कीयो, आछी विधि तै भोजन दीयो ।।१०७।।

तव तापस वोल्यो सुभ वैना, कवर देखि हरखे मुझ नैना ।।१०८।।
देखि जोगि ता मोहित हूवो, भयो जाय नहि यातै जूवो ।
जौ तुम आज्ञा द्यो सुखदाता, तौ मैं याहि पढाऊ ताता ।।१०९।।
सूत्र समुद के जल तै याकी, धोऊं सनमति सुगुण भरा को ।
सुनि करि बोले सेठ प्रवीना, मैं हौं जिन मारग आधीना ।।११०।।
आनमती कौं सिर नहि नाऊ, आन धर्म कै पासि न जाऊ ।
नमसकार विन तू अभिमानी, दुख पावै मन माहि निदानी ।।१११।।
तव वोल्यो तापस सुभ वैना, वात हमारी सुनि दिढ जैना ।
नगर सिंहपुर कौ मैं भूपा, आरिजवर्मा नाँम परूपा ।।११२।।
वीरनदि पै मुनि व्रत लीयो, घृतिषेण सुतकौ नृप कीयो ।
सम्यक सहित मुनीसर व्रत्ता, पाले जगतै होय निवृत्ता ।।११३।।

पछै दाह जुर उपज्यो मोकौ, कहौ कहालौ वेदन तोकौ ।
तव मैं भयो भिष्ट आचारा, चारित रहित साग इह धारा ।।११४।।

जिनमत की श्रद्धा है मेरे, जैसी उर मैं श्रद्धा तेरे ।
धर्म भ्रात मोकौ तुम जानौ, परमत कौ सदेह न आनौं ।।११५।।

समाचार ताके सुनि सारा, परख्यो ताकौ वहु परकारा ।
तव पढिवा सौंप्यो सिवगामी, ताकै ढिग जीवधर स्वामी ।।११६।।

विद्याध्ययन—

अर सौपे याके सव मित्रा, जे सव वातनि माहि विचित्रा ।
सो समदिष्टी इनकौ लैकै, कीये पडित विद्या दैकै ।।११७।।

शस्त्र शास्त्र आदिक वहु विद्या, छदादिक सहु पद्यर गद्या ।
कुवर पढाए महा सुवुद्धी, थोडे दिन मे भये प्रवुद्धी ।।११८।।

ज्यौ दीपति करि सूरिज सोहे, त्यौ विद्या करिए मन मोहे ।
वालदसातै जोवन माहो, आये जीवधर सक नाही ।।११९।।

तव आरिजवर्मा सुखदाई, तजि परभेप हुवो मुनिराई ।
गहि निज ध्यान लह्यो शिवधामा, जहा विराजै केवल रामा ।।१२०।।

अव तुम सुनौ कंवर परतापा, नगर तनौ मेट्यो सतापा ।
महा सुभट वर वीर सु धीरा, पर जीवनि की हरइ जु पीरा ।।१२१।।

दोहा

कालकूट भील द्वारा नगर मे उत्पात—

कालकूट नामा कुधी, मुखिया भीलनि मांहि ।
पापी प्रगट्यो ता समैं, जाकै करुणा नाहि ।।१२२।।

अति कारौ अति कुटिल जो, वहै अकारौ सोइ ।
सुनते जाकौ नाम ही, धीरज धरै न कोइ ।।१२३।।

धनुष वान धारचा रहै, राती आखि विरूप ।
चढी है र भ्रकुटी सदा, रुद्र ध्यान कौ रूप ।।१२४।।

अश्व पूंछ से मूछ के, बाल कठोर महान ।
देख्यो जाय न दुष्टधी, दुरजन पाप निधान ॥१२५॥

आय परै जब गाव परि, थाभि सकै नहिं कोय ।
लूटै धन पिरथी तनौ, सक धरै नहि सोय ॥१२६॥

काल कूट विष सारिखौ, काल कूट इह भील ।
अति कुसील अति नीच नर, दीखै महा कुचील ॥१२७॥

जानि जेक इह तिमर ही, धरि मानुष की काय ।
रवि किरणनि करि डरि कुधी, विचरै नाम छिपाय ॥१२८॥

निरदय सेना जा कनै, सीगी नाद करत ।
अभख अहारी गौ हतक, करै पसुनिकौ अंत ॥१२९॥

ज्यौं तमाल वृक्षानि कौ, वाग होय अति स्याम ।
त्यौं कारौ भीलानि कौ, दल आयौ अघ धाम ॥१३०॥

डरे नगर के लोक सव, देखि भील कौ जोर ।
नही जानिये ह्वै कहा, उपज्यो घरि घरि सोर ॥१३१॥

घेरी गाय सुनन्द की, घेरे पसू अछेह ।
तव काष्टागारिक नृपति, करी घोषणा एह ॥१३२॥

जो लरि दुष्ट किरातसौ, गाय छुडावै कोय ।
सो मेरी गोदावरी, पुत्री कौ पति होय ॥१३३॥

जीवधर द्वारा उपद्रव का दमन—

इहै घोषणा सुनि सुधि, जीवधर सुकुमार ।
सात सखा जुत साह सुत, ले आयुध रण सार ॥१३४॥

चले तुरत भीलानि परि, ज्यौ तम परि रविधाम ।
इनकै पीछै भूप सुत, कालांगारिक नाम ॥१३५॥

सोऊ चाल्यो देखिवा, इन कौ युद्ध विसाल ।
लरे सेठ सुत भील सौ, जीवधर गुणमाल ॥१३६॥

आठो भाई एक ह्वै, परे भील दल माहि ।
वाण चलाये या विधी, जाकरि दुष्ट हटाहि ॥१३७॥

रण विद्या मैं निपुन ए, धनुरवेद के मूल ।
सर साधै अति सीघ्र ही, लखि न सकै प्रतिकूल ॥१३८॥

आवन दें नहि वान पर, आवत वांण कटाहि ।
चोट चुकावै पारकी, पर कौ चोट कराहि ॥१३९॥

रोकै अपने वॉन तै, पर के वान अनेक ।
जाय सचरै पर सिरै, धारै जुद्ध विवेक ॥१४०॥

या विधि रण करि रिपुनि कौं, जीति छुडाए जीव ।
जीवधर को लोक मे, प्रकटी कला अतीव ॥१४१॥

ज्यौ दुरनय कौं दलि महा, जय पावै नय सार ।
त्यौ दल मलि दल दुष्ट कौ, जीत्यो साह कुमार ॥१४२॥

वर्यो विजै लखिमी प्रगट, आयो नगर मझार ।
अपनै जस करि दस दिसा, पूरवतौ अविकार ॥१४३॥

कुंद पहुप अर हंस पख, जा सम उज्जल नाहि ।
ऐसौ उज्जल परम जस, प्रगट्यो पिरथी माहि ॥१४४॥

देह कवर कौ आव तरु, पहुप सूर पण रूप ।
कीरति भई सुगंधता, अद्भुत अतुल अनूप ॥१४५॥

लोक नेत्र भमरा भये, परे अत्रिप्ता होय ।
या विधि आये घर विषै, लोक वेढिया सोय ॥१४६॥

राज पुरोहित भूप पैं, कही वात परकासि ।
कवर लार ह्वै साह सुत, लरे वहुत गुणरासि ॥१४७॥

तव बुलाय नृप पूछिया, तुम आठनि मैं कौंन ।
जीत्यो भील गणानितै, सो भाखौ तजि मौन ॥१४८॥

नंदाढ्य के साथ गोदावरी का विवाह—

एक वाक्य बोले सबै, लखि जीवंधर सैन ।
जीत्यो है नंदाढ्य इह, जाके मृग से नैन ॥१४६॥
तव विवाह विधि करि नृपति, परणायो नदाढ्य ।
दीनी पुत्री आपनी, गोदावरी गुणाढ्य ॥१५०॥

इति श्री जीवंधरस्वामिचरित्रे महापुराणानुसारेण बालावबोध भाषाया बाललीला-विद्याभ्यास भील-विजय-गोविमोचन नदाढ्य-विवाह-प्ररूपणो नाम प्रथमोध्याय ॥१॥

द्वितीय अध्याय

अरिल छन्द

गगनवल्लभ के विद्याधर राजा रानी वर्णन—

सुनौं और इक बात महारस की भरी,
भरत क्षेत्र वैताढ्य श्रेणि दक्षण परी ।
अमर नगर सम नगर गगनवल्लभ जहा,
विद्याधर भूपाल गरूडवेगो तहा ॥१॥
भाइनि काढ्यो सोइ थान तैं भूपती,
तव तिन कियो विचार रहन को सुभमती ।
रतनदीप कै माहि नाम मनु जो दयो,
परवत देखि मनोगि चित्त हरषित भयो ॥२॥
जहा वसायो नगर नाम रमणीय जो,
तहा रह्यो खग भूप क्षाति रस पीय जो ।
ताके नारि स्वरूप धारिणी नाम है,
सुता नाम गधर्वदता गुणधाम है ॥३॥

एक दिवस गंधर्वदत्ता उपवासिया,
जाय देहुरै पूजि देव गुण रासिया।
आय पिता कौं दई आसिका सुभकरी,
देखी खेचरराय ताहि जोवन भरी ॥४॥

तब पूछयो परधान नाममति सागरा,
देहि कौंन कौ याहि कहौ गुण आगरा।
तब बोल्यो परधान सुनौं भूपाल जो,
मंदिरगिरहूँ गयो सकल दुख टालजी ॥५॥

नंदन वन कै माहि पूर्व दिसि देहुरा।
तहा वंदिया देव जगत के सेहुरा।
दरसन कारणि नाम विपुलमति चारणा,
आये हे जोगीस जगत के तारणा ॥६॥

करि प्रणाम मैं सुन्यो धर्म जिनराय कौ,
जगत पूजि जग पार करण सुखदाय कौ।
बहुरि पूछियो एह कहौ जग तातजी,
मेरे नृप की सुता रूप विख्यात जी ॥७॥

ताहि कौ पति ह्वै कौन तवै मुनि बोलिया,
मुझ परि होय दयाल अवधि द्रिग खोलिया।

गंधर्वदत्ता के विवाह की भविष्यवाणी—

भरत क्षेत्र कै माहि देस हेमांगदा,
तहा राजपुर नगर हरै सुरपुर मदा ॥८॥

सत्यधर भूपाल सत्य भूषण धरा,
ताकै विजया नाम महारानी परा।
तिन कौ सुत मतिवान वरै ताकौ सही,
कौन रीति करि सोहु धारि तू उर मही ॥९॥

तेरे नृप की सुता धारिहै धारणा,
जो नर वीन वजाय होय चित हारणा ।
सो बहु गुण कौ नाथ हाथ मेरौ गहै,
और जगत कै माहि मोहि कोइ न लहै ।।१०।।

सुनि परतज्ञा एह आय हैं बहु नरा,
वीन स्वयवर माहि भूचरा खेचरा ।
कोई ताहि रिझाय सकै नहि नागरा,
सत्यधर कौ पूत गुणनिकौं सागरा ।।११।।

वीन वजाय रिझाय ताहि परनै सही,
हौंनहार ए वात सकल मोसौं कही ।
ज्यो मो कौं समुझाय कह्यौ मुनिरायजी,
त्यो मैं तुम सौ कह्यो सु औसर पायजी ।।१२।।

सुनि मत्री के वैन, सोच करि भूपती,
वोल्यो सुनि मत्री सचित्त धरि सुभमति ।
ताकौ आवन इहा होइ किस रीति सौ,
कैसे सो गुणवान विवाहै प्रीति सौ ।।१३।।

प्रकट कह्यो परधान भूपपै यो तवै,
कह्यो मोहि सजोग साधुन यो सवै ।
नगर 'राजपुर' माहि महा धरमातमा,
'वृषभदास' इक सेठ दास परमातमा ।।१४।।

जाकै सुन्दर नारि नाम 'पद्मावती',
ताकै सुत 'जिनदत्त' सकल ए जिनमती ।
एक दिवस पुर पासि प्रीतिवर्द्धन वना,
तहाॅं विराजे आय केवली निजधना ।।१५।।

सागरसेन सु नाम ज्ञान के सागरा
त्रिभुवन गुरु जगदीस गुणनिके आगरा ।

पिता सहित जिनदत्त पूजिवा आइ है,
दे परदक्षणा जोरि हाथ सिरनाइ है ॥१६॥
गरुडवेग हू जहा जायगी दरसनै,
देखि तहा जिनदत्त भक्ति रस सरसनै ।
करिहै तासौ प्रीति धर्म अनुराग सौ,
जानै गौ इह प्रीति भई वड भाग सौ ॥१७॥

खग मैं वामैं भेद भाव रहि है नही,
हौनहार इह वात अलप दिन मै सही ।
ताही तै इह काज सरैगो व्याह कौ,
ताही कै पुर व्याह होय उछाह कौ ॥१८॥

ए मुनि भाषे वैन मोन खै नाथ जो,
ते मै तोसौ कहै सकल वड हाथ जी ।
मुनि भाषी सो भई प्रीति जिनदत्त सौं,
भेद रह्यो नहि कोई जैनमत रत्त सौं ॥१६॥
अव तू सुनि जा भाति मिलै सजोग जी,
वृषभदास वड भाग गह्यो मुनि जोग जी ।
जिनदत्तहि सव सौप साध गुणपाल पै,
दिक्षा लीनी देव सकल अघटाल पै ॥२०॥

वहुरि सुव्रता पासि त्यागि जग की मती,
भई अर्यका सेठ नारि पदमावती ।
जे कुलवती नारि पतिव्रत धारिणी,
तिनकी एई रीति कही सुभकारिणी ॥२१॥

अव जिनदत्त सपूत पाय पद तात कौ,
परकासै निति धर्म घातिया घातकौ ।
अतुल द्रिव्य कौ ईस सीस सेठानि कौ,
सिख्या दायक धीर सुगुर जेठानि कौ ॥२२॥

सो व्योपार निमित्त आइहै ह्या प्रभू,
रतन दीप कै माहि रतन वहुते विभू।
ताही तै इह काज सिद्ध ह्वै गौ महा,
मतिसागर ए बात भाषि चुप ह्वै रहा ॥२३॥
कैयक दिन मे तहा वणिकपति आइयो,
खुसी हुवो खग भूप ताहि उर लाइयो।
पाहुन गति अति करी रीति पाली सवै,
करि अति चित्त प्रसन्न वात भाषी तवै ॥२४॥
तेरै मेरै भेद रह्यो नाही भया,
तन मन जन घन धाम एक ह्वै परणया।
मेरी तेरी सुता दोय नाही गनी,
तेरै पुर परणाय व्याह कौ ह्वै घनी ॥२५॥
वीन वजाय रिझाय याहि जीतै जिकौ,
वर पुत्री कौ होय धीर निश्चै तिको।
ए सुनि खग के वैन सेठ जिनदत्त जो,
मित्राई प्रतिपाल धर्म मै रत्त जो ॥२६॥
निज पुत्री सम जानि विद्याधर की सुता,
लेय गयो निज नगर वहुत खग सजुता।
रच्यो स्वयवर गेह मनोहर वन महैं,
जाकी सोभा देखि देव अचिरज गहैं ॥२७॥
वहुत कला मे निपुन भूचरा खेचरा,
आये अति सुकुमार वीन मैं तत्परा।
प्रथमहि पूजा करी देव जिनराय की,
महा मगलाचार करण सुखदाय की ॥२८॥
जव आये सव सुघर स्वयवर साल मैं,
दीपै अधिकी कान्ति जिनो के भाल मैं।

तब आई गधर्वदता गुणरासिका,
लैके वीन प्रवीन महारस भासिका ॥२९॥

नाम सुघोषा वीन सुलक्षणा की, भरी,
ताके तारनि माहि सुवरसै रसभरी।

वीन वजाई शुद्ध जबै विद्याधरी,
हुते वीन परवीन तिनौ की सुधि हरी ॥३०॥

जानी इह गधर्व सूत्र की मूरती,
अर इह सब सगीत कला की सूरती।

जीति सक्यो नही कोई वीन मै नागरा,
सब कौ जीति सुजान हियै गुण आगरा ॥३१॥

जीवधर की वीणा प्रतियोगिता मे विजय—

तबै जीतिवा याहि धीर जीवधरा,
सकल कला परवीन वीन मैं तत्परा।

आये सभा मझार सार गुण के भरे,
पक्षपात सौ रहित तिनै साखी करे ॥३२॥

अधिकारीनि सौ कह्यौ देहु वीणा हमैं,
जिनके तार बजाय चित्त अति ही रमैं।

वीन च्यारि तिन ल्याय चतुर कै ढिग धरी,
बोल्यो तब परवीन वीन दूषण भरी ॥३३॥

केस रोम लव आदि इनौ मैं औगुना,
हम कौ दै ए वीन राग चाहौ सुना।

यो तिन सौ कहि सौपि दई अर बोलिया,
सुनि हो नभ-चर सुता गाठ उर खोलिया ॥३४॥

जो तू मछर रहित महागुण की भरी,
तौ तेरी दै वीन वजाऊ चित धरी।

तब अति होय प्रसन्न विद्याधर की सुता,
दई सुघोषा वीन सुद्ध तारनि जुता ।।३५।।
लैकै वीन प्रवीन वजाई रस भरी,
राग सूत्र अनुसारि लगाई रग झरी ।
काढे सुर गभीर गीत सजुत महा,
मधुर मनोहर रूप सुजस जाय न कहा ।।३६।।
सुनि करि चित्रत रहे भूचरा खेचरा,
मृग मोहित व्है महाराग मै चित धरा ।
या विद्या करि हुई कवर की कीरती,
जानी सब ससार राग मैं कीमती ।।।३७।
धन्य धन्य ए वचन तेहि पहुपा भये,
तिन करि पूजे कुमर पडितनि सिर नये ।
हरयो गयो सुनि वीन चित्त कवरी तनौं,
लगे काम के वान भेदियो उर घनौं ।।३८।।
माला घाली कठि कवर कै खग सुता,
सीलवति गुणवति रूप करि अद्भुता ।
कहा कहा नहि होय पुण्य परभाव सौं,
तातै धारौ पुण्य भव्य सुभ भाव सौं ।।३९।।
जैसे दिन मै दीप दिपै नहि भानु पै,
तैसै पर नर भये कवर वहु जान पै ।
भासै अति दैदीपमान निज लोक जे,
जीवधर परताप धरै गुन थोक जे ।।४०।।
थकित भई लख रूप लाल की खेचरी,
एक रूप इक भाव होय करि ढिग खरी ।
वीन सुघोषा हेत पाइयो सुभपती,
करी वीन की तवै खुसी व्है थुति अती।।४१।।

सत्य सु घोषा नाम वीन तेरी सही,
वडे वसतै भई आप तोकों चही ।
मधुरा अति रस तार चित्त की हारिणी,
कीयो कवर मिलाप तैं हि सुखकारिणी ॥४२॥

अति प्रवीन तू सखी निपुन दूती महा,
तेरेंई परसाद गुणपती पति लहा ।
ह्या ती अतिरस भयो सुनों अब सज्जनां,
काष्टागारिक पूत सु प्रेरयो दुरजना ॥४३॥

हरणे की गधर्ववता की जडमती,
काष्टागारिक नाम कियो उद्यम अती ।
तब कुमर इह जानि भये असवार जी,
जय गिर गज परि आप सावता लारजी ॥४४॥

तबै तात गधर्वदत्ता की नभचरा,
गरुडवेग सुभ नाम वुद्धि मैं ततपरा ।
जाय परयो मध्यस्थ दुहँ कै सुभमती,
अति उपाय परवीन विद्याधर कौ पती ॥४५॥

गधर्वदत्ता के साथ जीवधर का विवाह—

शात कियो दल शत्रु रारि मेटी सबै,
अति उछाह तै व्याह हुवो पुर मैं तबै ।
जीवधर को देय पुत्रिका आपनी,
हूवो अति निहचित खेचरा को धनी ॥४६॥

दोहा

रहै कवारी कन्यका, व्याह जोगि घर माहि ।
मात तात कौ दूसरी, ता सम चिंता नाहि ॥४७॥

पुत्री परणावन समा, नहि निचिंतता और।
तातै भयो निचिंत अति, गरुडवेग खग मौर ॥४८॥
जीवंधर अर खग सुता, वढ्यो परसपर नेह।
जिनके रस सिंगार कौ, कहत न आवै छेह ॥४९॥
रति स्वरूप रामा इहै, काम स्वरूप कुमार।
वय किसौर नागर नवल, क्यौ न बढै सिंगार ॥५०॥
सम स्वरूप सम गुन सबै, सम विद्या सम सील।
क्यौ न परसपर प्रीति ह्वै, चित्त एक द्वय डील ॥५१॥

इति गंधर्वदत्ता विवाह निरूपणम् ॥

चौपई

अब आई मधु[1] रितु अति चाव, मदन वरधनी मोद सु भाव।
फूले तर वाजी सुभ वाय, प्रगटी परिमल अति अधिकाय ॥५२॥
वन सुर मलय नाम विख्यात, नंदन वन की तुल्य लखात।
तहा चले नरपति अति रंग, चाले नगर लोक नृप संग ॥५३॥
निज निज संपति प्रगट दिखाय, सुख कारणि ले बहु समुदाय।
अति उछव उपज्यो वन माहि, जाहि लखें सव सोक नसाहि ॥५४॥
इक वैश्रवणदत्त है साह, जाकै इनि दिनि बहुत उछाह।
चूतमंजरी जाकै नारि, रूपवती पति आज्ञाकारि ॥५५॥
ताकै पुत्री सुरमंजरी, अति सुंदर चतुराई भरी।
स्याम लता दासी जा कनै, सुरमंजरि के गुण अति भनै ॥५६॥
लै आई चंद्रोदय नाम, चूरणवास महा गुण धाम।
जहा लखै बहुजन समुदाय, तहा वचन यो भाषै जाय ॥५७॥
या सम और न कोई सुगंध, जाकौ पाय भमर ह्वै अंध।
यो कहि इत उत फिरती फिरै, सब गुण मैं मुझ स्वामिनि सिरै ॥५८॥

---

१ मूलपाठ रति

बहुरि कुमारदत्त इक साह, विमला नारि तनो जो नाह।
गुणमाला ताकै सुभ सुता, रूपवती बहु गुण करि जुता ।।५९।।
ताकै दासी विद्युतलता, मानवती चतुराई रता ।
सोहू लाई चूरणवास, सूर्योदय इह नाम प्रकास ।।६०।।
इह हू पंडित सभा मझार, करै प्रसंसा विविध प्रकार।
हमरे चूरण वास समान, सुर्ग विषै हू नाहि बखान ।।६१।।
सकल कला परवीन सु जानि, मुझ स्वामिनि सी और न मानि।
भले भौंह अर मृग से नैन, यो दासी बोलै मधु वैन ।।६२।।
भमर भमैया परित हकीक, मेरे वचन न होय अलीक।
स्याम लता अर विद्युत लता, निज निज स्वामिनि गुण मैं रता ।।६३।।

सुगंध परीक्षा—

दोऊ दासी मच्छर भरी, करै विवाद सभा मैं खरी ।
हुते सुगंध परखवा घने, वने ठने अतिरस के सने ।।६४।।
कोऊ परखि सक्यो न सुगंध, दोऊ दीसै एक अवध।
अधिक वोछ जान्यो नहि परै, तब जीवधर परख जु करै ।।६५।।
परखि दुहूँ कौं वोले लाल, चंद्रोदय है गंध विसाल ।
जौ नहि मानौ मेरे वैन, तो देखौ परतखि निज नैन ।।६६।।
यो कहि मसलि हाथ तै सही, दोऊ चूरण डारे मही ।
चंद्रोदय परि भ्रमर जु आय, लागे अति सुगंध परभाय ।।६७।।
तवै हुते जेते मतिवान, तिननै बात करी परमान ।
सवनि सिराह्यो चंद्रोदयो, तव विवाद सारौ मिटि गयो ।।६८।।
सदा करत ही विद्यावाद, दोऊ धारत ही उदमाद ।
तब ते वाद दुहुनि कौ गयो, दोऊ कन्या अति हित भयो ।।६९।।
गंध परखवा दूजौ नाहि, जीवधर सौ धरणी माहि ।
यौ कहि सवनि प्रसंसा करी, इन की देह गुणनिसौं भरी ।।७०।।

ताही समै और इक वात, भई सोहु धारौ विख्यात ।
निज इच्छा सौ कूकर एक, क्रीडा करत हुतौ अविवेक ।।७१।।

जीवधर द्वारा कुत्ते को णमोकार मन्त्र सुनाना—

दुष्ट वालका लार जु परे, लकरी लोढी मारणा करे ।
दौरयौ कूकर अति ही डरयो, औंडे द्रह माही गिरि परयो ।।७२।।
प्राण छोंडि वे सनमुख भयो, सुनिकैं कुमर कढाई हि लयो ।
जान्यो इह जीवैं नहि कोइ, याकौ मरण अवारहि होय ।।७२।।
तव ताके काननि मैं आप, दियो मन्त्र जो नासै पाप ।
नमोकार सौ मन्त्र न और, इहै मन्त्र सव श्रुतकौ मौर ।।७३।।

यक्ष मित्रता—

धारयो कूकर मन मैं एह, सुभ भावनि सौ त्यागी देह ।
यक्ष सुदरसन नामा भयो, महामन्त्र तै अघ सव गयो ।।७४।।
चन्द्रोदय गिर विषै निवास, देवनि कौं पूरव भवभास ।
जक्ष चितारि सकल परसग, आयो कवर पासि अतिरग ।।७५।।
कहत भयो हो सुगुर सुजान, तुव परसाद लह्यो सुभ थान ।
पाई अति विभूति मैं नाथ, करि किरपा तै पकरयो हाथ ।।७६।।
दीयो महामन्त्र तैं सही, जाकी महिमा जाय न कही ।
याहि देखि सव अचिरज रहे, नमोकार के गुन सरदहे ।।७७।।
जक्ष क्रितज्ञ महा मतिवान, करी कवर की पूज विधान ।
दिये दिव्य आभरण अमोल, अर मित्राई कही अडोल ।।७८।।
करी वीनती वारवार, मोहि गनौ अपनौं निरधार ।
अव सौ हरख-विषादनि माहि, सदा चितारौ ससै नाहि ।।७६।।
नमसकार करि अपने धाम, गयो जक्ष गावत गुण ग्राम ।
विनु कारण जे पर उपगार, करै तैहि पावै फलसार ।।८०।।

राजा के हाथी का विगडना—

वन की क्रीडा करि नर नारि, आवत है सव नगर मझारि ।
नृप कौ हसती गधमहत, असनिवेग नामा बलवत ॥८१॥
विझक्यो लोक सवद तें महा, अति ही मद करि छकि जो रहा ।
काहू पै न निवारयो जाय, बहु प्रचड अति दीरघ काय ॥८२॥

सुरमजरी को बचाना—

सुरमजरि के रथ परि गजा, दौरयो खौके सक ही भजा ।
जीवधर तव आये धाय, जिनतैं गोप्रि न कोइ उपाय ॥८३॥
गज शिक्षा ग्रथनि परवान, गज सौं लागे क्रीड सुजान ।
करे परिभ्रम तीसर दोय, तामैं हस्ती सिथिल जु होय ॥८४।
इन कौं खेद होई नहि कवै, इन तै सुर नर खग तिर दवै ।
वसि करि हाथी वाध्यो ठान, सावत सकल कला कै जान ॥८५॥
गज ग्र थनि मैं लखि विज्ञान, करन लगे सव सुजस वखान ।
आये कवर आपनै गेह, सुर मजरि कै उपज्यो नेह ॥८६॥

जीवधर के प्रति सुरमजरी की आसक्ति—

लखि करि जीवंधर कौ रूप, भई कन्यका काम सुरूप ।
ताकी चेष्टा लखि करि जवै, मात तात नै जानी सवै ॥८७॥
या पुत्री कै निश्चै इहै, जीवधर मेरौ कर गहै ।
तब वैश्रवणदत्त करि नेह, आयो गधोतकट कै गेह ॥
करी वीनती वे कर जोरि, वहुरि आपनौ सीस निहोरि ॥८८॥
सुनौं सेठपति मेरे वैन, जीवधर जग कौं सुख दैन ।
इह तेरौ सुत अद्भुत रूप, मेरै परणै अतुल अनूप ॥८९॥

सुरमजरी के साथ विवाह—

करि तू मोहि आपनो दास, तू किरपानिधि सुगुण निवास ।
तब बोले गधोतकट साह, या सम और जु कौन उछाह ॥९०॥

करी प्रमाण वात मैं एह, मेरौ सुत परणै तुव गेह।
तव वैश्रवणदत्त निज सुता, सुर मजरि जो वहुगुण जुता ।।९१।।

तुरत हि भलौ महूरत पाय, जीवधर कू दी परणाय ।।९२।।
भरी रग रस सुर मजरी, प्रीतम सौं अति प्रीति जु धरी।
सूरापन अर अति सोभाग, जीवधर सौ नहि बडभाग ।।९३।।

काष्टागार का षडयत्र—

करै निरतर कीरति सवै, काष्ठागारिक कोप्यो तवै ।
मेरौ हस्ती गध अनूप, असनिवेग हाथिनि कौ भूप ।।९४।।
पीस्यो ताहि मान मद् हरचो, कुधी वनिक सुत गरवै भरचो ।
कुल की रीति तजी मति अध, सीख्यो राजनि के परबध ।।९५।।
वनियनिकी इह रीति अनादि, हरडै सू ठि आवला आदि।
वेचै और मोलि ले सही, इन तौ रीति और ही गही ।।९६।।
करै जाति माफिक जो काम, तासौं रहै तात कौ नाम।
इह कुल खपरण कुवुधि सुरूप, मन मैं भयो रहै सुतभूप ।।९६।।
तव तेब्योपुर कौ रछिपाल, चडदड नामा कुटवाल ।
तासौ भाष्यो काष्टागारि, जीवधर कौ तुरतहि मारि ।।९८।।
है इह वहुत कुचेष्टा भरचो, धन जोवन छकि वहु वहि परचो।
इह नृप आज्ञा सुनि कुटवाल, लेकरि अपने सुभट विसाल ।।९९।।
सजि वजि दौरचो काल समान, जीवधर परि लेवा प्रान।
तवै साह सुत सुनि इह वात, लेकरि साथि भ्रात निज सात ।।१००।।
आठौ भाई आयुध भरे, करि साहस तलरव परिपरे।
तुरत भगाय दियो कुटवाल, जीते जीवधर गुणमाल ।।१०१।।
वहुरि कोप करि काष्टागारि, भेजे वहुत सुभट रण कारि।
तव दयाल ह्वै मन मैं एह, धारी जीवधर गुण गेह ।।१०२।।

कहा रक ए मौसौ लरैं, मेरे बाणनि तै सव मरैं ।
पनि हिंसा सौ और न पाप, जीवनि कौ करणौ न सताप ।।१०३।।

तातै कोइ उपाय विचारि, मेटौ पाप कारिणी रारि ।
करौ शात या सठ कौ सही, तव सुमरयो उर मैं सुर वही ।।१०४।।

जो अपनौं निज मित्र विसाल, जक्ष सुदरसन प्रीति रसाल ।
आयो तुरत महा वलवान, सकल रारि मेटी मतिवान ।।१०५।।

अर जवि करी वीनती एह, एक वार लखिए मुझ गेह ।

जीवधर का चन्द्रोदय पर्वत पर जाना—

चद्रोदय परवत सुभथान, तुव परसाद लह्यो गुणवान ।।१०६।।

तव जीवधर जग सुखदैन, जखि कौ सुख देवे मृगनैन ।
ताकी वात करी परमान, तव वह लेय गयो निज थान ।।१०७।।

नाम विजैगिर हस्ति चढाय, इह मित्रनि की रीति कहाय ।
मित्रनि कौ पधरावै गेह, दे सुभ वस्तु करै अति नेह ।।१०८।।

किनही नहि जानी इह वात, मात तात अर सातौ भ्रात ।
करन लगे आकुलता महा, विना कवर नहि थिरता गहा ।।१०९।।

जैसे नव पल्लव लहि वाय, अति ही हौहि चलाचल काय ।
तैसे निज जन अथिर जु भये, हमहि जताये विनु कित गये ।।११०।।

तव गधर्वदता खग सुता, अति विद्या निधि अति गुण जुता ।
निमत ज्ञान तैं जानी वात, कवरै नाही कछू उतपात ।।१११।।

रही निराकुल चित्त सयान, समुझाये निज जनहित वान ।
कवर लाभ ले आवै सही, या माहै कछु ससै नही ।।११२।।

कबहू मैं जानौ गति कोय, रहौ हरप सौ थिर चित होय ।
तव थाके गनि वचन-प्रमान, सवनि लह्यो सतोष निधान ।।११३।।

जीवधर जखि कै घरि जाय, कैयक दिवस रहे सुखपाय ।
वहुरि भयो चलिवे कौ चित्त, अभिप्राय तव जान्यौं मित्त ।।११४।।

दोहा

काम मुद्रिका प्राप्ति—

काम रूपिणी मुद्रिका, महाक्रांति कौ रूप ।
सकल अरथ साधन करी, दीनी अतुल अनूप ।।११५।।
अर उतारि परवत थकी, किती दूरि पहुँचाय ।
जानी इनकौ भै नही, लाभ हौहि अधिकाय ।।११६।।
तवै सीख करि घरि गयो, जक्ष प्रीति प्रतिपाल ।
शील कवर के चरण जुग, जीवनि के दुखटाल ।।११७।।

इति श्री जीवधर स्वामी चरित्रे महापुराणानुसारेण बालावबोध भाषाया, 'वीन प्रवीनता', 'गंधर्वदत्ता विवाह', 'सुगंध परीक्षा', स्वानोपगार यक्षमित्रता, गंधहस्ती विजय, सुरमंजरी विवाह, कीर्ति प्रकाश, काष्टांगारिक कोपरणोद्यम, यक्षागमन युद्धप्रशांति यक्षग्रहेगमन काममुद्रिकालाभ निरूपणो नाम द्वितीयोध्यायः ।।

तीसरा अध्याय

छन्द-चालि

अव चले कवर गुण पूरा, पहुचे केतीयक दूरा ।
इक नगर नाम 'चंद्राभा', दीखै जाकी वहु आभा ।।१।।
अति धौले उजले गेहा, व्है सरद चादनी जेहा ।
राजा 'धनपति' पुर स्वामी, सो लोकपाल सौ नामी ।।२।।

पदमोत्तमा को विषधर द्वारा डसना—

अर है 'तिलोतमा' रानी, राजा कै रूप निधानी ।
शुभ 'पदम' उत्तमा पुत्ती, अति सुंदर वहुगुण जुत्ती ।।३।।
इक दिवस गई ही वन मैं, क्रीडा कौ चाव जु मन मैं ।
सो डसी दुष्ट विषधरनै, जव सोच हुवो नरवर नै ।।४।।

तव करी घोषणा पुर मैं, इह निश्चै धारी उर मैं ।
जो याके प्राण उवारै, मणि मत्रौषध परकारे ॥५॥

ताकौ एही परणाऊ, अर सीस आपनौ नाऊ ।
फुनि आधौ राज हु ताकौ, जो नर विष टारै याकौ ॥६॥

तव सव आये विष झारा, लखि लोभ वहुत परकारा ।
पनि विष नहि हुवा दूरा, पचि पचि हारे गुन पूरा ॥७॥

तव नृप कै उपज्यौ सौका, दौरे सव दिसि अति लोका ।
ढू ढन विषहारी नर कौ, लखि जीवधर ततपर कौ ॥८॥

पूछन लागी तुम माही, विषहर विद्या अकनाही ।
देखे अति आकुल लोका, तव वोले तत्व विलोका ॥९॥

कछु इक विद्या है भाई, पूरण विद्या जिनराई ।
सुनि सवद महा सतुष्टा, ले गये जानि गुन पुष्टा ॥१०॥

इह नाग मत्र मैं निपुना, सव ही वातनि मे सुगुना ।
तौपनि चित यौ वह जक्षा, जो राखै अपनी पक्षा ॥११॥

नृप पुत्री निरविष कीनी, जिन मत्र औषदी दीनी ।
तव राजा हुवो राजी, जानी ए नर परकाजी ॥१२॥

अति क्राति पराक्रमधारो, लक्षण करि लखिए भारी ।
ए राजवस वरवीरा, निश्चै नर नायक धीरा ॥१३॥

तव निज पुत्री परणाई, अर वहुतहि प्रीति जनाई ।
फुनि अरध राज हू दीयो, निज वचन सत्य नृप कीयो ॥१४॥

कन्या के भ्रात वतीसा, अति ही सज्जन गुण ईसा ।
सब लौकपाल प्रमुखाजे, जीवधर सौ सुमुषाजे ॥१५॥

विनयादिक गुण लखि तिनमैं, जीवधर राजी मन मैं ।
कैयक दिन क्रीड़ा कोनी, सबही कौ साता दीनी ॥१६॥

अब ह्यां तैं आगैं चाले, अतुली बल निसि कौ पाले।
काहू सौं नाहि जतायो, एकाकी गमन करायो ॥१७॥

कितीयक कोसनि पहुँचे जी, जीवघर श्रीधर से जी।
इक खेम नगर सुर पुर सौ, सब ही वातनि अति सरसौ ॥१८॥

इक वन है पुर तैं नीरा, देखत ही मेटैं पीरा।
जो नाम मनौरम कहिया, अति सु दर तरवर सहिया ॥१९॥

सहस्रकूट चैत्यालय के कपाट खुलना—

तामैं जिन मंदिर सोहै, सो सहस सिखर मन मोहै।
लखि जीवधर जिन गेहा, कीयो वदन धरि नेहा ॥२०॥

दे तीन प्रदक्षरण भाई, दरसन कौ भाव धराई।
देवल के पाट विसाला, ते खुले सहज ततकाला ॥२१॥

हूवो दरसन जिनवर कौ, भवतारन त्रिभुवन गुर कौ।
जिन सतवन करनै लागौ, अति भक्त शात रस पागौ ॥२२॥

फूल्यो चपा इक जब ही, दरसातौ राग अधिक ही।
कोकिल चुप होय रहे हे, मधु रति कौ विरह गहे हे ॥२३॥

ते लगे बोलनें मधुरा, सुनि करि राजी ह्वै सुघरा।
अर जिन मदिर कै निकटा, इक सरवर अति ही सुघटा ॥२४॥

सो निर्मल जल करि पूरौ, हूवो आतप चक चूरौ।
मानौ फटिक द्रव भरियो, गुन निपुन नरनि कौ करियौ ॥२५॥

तामैं फूले ततकाला, कमलादिक गध विसाला।
अति भमर करैं गु जारा, लखता ह्वै हरष अपारा ॥२६॥

करिकैं जु सनान विसुद्धी, ले आठौ द्रव्य सुबुद्धी।
जिनवर कौ पूजि सुग्यानी, थुति करन लगौ गुरण खानी ॥२७॥

ता खेमनगर कौ वासी, इक समुद सेठ जस रासी।
जाकै निरवृति सेठानी, ताकै पुत्री मतिवानी ॥२८॥

सो खेमसुंदरी नामा, मानों लखिमी गुण धामा।
इक दिन विनयधर स्वामी, मुनि ज्ञान ध्यान विसरामी ।।२९।।

तिनकौं कन्या के ताता, पूछ्यो लखि कैं अति ग्याता।
मेरी पुत्री कुन परनैं, तव महा पुरुष यों वरनैं ।।३०।।

चपी फूलैं ततकाला, ह्वैं कोकिल सवद रसाला ।
फुनि पाट जिनालय उघरैं, जय जय रव जव वह उचरैं ।।३१।।

अर फूलैं कमल सुवासा, ए सकल चिह्न जे भासा।
जाके आवे तें होवैं, जा करि दुखिया दुख खोवैं ।।३२।।

सो व्याहै तेरी कन्या, इक पुरख धारिणी धन्या ।
तव ही ते राखे पुरुषा, जे करैं सुवर की परखा ।।३३।।

ते रहत हुते या वन मैं, लखि सुनर खुशी ह्वैं मन मैं।
तिन जाय ततक्षण भाई, श्रेष्ठी कौं दई वधाई ।।३४।।

जे चिह्न वताए गुरनैं, ते प्रगटे पाय चतुरनैं ।
तव सुनि सुख पायो अति ही, सो जामैं श्री जिनपति ही ।।३५।।

वहु दई वधाई तिनकौं, अर चल्यो मनोरम वन कौं।
नहि मुनि के वचन अलीका, इह जानी जिन तह कीका ।।३६।।

क्षेमसुन्दरी विवाह—

लखि जीवधर को रूपा, जान्यो इह पुरष अनूपा।
तव निज पुत्री परणाई, अर हित की रीति जनाई ।।३७।।

फुनि करी वीनती एका, सुनिये चितधारि विवेका।
इक नगर राजपुर नामा, 'सत्यधर' नृप गुण धामा ।।३८।।

हम कियो तहा निवासा, सो नगर वहुत सुखरासा।
न्हा चैन वहुत ही पायो, सत्यधर राज सुहायो ।।३९।।

इह धनुष वहुरि ए वाना, हमसौं करि नेह निधाना।
दीने सत्यधर नृप नैं, तिनसौं अति प्रीति जु अपनैं ।।४८।।

एहै तुम लायक नीकें, राखौ दीनें नृप तीके।
तव राखे जीवधर नै, अति जुद्ध कला ततपर नै ।।४१।।

ह्वै अति सतुष्ट सुज्ञानी, कैयक दिन थिरता ठानी।
सुख सौं निवसै ससुरा कै, अति सज्जन भाव भराकै ।।४२।।

कवहुक विद्याधर पुत्री, अति विद्या रूप विचित्री।
गधर्वदत्ता गुणधामा, जाकै पति ही विसरामा ।।४३।।

करि प्रिय दरसन कौ भावा, आई विद्या परभावा ।
लखि वल्लभकौ वह सुखिया, हरखित कीनी निज अखिया ।।४४।।

विनु मिले गई फुनि घर कौं, आवौ न जतायो वरकौ।
घर हूं तै परछन आई, ह्या हू तै परछन जाई ।।४५।।

जानौ ए हित की रीती, जिन कै उर प्रेम प्रतीती।
देखै प्रीतम उछाहा, नहि और वसत की चाहा ।।४६।।

शुभ खेमसुदरी गेहा, तिष्टे सुदर धरि नेहा ।
कैयक दिन रहि गुणवता, जीवधर जगत महता ।।४७।।

काहू कौं नाहि जनायो, पर द्रव्य नही अपनायो।
ले धनुष वान वरवीरा, निसि कौं उठि चाले धीरा ।।४८।।

है सुजन नाम इक देसा, हेमाभ नगर सुभ भेसा।
दृढ़मित्र नाम है राजा, जाकै निति उत्तम काजा ।।४९।।

नलिना रानी गुणधामा, पुत्री हेमाभा नामा ।
जाके जनमत ही निमती, यो कहत भयो इक सुमती ।।५०।।

है नाम मनोहर वन जो, अति हरै लोक कौ मन जो।
ता भीतरि वहुत विसाला, आयुध अभ्यास जु साला ।।५१।।

अति करै धनुष अभ्यासा, वहु सस्त्र सूत्र अभ्यासा।
जा धनुषधार कौ वाह्यो, अति सीघ्र हि जाय उमाह्यो ।।५२।।

सर लागि निसानैं भाई, ततषिण पाछौ ही आई।
जा ही मारग करि जावै, ताही मारग फुनि आवैं ॥५३॥

इह हाथ तनी जु सफाई, सर अति हि वेग देजाई।
लखि फरसि करैं नहि छेदा, है वाहन ही मैं भेदा ॥५४॥

इह होय वल्लभा ताकी, सर श्रुत मैं अति मति जाकी।
है वाला अति हि सुलपणा, द्वै कुलकी कीरति रखणा ॥५५॥

या विधि की सुनि आदेसा, आये सावत विसेसा।
धरि हेमाभा को आसा, लागे करने अभ्यासा ॥५६॥

जीवधर हू व्हा आये, लखि रूप सवनि सुख पाये।
जब बोले धनुप धरैया, तुम हू कछु जानौ भैया ॥५७॥

सुनि कहत भये सुकुमारा, हम हू कछु इक इह धारा।
तब कह्यो सवनि सरवाहौ, जौ तुमरैं चित्त उमाहौ ॥५८॥

वेधौ निसानौ वीरा, उर सक न आनौ धीरा।
तव धनुष चढाय चलायो, सर कवर सवनि दरसायो ॥५९॥

सो लागि निसानैं भाई, ततषिण पाछौ ही आई।
तव तहा हुते नृप लोका, तिन सब व्रत्तात विलोका ॥६०॥

ते दौरि गये नृप पासे, हरपित व्है सवद प्रकासे।
सुनि करि नृप वहु सुख पायो, तिनकौ दारिद्र नसायो ॥६१॥

निज पुत्री जीवधर कौं, परणाई गुण ततपर कौ।
अति उछव कीयो राजा, भेले करि सर्व समाजा ॥६२॥

राजा कै पुत्र सपुत्ता, सब ही सज्जन गुण जुत्ता।
है वडे कवर 'गुणमित्रा', दूजे 'वहुमित्र' विचित्रा ॥६३॥

तीजे कौ नाम 'सुमित्रा', चौथे 'धनमित्र' पवित्रा।
इत्यादि अनेक कुमारा, 'जीवधर' सौ हित धारा ॥६४॥

जिन सवकौं कला समस्ता, जीवधर दई प्रसस्ता ।
तिन ही के पुण्य प्रभावा, तिष्टे गुन निपुन सुभावा ।।६५।।
ए जाही ठौहर जावै, ता ठौहर सव सुख पावै ।
अव सुनौं वात इक भाई, गधर्वदत्ता सुखदाई ।।६६।।
जीवधर कौ लखि जावै, सवसौ परछन्न हि आवै ।
इछा ह्वै मन की जवही, देखै निज पति कौ तवही ।।६७।।
नहि पति कौ ह्वै सुधि याकी, नहि और लखै गति ताकी ।
अति सीघ्र हि घर तै आवै, अर तुरत हि पाछी जावै ।।६८।।
इक दिवस लखी देवर नै, नदाढ्य महामति घर नै ।
तव पूछयो तू कित जावै, काहू कौं नाहि जतावै ।।६९।।
हम हू कौं ले चलि भाई, जा दिसि तू गमन कराई ।
तव वोली खेचर पुत्ती, अति विद्या गुण करि जुत्ती ।।७०।।
जौ तेरी इछा वीरा, सौ सुनि तू इक चित धीरा ।
जा दिसि कौ मेरौ गमना, ता दिसि तू पहुँचै सुमना ।।७१।।
देवाधिष्ठित गुणधामा, इह समर तरगणि नामा ।
सज्या है अति सुखदाई, या परि विधि पूर्वक भाई ।७२।।
निज वड भाई कौ ध्याये, करि सयन तहा तू जाये ।
इह सुनि भावज के वचना, ताही विधि कीनी रचना ।।७३।।
सज्या परि सूते निसि कौ, चित धरि भाई की दिसि कौं ।
तव ही जु भोगिनी तुरता, विद्या अति सकतिनि जुगता ।।७४।।
सज्या जुत भाई पासे, ले गई महा गुण रासे ।
ज़व मिले परसपर दोऊ, इक जिन मारग के जोऊ ।।७५।।
सुख पूछि उभै हितरासी, हूये इक ठौहर वासी ।
प्यारे भाईनि कौ मिलिवौ, या सम नहि मन कौ खिलिवौ ।।७६।।
अव याही देस मझारा, इक नगर सोभपुर भारा ।
दृढमित्र भूपाल पवित्रा, ताकै निज भ्रात सुमित्रा ।।७७।।

जाकै 'वसुंधरा' रानी, पुत्री 'श्रीचद्रा' जानी ।
सो नवयोवन वुद्धिवती, अति रूपवती गुणवती ।।७८।।
इक दिन निज घर आगन मैं, देखे क्रीडत हित मन मै ।
द्वै जाति परेवा भारी, जिन मै इक नर, इक नारी ।।७९।।
तिनकौ लखि मुरछा आई, जाती समरण उपजाई ।
तव हुती सहेली पासे, ते भई सकल दुख रासे ।।८०।।
चदन खस सीतल पानी, विभनादि भवकि मतिवानी ।
संवोधि ताहि सुभ वचना, मेटी मुरछा की रचना ।।८१।।
सुनि मात-पिता सुखदाई, कन्या की सखी वुलाई ।
जो अलक सु दरी नामा, अति चातुरता गुणधामा ।।८२।।
है तिलक चद्रिका कीया, पुत्री अति चेतन हीया ।
तासौ भाष्यो हे सुमती, तो ढिग उपजै नहि कुमती ।।८३।।
पुत्री की प्राण समाना, है सखी महा गुणवाना ।
करि मुरछा कौ उपचारा, तू पूछि सकल परकारा ।।८४।।
तव इह कन्या पै जाये, पूछन लागी समुझाये ।
तू देवागन सी कन्या, कहि मुरछा कारण धन्या ।।८५।।
जव श्रीचद्रा यो बोली, तो मा है बुद्धि अतोली ।
इह नाहि कछू कहवा की, अति परछन वात हिया की ।।८६।।
तौ पनि मैं तो सौ भाषौ, कछु भाव छिपाव न राखौ ।
प्राणनि सौ अधिकी प्यारी, तू कवहु न मोसौ न्यारी ।।८७।।
करि समाधान चित सुनि तू, मेरे मुख की सव धुनि तू ।
निज पूरव भव सवधा, भाषौ सव ही परवधा ।।८८।।
मुहि उपज्यो जाती समरा, उर धरि तू विवरा हमरा ।
ऐसै कहि वात सुनाई, करि भिन्न भिन्न समझाई ।।८९।।
इह सुनि व्रत्तात जु जव ही, उर मैं अवधारचो सव ही ।
तव ही जु गई तजि ता पै, कन्या के मात पिता पै ।।९०।।

जा विधि कन्या पै सुनियो, ताही विधि इन पै भनियो।
या भवथी पहली तीजै, भव सौ ले वात सुनीजै ।।९१।।

सोरठा

पूर्व भव वर्णन—

हेमागद इक देश, जहा राजपुर नगर है।
वणिक वस सु भेस, रतन तेज निवसै तहा ।।९२।।

जाकै नारि सुजान, नाम रतनमाला सही।
ताकै रूप निधान, नाम अनुपमा पुत्रिका ।।९३।।

गुण करि अनुपम होई, नही नाम अनुपमा ।
रमा उमा सी सोई, सुन्दर सनमति धारिणी ।।९४।।

ताही नगर मझार, कनकतेज इक सेठ है ।
जाकै रूप अपार, नारि चन्द्रमाला कही ।।९५।।

ताकै सुवरण तेज, पुत्र दुरमतीं दुरविधो।
जाकै सुभ मैं जेज, असुभ काज मैं सीघ्रता ।।९६।।

पहली जानै नाहि, औगुन सुवरण तेज के ।
रतनतेज मन माहि, तवै अनुपमा की सही ।।९७।।

करी हुती सुभ जानि, सेठ सगाई मूढ सौ।
पछै लक्षण पहचानि, करी अवज्ञा सठतनी ।।९८।।

मणि व्योहारी साह, ताही पुरि गुणमित्र जो ।
करिकै अधिक उछाह, ताहि दई परणाय सो ।।९९।।

लहि पतिसौ सजोग, अलप काल ही सुख भयो।
तुरत हि हुवो वियोग, जल जात्रा चाल्यो पति ।।१००।।

रतन विसाहन काज, वैठौ साह जिहाज मैं।
वूडो वडी जिहाज, परी आय जल भवण मै ।।१०१।।

मरण धनी कौ जानि, दुखित भई अति अनुपमा ।
महा रूप की खानि, पति वूडन ठौहर गई ॥१०२॥

वूडी जल मै जाय, महा मोह परभाव तैं ।
भव भव अति दुखदाय, मोह समान न शत्रु को ॥१०३॥

नगर राजपुर माहि, गधोतकट सुभ सेठ है ।
जा मैं औगुन नाहि, गुन अनेक करि जो भरयो ॥१०४॥

ताके गेह मझार, जनम परेवा कौ लह्यो ।
दोऊ अति हित धार, इक नर इक नारी भई ॥१०५॥

पवनवेग सुभ नाम, भयो कवूतर गुण मितर ।
रतिवेगा अभिराम, भई परेवी अनुपमा ॥१०६॥

गधोतकट के पूत, सीखै गुरु पै अक्षरा ।
ए धारै सव सूत, दोऊ तिन पै जाय कैं ॥१०७॥

श्रावक व्रत्त प्रवीन, सेठ सेठनी सुभमती ।
जिन आज्ञा आधीन, तिनकौं लखिए सुरक्रिया ॥१०८॥

भये शाति मति धीर, पषी ही के जनम मै ।
नदी गग कौ नीर, तिसौ ऊजलौ मन भयो ॥१०९॥

अति हि परसपर नेह, धर्म सनेही अव भये ।
वसैं सेठ कैं गेह, परम प्रीति के पात्र ए ॥११०॥

सुवरणतेज अयान, वैर भाव धरि जुगल सौं ।
मूवो पाप निधान, हूवो दुष्ट विलाव सो ॥१११॥

कवहुक इनकौं देखि, महा निरदई पापधी ।
अपनौं औसर पेखि, पकरी रतिवेग सुभा ॥११२॥

ग्रसैं राहु ज्यौं क्रूर, चन्द्रकला कौं दुष्ट धी ।
त्यौं विलाव अघपूर, ग्रसी कबूतर की तिया ॥११३॥

तवै कवूतर जान, अति ही भिरयो विलाव तैं ।
नख पक्षादिक घात, करिकै नारि छुडाय ली ॥११४॥

पकरै पापी याहि, ते तैलोक जु आइया ।
अति हि डरायो ताहि, गयो भागि अति नीच जो ॥११५॥
इक दिनि पापिनि पासि, रची पार ध्यावन विषै ।
तामैं सो गुणरासि, आय गयो परवी व्रती ॥११६॥
रतिवेगा धरि आय, दरसाइ लिखि चूं च सौं ।
तजी कवूतर काय, निश्चै धारी सज्जना ॥११७॥
करी दिलासा साह, सवनि सतोषी पक्षणी ।
अति उपज्यो पतिदाह, त्यागे प्राण कवूतरी ॥११८॥
सो जिनधर्म प्रभाव, श्रीचन्द्रा पुत्री भई ।
तुम्हरै सरल सुभाव, महा गुणवती मतिवती ॥११९॥
आजि क्रीडते देखि, सुघट परेवा दपती ।
निज पूरव भव पेखि, पाय मूरछा भै परी ॥१२०॥
मो सौं निह सदेह, भासी परभव वारता ।
मैं तुम आगै एह, कही जथारथ नाथ जी ॥१२१॥
अलक सु दरी वैन, सुनि करि चिंतातुर भये ।
क्यौं लहिये सुख दैन, पूरव भव पति पुत्रिकौ ॥१२२॥
ता विनु या भव माहि, नहि परनै इह सुभमती ।
या कै वाछा नाहि, और पुरष की चित्त मैं ॥१२३॥
पूरव भव व्रत्तात, श्रीचन्द्रा कौ पट्ट मैं ।
लिखवायो अति कात, तवै सुमित्र सु वुद्धि नै ॥१२४॥
रगतेज इक नाम, नटवर गनि मै अधिक जो ।
मदन लता एक धाम, नटनी नृत्य प्रवीन सो ॥१२५॥
तिन कौ करि सनमान, दानादिक वहु देय कै ।
सौंप्यो पट्ट निधान, सव व्योरौ समुजाय कै ॥१२६॥
नट नटनी पट लेय, पुहपक वन मैं जाय कै ।
फैलायो चित देय, नाचन लागे रीति सौं ॥१२७॥

देखैं लोक अनेक, देखि देखि व्हैं अति खुसी।
ताहि वन मैं एक, महा मुनीसुर दिढवृती ॥१२८॥
हुते ध्यान लवलीन, ज्ञान परायण पूरणा।
मन उनमन तन खीन, नाम समाधिसुगुप्त जे ॥१२९॥
अर ताही वन माहि, क्रीडा कौ कन्या पिता।
आयो हो सक नाहि, तहा भेटिया मुनिवरा ॥१३०॥
तीन प्रदक्षरा देय, करि वंदन कर जोरि कैं।
जा करि शिव सुखलेय, सो जिन धर्म सुन्यो सुधी ॥१३१॥
सुरग मुकति दातार, धर्म समान न वस्तु को।
जे आतम ग्यातार, ते हो धर्म धरै सही ॥१३२॥
सुनि कै धर्म सुरूप, पूछ्यो राय सुमित्र नै।
हे मुनिगण के भूप, कहौ क्रिपा करि श्री गुरु ॥१३३॥
पूरव भव भरतार, मेरी पुत्री कौ प्रभू।
कौन सु खेत्र मझार, तिष्टै कौंन दसा धरचा ॥१३४॥
तव वोले मुनिराय, अवधि ज्ञान लोचन महा।
सुनौ सुचित्त लगाय, नगर नाम हेमाभपुर ॥१३५॥
तिष्ठै तहा अनूप, वणिक पुत्र सावत जो।
जोवन-वत सुरुप, लखिमीधर भाई नषै ॥१३६॥

छंदवड दोहा

ए सुनि मुनि के वचन विसाला, हरष्यो राव सुमित्रा।
ताही क्षण पुत्री कौ लै करि, चाल्यो बुद्धि विचित्रा ॥१३७॥
संग लये नट नटिनी दोऊ, लये परिग्रह लारा।
पहुच्यो पुर हेमाभ सितावी, जहा पुत्रि भरतारा ॥१३८॥
जाय तहां अर नृत्य नचायो, लोक देखनै आया।
लोक लार नदाढि हु आया, पट मैं चित्त लगाया ॥१३९॥

उपज्यो जाती समरण याकौं, तुरत मूरछा होई।
सीत क्रिया करि सज्जन लोका, महा मूरछा खोई ।।१४०।।

पूछ्यो जीवधर नैं कारण, मुरछा कौ भाई सौं।
तव नवाढ़ि पट्ट कौ लिखियो, भाष्यो मुखदाई सौ ।।१४१।।

सो गुणमित्र अनुपमा भरता, पाय कवूतर काया।
भयो रावरौ ल्हौरो भाई, कुल श्रावक कै आया ।।१४२।।

सुनि करि खुसी भयौ जीवधर, थप्यो व्याह सुखदेवा।
प्रथम हि मगल कारण महती, रची जिनेसुर सेवा ।।१४३।।

सुनौ और व्रत्तात जु भाई, हरि विक्रम इक नामा।
भीलनि कौ नायक नामी जो, जाकै वहुत हि गामा ।।१४४।।

सो भाइनि के भै तै भागौ, छाडी धरा पुरानी।
आय कपिढ्य नाम वन माही, थिरता अपनी ठानी ।।१४५।।

नाम दिसागिर परवत ऊपरि, वनगिर नगर वसायो।
जाकै नारि सुदरी नामा, सुत वनराज कहायो ।।१४६।।

हरि विक्रम कै प्यारे चाकर, वट वृक्ष जु अर मित्रा।
चित्रसेन फुनि सैधव नामा, वहुरि अरिंजय चित्रा ।।१४७।।

शत्रु मर्दनो अति वलवता, ए छह मुखिया गनिया।
अर वनराज पुत्र कै दोई, सखा एक चित भनिया ।।१४८।।

लोहजघ अर है श्रीषेण जु, एक दिवस ए दोई।
नगर सोभपुर गये देखिवा, श्रीचद्रा तिन जोई ।।१४९।।
खेलत ही उपवन कै माहि, वहुत सहैली सगा।
लखि कै याकौ रूप अनूपम, देविनि कौ सौ अगा ।।१५०।।
करत प्रससा जात हुते ए, दाटे घोट कपाला।
ते घोरनि कौं पानी पावन, आये नदी नाला ।।१५१।।
दोऊ भील रोस धरि मन मैं, गये आपनै थानै।
ही वात वनराज कनारै, हरि विक्रम नहि जानै ।।१५२।।

सुंदर रूप क्रातिधर कन्या, हम दीखी अद्भूता ।
ऐसी और नही मडल मैं, सुनि किरातपति पूता ॥१५३॥

भयो महा कामातुर पापी, जो अन्याय सुरूपा ।
सुवरण तेज वहुरि मजारा, सो वनराज परूपा ॥१५४॥

पूरव जनम हुती जु सगाई, अब अति आतुर हूवो ।
काहू भाति ताहि तुम ल्यावो, दीयो तिनको दूवो ॥१५५॥

ते अति जोर चोर अघपूरा, लोहजघ श्रीषेण ।
ले करिकैं यक सावत लारैं, आये कन्या लेण ॥१५६॥

कन्या की सोवनसाला जो, ताहि ठोक करि पापी ।
लाय सुरग सोवती कन्या, लेय गये सतापी ॥१५७॥

डारि गये इक लिखि कैं पत्रा, नाम करण को एई ।
पहुँचे तुरत भीलपति सुतपै, राति विषैं ही तेई ॥१५८॥

ससि रेखा जुत सनि मगल ज्यौ, श्रीचद्रा जुत दोऊ ।
लखि करि खुसी भयो वनपति सुत, जोवन छक मति खोऊ ॥१५९॥

प्रात समै वह वाच्यो पत्रा, जानी भीला लीनी ।
किंनर मित्तर यक्ष मित्र नैं, तवै चढाई कीनी ॥१६०॥

कन्या के भाई ए जोधा, पठए राव सुमित्रा ।
तुरत जाय भीलन सौं लरिवा, लागे जुद्ध विचित्रा ॥१६१॥

लोहजघ अर श्रीषेण जु द्वै, लरे वहुत कवरनिसौं ।
हारि गये राजा के पुत्रा, जीति सके नहि इनिसौं ॥१६२॥

श्रीचद्रा ले मौन जु वैठो, विनु दरसन जिनराई ।
अर विनु देखे नगर सोभपुर, भोजन करौं न काई ॥१६३॥

लखि कैं याको विरकत चित्ता, वनपति सुत वहु दूती ।
तेडी अर तिनपै यो भाषी, याहि करो रस गूती ॥१६४॥

तव वै आई श्रीचद्रा ढिग, साम भेद वहु जानैं ।
वोलि महासती सौ पापिनि, तू क्यो चिता आनैं ॥१६५॥

करि जु सनान पहरि सुभ कपरा, धारि विभूषण बाई।
फूल माल लै चरचि सुगधा, लै भोजन सुखदाई ॥१६६॥
करहु सुखनि की वात जु हमसौं, मिनख जनम फल एई।
भोग विमुख मति नरभव खोवैं, नव जोवन सुखसेई ॥१६७॥
जौंनि अनेक विषै इह दुल्लुभ, ताहू मैं इह रूपा।
नाही वर वनराज सारिषौ, पुरुषनि माहि अनूपा ॥१६८॥
करि अगीकृत वनपति सुत कौ, चादिनि ज्यौं चदर कौ।
आदि चक्रिकौं राजभूति ज्यौं, सची जथा इ दर कौ ॥१६९॥
जैसैं भूपरण कलप वृक्ष सौं, लपटि रहैं आभरणा।
त्यौं वनराज कवर सौं सु दरि, तन मन एकीकरणा ॥१७०॥
लहि करि चिंतामरिण कौं सुवुधी, कौंन हाथ सौं डारै।
इत्यादिक दूतिनि के वचना, कन्या का मन धारै ॥१७१॥
जब वनराज दिखायो भै अति, सुनी तात ए वातै।
तव तिह दाख्यो पुत्र कुवुद्धी, करै न अधिकी यातै ॥१७२॥
अपनी पुत्रिनि भेली राखी, दीनी अधिक दिलासा।
इह तौ मौन लिया ही वैठी, परमेसुर की दासा ॥१७३॥
अव द्रिढमित्र सुमित्र आदि सहु, भेले व्है करि भाई।
सजि वजि सेन लेय कै अधिकी, आये तुरत चलाई ॥१७४॥
घेरयो नगर भील कौ सीघ्रहि, भील हु लरिवा आया।
जव जीवधर जीव दयाला, मन मैं मता उपाया ॥१७५॥
नास होयगौ वहु जीवनि कौ, या मैं कछु न भलाई।
तव चितयो मन माहि सुदरसन, जक्ष महा सुख दाई ॥१७६॥
यादि करत ही आयो जक्षा, ल्याय कन्यका दीनी।
कारिज सिद्धि कियो मित्रनि कौं, किसहि न पीरा कीनी ॥१७७॥
पाप भीत जे प्रानी ज्ञानी, करि उपाय रण टारै।
काहू कौन सतावै कवही, सहजै काम सुधारै ॥१७८॥

काज सिद्धि करि रारि मेटि करि, चले आपनैं थाना ।
फुनि वनराज दुष्ट बुद्धि श्रु ति, आयो लरन अयाना ।।१७९।।

तब ताकौ अति नीच पुरिष लखि, पकर्यो जक्ष सयानैं ।
सौंप्यो जीवंधर कौं तब तिन, दीयो बदी खानैं ।।१८०।।

सेना रम्य सरोवर ऊपरि, किये सेन जुत डेरा ।
भोजन कारण चारण मुनिवर, आये सिव सुख हेरा ।।१८१।।

करि वंदन विधि पूरव भोजन, दीयो जीवंधर नैं ।
पचाचरिज दान परभावैं, पाये गुण ततपर नैं ।।१८२।।

देखि दान फल त्यागि चित्तमल, तीनहिं जनम प्रवधा ।
लखे भील सुत या भवताई, जिते हुते सवधा ।।१८३।।

पुत्र छुडावन वल ले आयो, हरि विक्रम अति प्रवला ।
ताहू कौ पकर्यो जषि ततखिण, जखि आगैं जन अवला ।।१८४।।

तब वनराज सवनि पैं भाष्यो, सुनौ सकल ही सुवुधो ।
या भवतैं पहली तीजैं भव, हुतौ वणिक सुत कुवुधी ।।१८५।।

सुवरण तेज नाम हौ मेरौ, जिन मारग न पिछान्यो ।
सेये सात विसन मैं अति ही, कीयो मन कौ जान्यो ।।१८६।।

मरि करि मारजार हू हूवो, इक होती जु परेवी ।
मैं पापी मारन कौं दौर्यो, महा दुष्टमति सेवी ।।१८७।।

कबहुक कोई मुनिवर स्वामी, पठत हुते जिनवानी ।
तामैं चउगति दुख कौ वरणन, भाषत हे गुणखानी ।।१८८।।

सुनि करि वैर भाव मैं त्याग्यो, तजि विलाव की देहा ।
लह्यो भील कैं कुल मैं जनमा, या सौं धार्यो तेहा ।।१८९।।

सुवरण तेज जनम मैं मेरी, यासौं हुती सगाई ।
इह होती जु अनुपमा नामा, मोहि नही परणाई ।।१९०।।

तातैं नेह भाव तैं मोकौं, उपजी हरण कुवुद्धी ।
सो सब माफ करौ मुझ चूका, तुम हौ महा सुवुद्धी ।।१९१।।

सुनि करि याके वचन सवनि नै, जानी वात प्रमाना ।
पूरव नेह थकी इनि आनी, और न कारण जाना ।।१६२।।

तवै क्रोध तजि भये सात चित, जीवधर ततकाला ।
पूछि सुमित्र वहुरि दिढमित्रै, छोडे अटवी पाला ।।१६३।।

हरिविक्रम वनराज दुहू सौं, क्षमा भाव करि भाई ।
घर कौ विदा किये तजि दोषा, जिनमति रीति सिखाई ।।१६४।।

सत पुरषनि कै धरमिक सौं हित, धरम समान न कोऊ ।
ह्या तै गये नगर हेमाभ जु, दुखियनि के दुख खोऊ ।।१६५।।

दोय तीन दिन रहे तहा फुनि, नगर सोभपुर आये ।
श्रीचद्रा नदाढ्य कवर कौ, दई तहा परणाये ।।१६६।।

अति विभूति सौं भयो विवाहा, जोरी मिली समाना ।
धन जोवन विद्या गुण पूरा, दोऊ रूप निधाना ।।१६७।।

इति श्री जीवधर-स्वामी-चरित्रे महापुराणानुसारि वालावबोध भाषायां पदमोत्तमा विषापहार, पद्मोत्तमा विवाह, सहश्रकूट चैत्यालय कपाट स्वयमेवोदघटन, क्षेमसु दरी विवाह, धनुर्वेद प्रवीणता, हेमाभा विवाह, नदाढ्य मिलन श्रीचद्रा नदाढ्य पूर्वभव-वर्णन, श्रीचद्रा हरण, किरातो परिगमन, किरात वधन, किरात मोचन, नगर सोभपुरे नदाढ्य श्रीचद्रा विवाह वर्णनो नाम तृतीयोध्याय ।।३।।

चतुर्थ अध्याय

छंद भुजंगीप्रयात

जवै होई चूकौ विवाहो विधी सौं,
तवै सीख मागी हितू भूपती सौं ।
महाधीर जीवधरा लार भाई,
सु हेमाभ नग्रै चले सुक्खदाई ।।१।।

वडी सेन साथे सुपथा मझारे,
लख्यो एक तालाव डेरा जु ढारे।
गये लोक पानी भरीवा कितेई,
डसे दुष्ट माखीनि पीरे घरगेई ।।२।।
सुनी वात स्वामी जवै चित्त माही,
विचारी निसदेह माखी जु नाही।
इहा कारणो और होई सुकोई,
तवै चितयो जक्ष भीरी जु सोई ।।३।।
चित ताहि आयो हितू जक्ष राया,
विडारी महा खेचरी नाम माया।
सही खेचरं लेय आयो जु पावा,
तवै आप पूछी तिसै सुद्ध भावा ।।४।।
किसै हेत रोक्यो इहै तै तलावा,
तवै खेचरो भासई आप भावा।

पूर्वभव कथा—

सुनौ भव्य मेरी कथा चित्त लाये,
हमारे हि भागे इहा आप आये ।।५।।
हुतौ एक माली धनाढ्यो महता,
पुरे राजनग्रे वसै पुष्पदता।
'त्रिया' नाम ताकै सुकुसुमश्री है,
सुतो जाति भट्टो सु सगाचरी है ।।६।।
तहा ही वसै जू धनदत्त नामा,
त्रिया नाम नवी सती सील धामा।
सुतो नाम चद्राभ मेरो सखा सो,
सही जैनधर्म जिनधीस दासो ।।७।।

तिसै तू कदाचित्त धर्म स्वरूपा,
दिखातौ हुतौ नाथ कारुण्य रूपा ।
तवै मैं हु स्वामी हुवो धर्म रागी,
तजे जू अभक्षा भयो पुण्यभागी ।।८।।

करे आयु पूरी मुवो हू प्रभूजी,
लह्यो जन्म विद्याधरौ कौ विभूजी ।
इही खेत्र माहै सुवैताडि वासी,
गयो एकदा सिद्ध कूटै विलासी ।।९।।

लखे चारणा दोय साधू महता,
विनैवता होई नमे ज्ञानवता ।
तिहारे हमारे सुनै भौ तहाजी
तवै देखनें तोहि आयो इहाजी ।।१०।।

इहै ताल रोक्यो दियो ना प्रवेसा,
तवै रावरौ दर्स पायो नरेसा ।
कहौ मैं तिहारे सुनौ भौ विवेकी,
कहे औधिज्ञानी करे चित्त एकी ।।११।।

सही धातकी खड दीपो दिपै जी,
लखे सोभ जाकी सुरालै छिपैजी ।
जहा पूर्व वैदेह क्षेत्रो विसाला,
तहा पुष्कलावत्य देसो रसाला ।।१२।।

वसै पुडरीकि नृप नग्री सुथाना,
जयद्रो नृपो नीतिवानो सुजाना ।
जयावत्य रानी जयद्रढ पूता,
सवै जैनधर्मी धरे जे विभूता ।।१३।।

गयो एकदा क्रीडनै राजपुत्तो,
मनोहार वागै सखा सघ जुत्तो ।
लख्यो हसवाला जवै चेटकानै,
तवै ल्याय सौप्यो कुमारै तिनानै ॥१४॥

दोहा

करतौ क्रीडा सर विषै, रहतौ माता पास ।
चैन पावतौ तात पै, धरतौ महा विलास ॥१५॥

तात मात तै चेटका, वृथा विछोह्यो वाल ।
कौतुक कौ लीयो कवर, चरण चूंच चखि लाल ॥१६॥

पोषन कौ उद्यम कियो, राख्यो नीकी भाति ।
पै या विनु क्षण एक नहि, तात मात कौ साति ॥१७॥

शोक सहित माता पिता, सवद करै नभ माहि ।
वारवार विलाप के, या मै संसै नाहि ॥१८॥

तवै चेटका क्रोध करि, मारचो सर तै हस ।
पापिनि के परिणाम मै, होय न करुणा अंस ॥१९॥

भागि गई तव हसनी, लखि पति कौ परलोक ।
सुनि रानि ए वात सहु, उर मै धारचो सोक ॥२०॥

चेटक तै अति कोप करि, पुरतै दियो निकासि ।
कवर थकी हू अति खिजी, जीव दया की रासि ॥२१॥

रे रे पुत्र अयान तै, कियो निंद्य इह काम ।
कनै राखि खल चेटका, हुवौ पाप कौ धाम ॥२२॥

अव या वालक कौ सही मा सौ तुरत मिलाय ।
तव हि जयद्रथ कवर नै, दयो ताहि पहुँचाय ॥२३॥
अर वहुत हि करुणा करी, मात वचन उर धारि ।
निंद्यो निज कौ अति तिनै, दई कुसगति टारि ॥२४॥

दिवस सोल मैं मात पैं, पहुँच्यो वालक सोई।
लह्यो हसनी चैन जव, निज सुत कौ अवलोय ।।२५।।

चातक कौ चउमास ज्यौं, जलधर धारा जोग।
करिकै अति तिरपत करै, हरै दाह दुख सोग ।।२६।।

त्यौं वालक कौ मात सौं, जयद्रथ कवर मिलाय।
कियो सुखी सव दुख हर्‌यो, जिन आज्ञा उर लाय ।।२७।।

चैत्र मास ज्यौं फूल कौ, करै वेलि सजोग।
भानु उदै अलि कौ जथा, करै कमलिनी जोग ।।२८।।

त्यौं नृप सुतनै हस सुत, धर्‌यो हसिनी पासि।
पर दुख हरण समान नहि, और पुण्य की रासि ।।२९।।

कैयक दिन घर मै रहे, सुख सौ कवर सुजान।
कवहु कलहि वैराग कौ, कारण अति मतिवान ।।३०।।

राज भार परिवार तजि, ले सिर परि तप भार।
परम समाधे देह तजि, लह्यो सुरग सुख सार ।।३१।।

सहस्रार नामा सुरग, सही वारमौं होय।
अष्टादस सागर तहा, सुख लहि चै करि सोय ।।३२।।

भयो धर्म धी अति चतुर, तू जीवधर नाम।
हण्यो हस चेलानि नै, करि हिंसा परिणाम ।।३३।।

सो काष्टागारिक भयो, तिह मार्‌यो तुव तात।
युद्ध विषै जोधा महा, सत्यधर सुख दात ।।३४।।

हुतौ जयधर भूप जो, सौ सत्यधर जानि।
अर षोडस दिन तै जुदौ, मात थकी सुत आनि ।।३५।।

राख्यो ताके पाप तै, षोडस वर्ष वियोग।
तोहि भयौ निज मात तै, पाप समान न रोग ।।३६।।

ए विद्याधर के वचन, सुनि जीवधर जाहि।
गन्यो आपनौं मित्रवइ, अति परसस्यो ताहि ।३७।।

तहा थकी फुनि गमन करि, कैयक दिन कै माहि ।
पहुचे पुर हेमाभ ए, सुखसौं काल गमाहि ।।३८।।

छंद वेसरी

जीवधर की तलाश मे छहो भाइयो का प्रस्थान—

अब तुम सुनौं और विरताता, खग पुत्री जीवधर काता ।
मधुरादिक षट भाइनि तासौ, पूछी वात छिपी नहि जासौं ।।३९।।

कहु गधर्वदत्ता सुखदाई, कहा गये हमरे द्वै भाई ।
तू सव जानै विद्या रूपा, पतिव्रता जिनधर्म सुरूपा ।।४०।।

तव वोली विद्याधर पुत्ती, अति परवीन वहुत गुण जुत्ती ।
सुजन देस हेमाभ सुनग्रा, वहु नग्रनि मैं सो गनि अग्रा ।।४१।।

तहा विराजै दोऊ भाई, अति सुखिया सव कौ सुखदाई ।
तुम चिंता कवहू मति आनौं, मेरे वचन जथारथ मानो ।।४२।।

तव ए छहौ परम अनुरागी, चले भ्रात देखन वड भागी ।
मात पिता की आज्ञा लैंकै, सब ही कौं सुख साता दैकै ।४३।।

मारग मैं दडक वन माही, आय नीसरे ससै नाही ।
देखन कौ तपसिनी आई, अद्‌भुत रूप देखि सुख पाई ।।४४।।

माता विजया से मिलन—

इनकौं लखि करि विजया माता, पूछ्यो कहा जाहु सुखदाता ।
अर आये किस दिसतै भाई, तव इन वात कही समुझाई ।।४५।।

सुनि करि विजया लहि सतोषा, जानी ए सव ही गुण कोषा ।
है मेरे सुत कौ परिवारा, तव इनसौ वोली व्रतधारा ।।४६।।

आजि इहा वसि करि तुम जावो, अर भाई कौ इत ही लावो ।
लखि जीवधर कौ सौ रूपा, इन जानीया अतुल अनूपा ।।४७।।

होइ किधौं जीवधर माता, धर्म धारिणी अघ की घाता ।
तव तिन कह्यो करै हम योही, माता तुम आग्या दी ज्योही ।।४८।।

मिष्ट वचन करि अति सतोषी, चले इहा तैं षट ए सोषी ।
मारग माहि लुटेरा आये, तिनसौं रण करि तुरत भगाये ।।४६।।

अपनी इछा जातहु ते ए, सूरवीर बहु वुद्धि जुते ए ।
आय पहौंचे पुर कै पासे, कहौ वात इक और प्रकासे ।।५०।।

अति हेमाभ नगर कौ साथा, लूट्यो भीलनि जानि अनाथा ।
राजद्वार मैं लोक पुकारे, तव जीवधर आपु पधारे ।।५१।।

जाय भगाय दये वनपाला, वनियनि कौं घायो सव माला ।
तव करि भील मदति षट भाई, लरे भ्रात सौ अति सुखदाई ।।५२।।

जीवधर से मिलन—

लखि कै निज भाई कौं नीरा, नाम पत्र जुत भेज्यो तीरा ।
तव जान्यो जीवधर एही, मधुरादिक आये अति नेही ।।५३।।

मिले परसपर आठौं भाई, ए द्वै अर वै षट गुणराई ।
नगरि राजपुर की सहु वाता, जीवधर पै करी विख्याता ।।५४।।

कैयक दिन ह्या करि विसरामा, कवरै लेय चले निजधामा ।
आये दडक वनवर वीरा, आठौ धीर हरै पर पीरा ।।५५।।

माता से मिलन—

तहा लखी विजया गुणखानी, अति विलाप जुत सोक निधानी ।
सुत सनेह तैं आचल जाके, भरि आये पै करि अति ताके ।।५६।।

अश्रु पात परिपूरण नैना, अति दुरवल तन सर वीलत वैना ।
वहु चिंता जुत है सतप्ता, जटी भूत सिर केस विषिप्ता ।।५७।।

नित्य निरतर उष्ननिसासा, तिन करि विवरण अधर उदासा ।
अति मलीन जाके सव दता, सर्वाभरण रहित दुंखवता ।।५८।।

ज्यौ प्रदुमनि कौ रुक्मणि माता, त्यौं निज सुत कौ इह सुभ गाता ।
चितवती निज चित्त मझारा, सुत वियोग कौ दुख अतिभारा ।।५९।।

तव ही आय पर्यो सुत पावा, हाथ जोरि सिर नमि सुभ भावा।
दई असीस ताहि तव माता, होहु पुत्र तुम्हरैं सुख साता ।।६०।।
अति कल्याण लहौ तुम लाला, मेरी आखि तुही गुणपाला।
उठौ उठौ जग के सुखकारी, धर्मवत जिनमारग धारी ।।६१।।
ऐसे वचन कहे फुनि बोली, चिरजीवो इह तेरी टोली।
तुव दरसन करि लह्यो अनदा, टूटि गये सव ही दुख फदा ।।६२।।
या विधि पुत्र थकी सुभ वानी, भासत ही विजया वुधि वानी।
एतै ही आई सो जक्षी, जाकै माता की अति पक्षी ।।६३।।
न्हान विलेपन सब आभरणा, वस्त्रासन भोजन सुख करणा।
पहुप माल औरहु सुभवस्ता, आठनि कौं दीनी परसस्ता ।।६४।।
कियो साहिमी वछल जानै, साधी जिन मारग विधि तानै।
करि सतकार गई निजधामा, धर्मवती अति ही अभिरामा ।।६५।।
साचौ मित्रापन है एही, आपद मैं त्यागै न सनेही।
मात लख्यो इह सुत वड भागी, प्रथ्वी कौ नायक गुणरागी ।।६६।।
बुद्धि निधान पराक्रम धारी, अरिगजन सज्जन सुखकारी।
तव याकौ एकात जु लैकै, समझायो अति सिक्षा दैकै ।।६७।।

माता द्वारा पूर्व वृतान्त कथन—

सत्यधर तेरौ निज ताता, नगर राजपुर कौ सुखदाता।
महाराज राजनि कौ राजा, सूरवीर सावत समाजा ।।६८।।
ताकौ जुद्ध विषैं हति भाई, काष्टागारिक राज कराई।
सो अति नीच तिहारौ सत्रु, तुम तौ सव जीवनि के मित्रू ।।६९।।
तात तने थानक कौ त्यागा, तुम कौ जोग्य नही वड भागा।
इह सुनि माता को आदेशा, कियो पुत्र परमान असेसा ।।७०।।
सुनिकैं तात घात अति कोपा, उपज्यो अरिपरि सव सुख लोपा।
तौ पनि दाव्यो हिरदा माही, काहू सौ प्रगट्यो कछु नाही ।।७१।।

निज मन मैं धारी तव स्वामी, विना समै सूरत्व न कामी ।
सव कारिज कौ साधन काला, काल पाय ह्वै धान-विसाला ।।७२।।

तवै मात सौं अमृत वानी, वोले पुत्र महा सुखदानी ।
तुव परसाद सकल ह्वै नीकी, तुम चिंता मेटौ निज जीकी ।।७३।।

इह कारिज पूरण ह्वै माई, तव नदाढ्य तो कनै आई ।
तोहि वुलाऊ तव ह्वै साता, तू माता नर देही दाता ।।७४।।

तव तक ह्यां तिष्ठौ सुखरूपा, सोक रहितधरि ज्ञानअनूपा ।
इह कहि सव सामिग्री मा पै, अर कछुयक परिवार हु तापै ।।७५।।

राखि आप चाले वुधिवता, नगर राजपुर कौं वलवता ।
पहुचे नगर निकटि जव नाथा, मनै कियो अपनौ सव साथा ।।७६।।

जीवधर का राजपुर नगर मे प्रवेश—

मेरौ आवौ गोपिहि राखौ, काहू पासि कछू मति भाखौ ।
भिन्न भिन्न समझाये लोका, आप विचक्षन अति गुन थोका ।।७७।।

जक्ष मुद्रिका कै परभावा, वणिक भेष धारचो सुभ भावा ।
पैसि नगर मैं आनद रूपा, कोइक देखी हाट अनूपा ।७८।।

तहा विराजे पुण्य निधाना, भाग्यवत सागत सुजाना ।
लह्यो लाभ जव साह अपारा, तव तिन जानीए गुणधारा ।।७९।।

सागरदत्त नाम है जोई, जाकै अमला नारि जु होई ।
विमला पुत्री अति मतिवती; रूपवती सो वहु गुणवती ।।८०।।

विमला के साथ विवाह—

आगै निमति या विधि भाख्यो, कही साच सदेह न राख्यो ।
जो नर हाटि विराजै आई, होय लाभ ताकरि अधिकाई ।।८१।।

सो विमला परनै सुभकारी, ए सव वात सेठ उरधारी ।
देखि कवर कौ जानी एही, विद्या निधि अति सुन्दर देही ।।८२।।

तव इनकौ पुत्री परणाई, दियो दायजौ अति अधिकाई।
कैयक दिन सुसराकै स्वामी, रहे महा सुखसौं विसरामी ॥८३॥

जीवधर परिव्राजक के भेष मे—

एक दिवस परिव्राजक भेषा, धरि करि जाय भूपकौ देषा।
दे आसीरवाद वडभागी, वोले मोहि भूख वहु लागी ॥८४॥

तातै तोहि जाचनै आये, दै सुभ भोजन भूख नसाये।
जव काष्टागारिक अज्ञाना, करी इनौ की वात प्रमाना ॥८५॥
तव जीवधर सकुन विचारयो, निश्चै अपने उर मै धारयो।
मेरौ उद्यम जो फल रूपा, ताकौ एही फूल अनूपा ॥८६॥

इह चितवन करि भोजन काजै, वैठे वड आसन प्रभु राजै।
ल भोजन निकसे जव धीरा, जव वोले मुखतै वरवीरा ॥८७॥

वसीकरण चूर्णादिक वस्ता, है मोपै औषध परसस्ता।
जिनकौ फल परतक्ष जु देखौ, मेरौ वचन साच तव लेखौ ॥८८॥

जाकी रुचि ह्वै ल्यो ए सोई, इन तै मनमथ जाग्रत होई ॥८९॥

चाहौ जाहि ताहि वसि कारौ, ए मुझ वचन हिया मैं धारौ ॥९०॥

राजद्वार के लोकनि पासे, ऐसी विधि के वचन प्रकासे।
सुनि करि हसे सकल ही लोका, इन नै मदन सूत्र अवलोका ॥९१॥

देखौ वृद्ध निलज्ज महा ए, भेष धार गनियें जु कहाए।
मरण काल अति नीरै आयो, तौ पनि मनमथ मैं मनलायो ॥९२॥

चूरण अ जन गाठि कनारैं, वसीकरण मोहण उरधारैं।
ऐसै कहि हसि करि सव वोले, तपसी तोमैं लखण अतोले ॥९३॥

सुनि इक वात हमारी भाई, गुणमाला कन्या अधिकाई।
याही पुर मैं सेठ सुता जो, जोवनवती रूप जुता जो ॥९४॥

आगै इक जीवधर नामा, गधोतकट सुत वहु गुण धामा।
तानै चूरण और सराह्यो, अर गुणमाला कौ विसराह्यो ॥९५॥

तव ते पुरष मात्र थी जाकौ, चित्त उदास भयो अवला कौ।
काहू कौ परणै नहि सोई. वसी करै तू तौ अति होई ॥९६॥

तेरी परससा जग माही, सव ही ले औषध सक नाही।
जेतौ मागै तेतौ मोला, दे तोकौं ले वस्तु अतोला ॥९७॥

सुनि करि वनकी वानी भाई, वोले भेष धारण गुणराई।
कहा विधी जीवधर जानै, चूरण वास कछू न पिछानै ॥९८॥

तुम्हरे गाव माहि इक सोई, तरु नहि जहा इरडहि जोई।
तव सव वोले होय सकोपा, तू तौ तापस पर गुन लोपा ॥९९॥

नीच पुरिष कौ इहै सुभावा, अपने गुन कौं करै प्रभावा।
कहा जथेष्ठ वकै विप्रा, तोकौ हम जानै इह लप्रा ॥१००॥

अपनी थुति अर पर की निंदा, न करै तेई जानि जतिंद्रा।
तू दुश्रुत उद्धत अति गर्वा, जानै मैं ही जानौ सर्वा ॥१०१॥

ए सुनि वचन तापसी भाषै, गुन ह्वै सो छिपिया नहि राखै।
एक महूरत मैं धट दासी, करो सेठ कन्या इह भासी ॥१०२॥

वृद्ध ब्राह्मण के भेप मे गुणमाला के पास जाना—

गयो तुरत गुनमाला गेहा, धरि वूढे वाम्हन की देहा।
ताकी दासी लई वुलाई, तासौं यो भाषी द्विजराई ॥१०३॥

तेरी स्वामिनि कौ कहु जाये, वूढे विप्र वारणै आये।
तव दासी गुणमाला पासे, जाय करी द्विज वात प्रकासे ॥१०४॥

स्वेछाचारी वाम्हन आयो, अैसो वृद्ध न और लखायो।
तव गुणमाला लयो वुलाये, पूछ्यो विप्र कहा तै आये ॥१०५॥

विप्र कहयो पाछातै आवै, अर आगा कौ पाव धरावै।
तव सव हसी सहैली ताकी सुनि वोली वाम्हन विरधा की ॥१०६॥

वाम्हन कह्यो हसौ मति कोई विरधापन सवही मैं होई।
गनिका विरधा पन नहि चाहै नव जोवन कौं अतिहि उमाहै ॥१०७॥

वाम्हन तापस कौ तौ एही, आभूषण जानौ जरदेही ।
तव वोली गुणमाला वाई, किती दूर जावो द्विजराई ।।१०८।।
वाम्हन वोल्यो तीरथ ताई, धर्म हेत आगा कौं जाई ।
वाम्हन कौ लखि सेठ सुताने, जानी मन मैं वृद्धि जुता नै ।।१०९।।
इह केवल तन ही करि वृद्धा, मन अर वचन देखता गृद्धा ।
तव याकौं भोजन दै चोखा, भली भाति करि प्राण जु पोखा ।।११०।।
दै भोजन वोली गुण वित्ता अव तुम जाहु जहा हैं चित्ता ।
वाम्हन कहयो भली तुम भाषी, भोजन माहि कमी नहि राखी ।।१११।।
करि परससा उठनै लागौ, वृद्धा सुरुप धरया वड भागौ ।
डिगि करि परयो धरणि मैं सोई, फुनि लाठी गहि उठियो जोई।।११२।।
कान्या की सज्या परि एही, जाय परयो वाम्हन जरदेही ।
तव सव सखी सहैली कोपी, देषौ इन अति लज्या लोपी ।।११३।।
सज्या थकी उठावन सारी, दौरि चितधरि रोस अपारी ।
वाम्हन कह्यो सत्य तुम भासी, मै निरलज्ज राग रस रासी ।।११४।।
लज्या तो नारीगण माही, सोहै वहुरि पुरिष मे नाही ।
जो नर हू मे हौवै लाजा, तौ नहि होइ भौग कौ काजा ।।११५।।
ए सुनि वृद्ध वाक्य गुणमाला, जानी इह नहि वृद्ध विसाला ।
रूप पलटनी विद्याधारी, है इह कोई गुण निधि भारी ।।११६।।
इह विचारि वोली वुधिवाना, आये द्विज अपनै मिजमाना ।
कहा दोष सज्या परि एही, पौढे रहौ खीण अति देही ।।११७।।
हमरै सज्या और विछावो, ए सज्या एही ले जावो ।
यो कहि सारो सखी निवारी, वसे राति ह्या द्विज तन धारी ।।११८।।
निसी कौ वाम्हन मतौ विचारयो, शुद्ध सुरनि करि राग उचारयो ।
महा मधुर रस जनमन हारी, काननि कौ अति आनदकारी ।।११९।।
सुनि करि सेठ सुता सुख पायो, अैसौ राग किनी न सुनायो ।
आगै जीवघर नै रागा, गायो हौ चित धरि अनुरागा ।।१२०।।

जव गधर्वदता तिन व्याही, वाम्हन हू गावै विधि याही ।
उठि कै प्रात समय गुणमाला, वाम्हन कौ करि विनै विसाला ।।१२१।।
पूछन लागी द्विज पति भाषौ, कौन सास्त्र मै परचै राखौ ।
वोले विप्र सुनौ मृगनैना, तुमको देखि लह्यो हम चैना ।।१२२।।
धर्म अर्थ कामादिक सारा, हम अभ्यासे ग्र थ अपारा ।
धर्म अर्थ ए वृक्ष सुरूपा, काम शास्त्र फल रूप अनूपा ।।१२३।।
ताकौ कछु यक कहौ विचारा, सुनौ कान धरि वचन हमारा ।
पञ्चेन्द्रो अर विषय जु पचा, इनही कौ इह सकल प्रपचा ।।१२४।।
करकस नरम आदि वसु फर्सा, अर मधुरादिक षट रस सर्सा ।
कर्तृम स्वाभाविक द्वय गधा, ताके भेद सुगध दुगधा ।।१२५।।
चेतन और अचेतन वस्तू, कुइ दुरगध कोई परसस्तू ।
रूप पच विधि है कृशनादी, स्वर हैं सप्त भेद षडगादी ।।१२६।।
जीव अजीव सभवा जानौ, चौदा दूण विषै परवानौ ।
इप्ट अनिष्ट गने छप्पन्ना, पुण्य जोगतै इष्ट उप्पन्ना ।।१२७।।
धर्म थकी ह्वै पुण्य निवधा, अव तुम सुनौ धर्म परवधा ।
जे अजोग्य विषया अन्याया, तिनकौ त्याग सुधर्म वताया ।।१२८।।
तातै निषध विषै तजि दक्षा, सेवै न्याय विषै सुभ पक्षा ।
काम शास्त्र के पण्डित तेई, कवहु अजोग्य विषै नहि सेई ।।१२९।।
सुनि करि सेठ सुता यो भाषै, वुधजन सोइ जु असुभ न राषै ।
हमरै जो कछु लखौ अजोग्या, सोइ छुडावो पडित जोग्या ।।१३०।।
देहु जोग्य कौ तुम उपदेसा, करौ आपनी दास विसेसा ।
तव पडित सव कला सिखाई, याकौ वुद्धि दई अधिकाई ।।१३१।।
एक दिवस सहु पुर के लोका, वन विहार कौ गये असोका ।
आपहु गुणमाला ले साथा, वन देखन चाले गुणनाथा ।।१३२।।
लखि एकात ठौर रमणीका, सेठ सुता जुत वैठे नीका ।
तव याकौं निजरूप दिखायो, परै जाहि लखि सुर सरमायो ।।१३३।।

देखि कन्यका ससैवती, लज्यावत भई गुणवती ।
मौन लेय बैठी सुभ रूपा, कवर लखी सदेह सुरूपा ।।१३४।।
तवै सवै चूरण वासादी, गुणमाला कौं वात जतादी ।
उपजायो विस्वास विसेषा, वहुरि धरचो विरधा कौ भेषा ।।१३५।।
पहुप सेज परि बैठे वृद्धा, कन्यासौं वोले गुण गृद्धा ।
दावि हमारे पाव जु प्यारी, तू हमसौं कवहू नहि न्यारी ।।१३६।।
तव वह महा नेह थी पावा, दावन लागी सरल सुभावा ।
देखि राजपुत्रादिक सारा, अचिरज रूप रहे गुण धारा ।।१३७।।
परससे मन्त्रादिक याके, जस भासे सवनै विरधा के ।
वन तै आय कही गुणमाला, मात पितासौ वात रसाला ।।१३८।।
जीवघर आये सुखकारी, तव तिन जानी मन मैं सारी ।
दई ताहि परणाय कुमारै, जा लखि सुर तिय अचिरज धारै ।।१३९।।
ता सजुक्त रहे दिन केई, ससुरा कै घरि अति सुख लेई ।
पुण्य प्रभाव सकल सुख होई, पुण्य समान न जग मैं कोई ।।१४०।।

इति श्री जीवधर-स्वामी-चरित्रे महापुराणानुसारि वालावबोध भाषाया विद्याधर मिलन, पूर्व भव निरूपण, हेमाभपुर आगमन, मधुरादि षट् भ्रातृ मिलन, स्वदेश प्रयाण, दडक वने-विजया मात दर्शन, यक्षी सत्कार, राजपुरे आगमन, सागरदत्त सुता विमला विवाह, राजद्वार गमन, चूर्णादि वर्णन, गुणमाला वशीकरण, गुणमाला विवाह, सुखानुभवन निरुपणो नाम चतुर्थोध्याय· ।।४।।

पंचम अध्याय

दोहा

अव ससुरा के घर थकी, चले आपनै गेह ।
नाम विजैगिर गध गज, चढि करि सु दर देह ।।१।।

भ्रात सकल ही सग है, अर सेना चतुरग।
जस गावै जन नगर के, लखि लखि हरषै अग ॥२॥

जीवधर गधोत्कट मिलन—

गधोतकट के भाग धनि, धन्य सुनदा भाग।
जिनकौ सुत गुण जुत महा, धरै सकल जनराग ॥३॥

कीरति सब के मुख थकी, सुनत सुनत सुकुमार।
पहुँचे निज घरि धर्म धी, हरष सुरूप अपार ॥४॥

गधोतकट कै पाव लगि, लगे सुनदा पाव।
अति उछाव हूवो तबै, सुनी नगर कै राव ॥५॥

मन मै धारचो दुष्टमति, काष्टागारिक कोप।
देखौ वारिणज तनज ए, करी कारिण सब लोप ॥६॥

अति उनमत्त भयो इहै, डरै न मोतै रच।
मत्री लखि याकौ हृदै, बोले तजि परपच ॥७॥

इह जीवधर अति प्रबल, महाभाग मतिवत।
पूरव पुण्य प्रभाव तै, याकौ उदै अनत ॥८॥

अर याके घर मै महा, खग पुत्री परवीन।
है गधर्वदत्ता सती, रमा तुल्य गुणलीन ॥९॥

जक्ष सुदरसन सारिखे, महा मित्र बलवान।
कबहू न्यारै हौहि नहि, करै कह्या परवान ॥१०॥

मधुरादिक सातौ सखा, साता करी जानि।
जिन सौ रण मैं जीतिवा, समरथ कोइ न मानि ॥११॥

अर इह डीला अति सुभट, है अभेद्य रण माहि।
तातै यासौ जुद्ध की, मन मैं आवै नाहि ॥१२॥

बलवतनि सौं वैर करि, सुखी न होवै कोई।
इत्यादिक युत्तिनि करी, समझायो खल सोय ॥१३॥

तव चुप ह्वै रण तै रह्यो, मन्त्रिनि की सुनि वात ।
कवर विराजै घर विषै, रसित सकल उतपात ।।१४।।

कहौ और इक वारता, सुनौ चित्त निज लाय ।
देस विदेह विदेहपुर, है गोपित्र सुराय ।।१५।।

रानी प्रथवी सुदरी, 'रतनवती' सुभ नाम ।
पुत्री मती सुरूप अति, वहुत गुणनि की धाम ।।१६।।

करी प्रतज्ञा तिन इहै, चद्रक वेध प्रवीन ।
होय ताहि परनौ सही, परनर सकल अलीन ।।१७।।

याकी परतज्ञा पिता, जानि विचारी एह ।
जीवधर सौ या समै, नही सुभट सुभ देह ।।१८।।

धनुरवेद वेत्ता वहै, सकल वेद कौ जान ।
इह उर धरि कन्या सहित, चाल्यो भूप सुजान ।।१९।।

रतनावती का स्वयवर—

गयो राजपुर राजई, ले सामग्रि अनूप ।
रच्यो स्वयवर जायकै, अद्‌भुत सोभा रूप ।।२०।।

पठई पत्री सवनिकौं, भूचर खेचर जेहि ।
आए पत्री वाचिकै, नगर राजपुर तेहि ।।२१।।

चद्रक वेघ सथापियो, जहा स्वयवर साल ।
कोई वेधि सक्यो नही, हुते वहुत भूपाल ।।२२।।

देखि सवनिकौ सिथल चित्त, आये सेठ कुमार ।
जीवधर जोधा महा, सुदर सुघर अपार ।।२३।।

नमसकार करि सिद्ध कौ, आरजिवर्मा ध्याय ।
जो अपनौ गुर तप निधी, सकल कला कौ दाय ।।२४।।

चाप चढाय लगाय सर, अचल चित्त वरवीर ।
वेध्यो चद्रक वेध जो, जीवधर रणधीर ।।२५।।

उदयाचल परि वाल रवि, दिपै जथा तम भेदि।
दिपै सेठ सुत सवसिरै, चद्रक वेधहि छेदि ।।२६।।

सिंहनाद करि सुभट अति, गाज्यो नदा पूत।
गू जी तव दस ही दिसा, कपे थिर चर भूत ।।२७।।

नीकै वेध्यो वेध इनि, राखी कसर न कोय।
लागे परससा करन, भले पुरिख गुण जोय ।।२८।।

कठ कवर कै माल वर, करिकै अधिक सनेह।
घाली रतनवती तवै, देख्यो अद्भुत एह ।।२९।।

तव सव सज्जन लोक नैं, कीरति कही वखानि।
इनकौ सगम जोग्य है, दोऊ सव गुण खानि ।।३०।।

सरद समै अर हस तति, जथा जोग्य सवध।
तैसैं कवरी कवर कौ, भयो जोगि सनमध ।।३१।।

जय ह्वै सवही जायगा, पुण्यवतनि को ठीक।
यामैं कछु अचिरज नही, इह जानौ तहकीक ।।३२।।

हुते जिते वुधिवत नर, किनहि न धारचो रोस।
काष्टागारिक आदि खल, उपजायो उर दोस ।।३३।।

पहली खग पुत्री वरी, तबकौ लीया दोस।
रतनवती कौ रूपलखि, भयो रोस कौ कोस ।।३४।।

जीवधर द्वारा पत्राचार—

हुवो उद्यमी जुद्ध कौ, कन्या हरणै काज।
जीवधर लखि विषमतानैं प्रवीन गुण राज ।।३५।।

सत्यधर भूपाल के, जिते हुते रजपूत।
कामदार इत्यादि सहु, तिनपै भेजे दूत ।।३६।।

पठई वस्तु अनेक विधि, लिखे पत्र सुभ रूप।
समाचार तिनमैं इहै, सत्यधर वड भूप ।।३७।।

तिनकौं सुत मैं हों सही, विजया उदर मझार ।
उपज्यो इह निश्चै करौ, यामें सक न लगार ॥३८॥

को इक कर्म प्रबंध तैं, मोकौं भयो वियोग ।
लही वृद्धि मैं सेठ घरि, आय मिल्यो अब जोग ॥३९॥

काष्ठागारिक पाप धी, तिण लकरी अर कास ।
बहुरि कोइला बेचतौ, सिर परि ल्यातौ वास ॥४०॥

काल पेप करतौ कुधी, था विधि पुरकै माहि ।
तासौ तुम्हरे भूप नैं, कमी जु राखो नाहि ॥४१॥

कियो बराबरि आपनी, दियो मंत्रि पद याहि ।
यानै अवसर पायकैं, रण मैं मारयो ताहि ॥४२॥

पै पावै जो साप कौं, तऊ प्राण ही लेय ।
सो कहवति साची करी, नरभव कौं जलदेय ॥४३॥

लियो धनी को राज इह, अब मैं मारौं याहि ।
जाय रसातल मैं घुसै, तौव न छोडौं ताहि ॥४४॥

मेरौं ई अरि नाहि इह, तुम सवको अरि एह ।
सेवक मेरे तात के, मोसौं करौ सनेह ॥४५॥

स्वामि धर्मधर सेवका, तिनको मारग एह ।
हनै स्वामि के शत्रु कौं, त्यागै अपनी देह ॥४६॥

या विधि पत्री वाचिकैं, सबनि लखी मन माहि ।
सत्यधर की पूत इह, यामैं ससै नाहि ॥४७॥

युद्ध वर्णन—

आय मिले तब बहु सुभट, निज निज सेना लेय ।
चढ्यो राव सुत अरि परैं, सही नगारा देय ॥४८॥

भयो जुद्ध नाना विधो, मुची सत्रु की सेन ।
तब वैरी आयो प्रबल, तऊ आप सकुचेन ॥४९॥

नाम बिजै-गिर गध गज, ता परि चढिया आप ।
शत्रु मान मोडन सदा, धारचा अतुल प्रताप ।।५०।।

असनिवेग इक नाम गज, ता सिरि चढ्यो अयान ।
काष्टागारिक नीच नर, उद्धत अपजस वान ।।५१।।

भयो परसपर जुद्ध अति, हत्यो चक्र करि सोय ।
इहै चक्र सामानि है, नही सुदरसन होय ।।५२।।

मूवो लखि अघरूप कौ, भागे ताके लोक ।
तव स्वामी अति शात ह्वै, मेट्यो सवकौ सोक ।।५३।।

करी दिलासा सवनिकी, अभै घोषणा देय ।
भाइनि सौ अति नेह करि, मिले वगल मैं लेय ।।५४।।

कियो विनै विरधानि कौ, उपजायो सताष ।
आये जिन मदिर जवै, जीवधर गुण कोष ।।५५।।

करी महा पूजा तवै, प्रभु की मगल रूप ।
दिये दान दीनानिकौ, कीरति भई अनूप ।।५६।।

राज्याभिषेक—

नर नायक आये वहुत, अर आयो जषिराय ।
कियो राज अभिषेक तिन, दियो तिलक लगि पाय ।।५७।।

परनी रतनवती महा, उछव सौं भूपाल ।
अर गधर्वदत्ता करी, पटरानी सुभ चाल ।।५८।।

नदाढ्यादिक भेजिकै, लई वुलाय सुमात ।
अर रानी परनी हुती, ते आनी सुखदात ।।५९।।

सव कटुव भेला प्रभू, अति ऐश्वर्य सुरूप ।
अतर वाहिज सत्रु के, जेता अधिक अनूप ।।६०।।

न्याय थकी परजा सकल, पाली परम दयाल ।
भोग भोगये इद्र से, लीला करी रसाल ।।६१।।

एक दिवस सुर मनय पवन, क्रीडा हेत क्रिपाल ।
गये हुते वरधर्म मुनि, देखे तहा विसाल ।।६२।।

नमसकार करि साध कौ, सुन्यो तत्व विज्ञान ।
अणुव्रत ले सम्यक सहित, धारचो धर्म,सु ध्यान ।।६३।।

नदाढ्यादिक भ्रात सव, भये अणुव्रत धार ।
सम्यक जुत धरमातमा, असुभ रहित अविकार ।।६४।।

श्रावक धर्म वर्णन—

सम्यक अर अणुव्रतकौ, सुनौ सुरूप सुजान ।
धरौ आपने चित्त मैं, लहो सुगति मतिवान ।।६५।।

देव जिनेसुर जगत वर, गुर मुनिवर व्रतधार ।
धर्म दयामय जानिये, सो सम्यक व्यवहार ।।६६।।

अपनौ आतम देव है, गुर आतम ही होय ।
वस्तु सुभाव हि धर्म है, इह निश्चै अव जोय ।।६७।।

अनतानुवधी महा, क्रोध मान छल लोभ ।
वहुरि तीन मिथ्यात ए, सात प्रकति अति श्रोभ ।।६८।।

इनकौ उपसम क्षय वहुरि, अर पय उपसम होइ ।
तव प्रगटै सम्तक त्रिविधि, मूल व्रत कौ सोय ।।६९।।

सात उपसम्या उपसमी, क्षयतैं क्षायक जानि ।
एक उदै व्है सातमी, सो वेदक परवानि ।।७०।।

भेदक हे सम्यक्त के, अव सुनि व्रत के भेद ।
महाव्रत अर अणुव्रता, व्रणता द्वै विधि अथ छेद ।।७१।।

हिसा मिथ्या वचन अर, चोरी नारी सग ।
परिग्रह त्रिशना पच ए, पाप कुमति के अग ।।७२।।

सकल पाप कौ सर वृथा, त्याग महाव्रत जानि ।
किंचित त्याग अणुव्रता, इह निश्चै परवानि ।।७३।।

महाव्रत मुनि धर्म है, अणुव्रत श्रावक धर्म।
श्रावक धर्म ग्यारह विधि, ताकौ सुनि अव मर्म ॥७४॥

त्यागै कुविसन सर्वही, तजे अभक्ष अहार।
सम्यक द्रिग निरमल धरै, पहली पडिमा धार ॥७५॥

वसुमद वसुमल आयतन, षट अर मूढत तीन।
ए पचीस सम्यक मला, तजे प्रथम परवीन ॥७६॥

दूजी पडिमा धार फुनि, धरै अणुव्रत पच।
तीन गुण व्रत च्यारि फुनि, सिक्षा व्रत सुभ सच ॥७७॥

त्रस हिंसा परघात वच, परधन अर परनारि।
अप्रमाण परिगह तज्या, ह्वै अणुव्रत सुखकारि ॥७८॥

दसौं दिसा परमाण जो, भोगुपभोग प्रमाण।
अनरथ सवही त्यागिवौ, तीन गुण व्रत जाण ॥७९॥

तीनो सध्या जिन भजन, पोसह च्यारि प्रमानि।
अतिथि विभागर नेम निति, चउ सिक्षा व्रत जानि ॥८०॥

अंतकाल सल्लेखणा, इह व्रत प्रतिमा रीति।
सुनि तीजी सामायका, धरि करि उर मैं प्रीति ॥८१॥

सामायक समये महा, मुनि सम थिरता होय।
सो तीजौ श्रावक कह्यो, लहै सुगति सुख सोय ॥८२॥

षट चउ द्वै घटिका प्रमा, व्है सामायक काल।
सोलह वारह वसु पहर, इह पोसह की चाल ॥८३॥

सामायक की सी दसा, पोसह समये होय।
चौथी पडिमा धार सो, श्रावक सुभमति सोय ॥८४॥

सचित त्याग है पचमी, छट्ठी दिन तिय त्याग।
अर निसि कौ भोजन तजन, धारै ते वड भाग ॥८५॥

सदा सर्वथा नारिकौ, त्याग सप्तमी जानि।
तजन सकल आरभ कौ, ताहि अष्टमी मानि ॥८६॥

नवमी परिगह त्याग है, सुनि दसमी की चाल ।
लौकिक वचन न भासई, जीवदया प्रतिपाल ।।८७।।

एकादसमी द्वै विधि, क्षुल्लक ग्रैलि वखानि ।
वनवासी दोऊ सुधी, मुनिवत भोजन मानि ।।८८।।

क्षुल्लक खडित वस्त्र इक, अग कोपीन प्रवांनि ।
केस मुडावै अरवहै, नहि करपात्र वखानि ।।८९।।

करपात्री है ग्रैलि सुभ, वस्त्र एक कोपीन ।
लोच करै केसानि कौ, रहै धर्म लवलीन ।।९०।।

क्षुल्लक लौ च्यारचो वरण, धरै व्रत्त सुभ रूप ।
ग्रैलि अर्यका मुनिवरा, तीनहि वर्ण अनूप ।।९१।।

ए एकादस विधि कही, श्रावक की भगवान ।
तिनमैं दूजी आदरी, जीवधर गुणवान ।।९२।।

भाइनि जुत वारह वरत, सम्यक सहित'धरेय ।
गये आपनै घरि नृपति, नर भव सफल करेय ।।९३।।

सुखसौ वीतै काल अति, नृप सवके सुखदाय ।
एक दिवस वन देखिवा, गये गुणनि के राय ।।९४।।

वनविहार—

वन असोक रमणीक अति, तहा परसपर जुद्ध ।
देख्यो वादर वर्ग मै, तवै भये प्रतिवुद्ध ।९५।।

देखौ देखौ जीव जग, करि करि तीव्र कषाय ।
भमै सदा ‥व वन विषै, धरि धरि नौतन काय ।।९६।।

कोइक वड भागी पुरिष, लहि जिन मारग सार ।
लिखकै आतम तत्व कौ, उतरै भवजल पार ।।९७।।

जग विरकत मत जैन कौ, सधै न घरकै माहि ।
मोह जाल है घर विषै, या मै ससै नाहि ।।९८।।

धंधा विनु नहि होय घर, सो हिसा कौ मूल ।
हिंसा श्री जिनधर्म तै, है अति ही प्रतिकूल ।।६६।।
इह विचार नृप कै भयो, तव ही ता वन माहि ।
एक ठौर देखे मुनी, चारण ऋद्धि धराहि ।।१००।।

ससार से विरक्ति—

है प्रशस्त वकजु महा, मुनि कौ नाम रसाल ।
अवधिज्ञान धारक गुरु, जीवदया प्रतिपाल ।।१०१।।
तीन प्रदक्षरण देय नृप, करि वदन कर जोरि ।
सुने हुते खग मुख भवा, मुनि मुख मुने वहोरि ।।१०२।।
जाय धरै जिन पूजि करि, वढी सुद्धता जोर ।
सुन्यो राव सुभ भावनै, वीर मोह मद मोर ।।१०३।।
वरधमान सनमति प्रभू, महावीर अतिवीर ।
अ तिम तीरथ नाथ जो, तिष्ठै गुण गम्भीर ।।१०४।।
वन सुर मलय विषे विभू, तव आयो तिह ठौर ।
जीवधर वरणीवती, वदे त्रिभुवन मौर ।।१०५।।
सुनि वानी जगदीस की, उपज्यो अति वैराग ।
जगत भोग अर देह तै, तूटो मन कौ राग ।।१०६।।
पटरानी कौ पुत्र जो, नाम वसु धर ताहि ।
सौंपा आप वसु धरा, लख्यो नीति घर जाहि ।।१०७।।
व्है निरमोही सवनितें, करि सव परिगह त्याग ।
[illegible]ाठौ मसुरा आदि वहु, राजनि जुत वड भाग ।।१०८।।
[illegible] [illegible]त, लीयो चारित भार ।
[illegible] जीवधर जगतार ।।१०९।।
[illegible]रि जग के भोग ।

विजया माता अर सबै, सासू आठौं जानि ।
अर रानी आठौं महा, सब ए गुण की खानि ।।१११।।

भई अर्यका त्यागि घर, चदनवाला पासि ।
तारै जीव अनेक कौं, एक जीवगुण रासि ।।११२।।

इह जीवधर मुनि कथा, कहि बोले गणधार ।
श्री सुधर्म स्वामी तबै, श्रेणिक सौं निरधार ।।११३।।

तुम पूछयो सो मुनि इहै, महा तपोनिधि वीर ।
साप्रत है श्रुतकेवली, द्वादसाग धरधीर ।।११४।।

च्यारि घातिया घात करि, लहसी केवलज्ञान ।
होसी अग्रह केवली, जगदीसुरु जग जान ।।११५।।

वरधमान भगवान कै, साथहि करिजु विहार ।
च्यारि अघाति यहू हते, पासी भवजल पार ।।११६।।

विपुलाचल परवत थकी, जासी जग कै सीस ।
अष्टगुणादि अनतगुण, धारी अविचल ईस ।।११७।।

ए सुधर्म गणधर तने, वचनामृत नृप पीय ।
श्रेणिक त्रिप्त भयो महा, जनम सुकारथ कीय ।।११८।।

छप्पै छन्द

जे गधर्वदतादि, अष्टरानी गुन वानी ।
दुल्लभ और निकौंजु, तेहि परनी सुखदानी ।।
तात घात को शत्रु, दुष्ट अति काष्टागारी ।
सो जानै रण माहि, मारि डारयो दुखकारी ।।
राज कियो जु कितेक दिवसा, फुनि परिगह तजिया सब ।
अष्ट कर्म से दुष्ट काटे, सकल विरद जिनकौं फबै ।।११९।।

भेदि तिमिर अज्ञान, छेदि करि सर्व विभावा ।
लहि मुकति श्री सग, सोहई सुद्ध सुभावा ।।

जो जीवधर राय, पचकायनि तै न्यारौ।
जगत सिरोमणि देव, जगतजित जग कौ प्यारौ।।
नमौं ताहि कर जोरि सिरनमि, भकति भाव उरलाय कै।
सत्यधर विजया सुनदन, सीझ्यो सनमति पाय कै।।१२०।।

कथा का सार—

पोडस दिन परमान, हस कौ बालक जानै।
निज माता तै भिन्न, राखियो कुमति प्रवानै।।
पूरव भव कै माहि, ताहि तै षोडस वर्षा।
मा सौं भयो वियोग, मात नहि पायो हर्षा।।
इह उर मैं धरि भव्य जीवा, सुजन विछोहा जिन करौ।
सकल जीव हैं आप सरिखा, इह जिन आग्या उर धरौ।।१२१।।
भई तात की मृत्यु, जनम जिन लह्यो मसाना।
भयो सेठ आगमन, सेठ घरि पल्यो सुजाना।।
जषणी कौ उपगार, जक्ष से मित्र विवेकी।
वढ्यो अधिक परताप, शत्रु मार्यौ अविवेकी।।
दैव गती है प्रवल अतिही, लखौ वात परतक्ष ए।
जीवधर कौ सुनि चरित्ता, धरौ जैन मत पक्ष ए।।१२२।।
साध हुवा विन सिद्ध, हुवो नहि जग मैं कोई।
तातै साध समान, आन उत्तम नहि होई।।
गहौ साध कौ पथ, जोहि सिवपुर सुखदाई।
पच प्रकार आचार, धर्म दस लक्षण भाई।।
सजम वारह भेद धारौं, तप द्वादश विधि आचारौ।
अट्ठावीस जु मूलगुण हैं, ते नीकी विधि आदरौ।।१२३।।
उत्तर गुण चौरासि, लाख हैं आनदकारी।
सहन परीसह वीस, दोय अधिका अघहारी।।

मिथ्या मोह मदादि, तिन महैं एक न राखौ।
सम दम यम अर नेम, ध्यान अमृत रस चाख्यौ ।।

तजौ प्रमाद विषाद सारा, नाहि विवाद जु उरधरौ।
भवतन भोग विरत्त चित्ता, दिढ वैराग जु अनुसरै ।।१२४।।

जिन आज्ञा उर धारि, धरौ रतनत्रय विमला।
लखौ आपनौं रूप, शुद्ध वुद्ध जु अति अमला ।।

किये कुमरण अनत, अव धरौ परम माधी।
अक्षय पद आनद लहौ, तजि जगत उपाधी ।।

इह जीवधर चरित पूरन, भास्यो महापुरान ।
श्री सुधर्म गणधर महता, ल्याये याहि वषान मैं ।।१२५

इति श्री जीवधर स्वामि चरित्रे ससुरगृहात् निजगृहे गमन परमोत्साह, काष्टागारिक प्रछन्न कोप, मन्त्रिवचनादुपशाति, रत्नवती स्वयवर, चद्रक वेध वेधन, वरमाला गृहण, काष्टांगारिक रणोद्यम तात भृत्यान्प्रति पत्रिका प्रेषण, सुभटागम, रणे काष्टागारिक हनन, राज्य लाभ, विजया माता आगमन, सर्व कुटु व मिलन, प्रजापालन सुखानुभवन, सुरमलयोद्याने क्रीडा हेतु गमन, वरधर्म मुनि दर्शन, भ्रातृ सहित अणु व्रत गृहण, अशोक वने कपि युद्धावलोकन, ससार देह भोग निर्वेगता तत्रैव वने एकान्त स्थाने प्रशस्त वक नामा चारण मुनि दर्शन, पुनर्भव श्रवण गृहे गमन, जिन पूजारचन, सुरमलयोद्याने श्री वर्द्धमान स्वामि समवसरणाभिमन श्रवण तत्रागमन, ससुर भ्रातृ मातृ भार्यादि सहित दीक्षा गृहण, केवलोत्पत्तिमोक्ष गमन वर्णनो नाम पचमोध्याय ।।५।।

कवि परिचय—

कौंन भाति इह ग्र थ, देव भाषातै भाषा।
भयो सु सुनौं धरि चित्त, इक ठौहर राखा ।।
मध्य लोक कै माहि, सोहए जबूदीपा ।
सकल दीपकौ एह, दीप मानौं अवनीपा ।।

जामैं क्षेत्र जु भरथ है इह, ता माही षट खड है ।
पाच मलेछ जु खड कहिया, इक आरिज परचड है ।।१।।

आरिज खड मझार, देस कहिये जु अनेका ।
तिन देसनि कै माहि, देस मेवाड जु एका ।।

उदियापुर ता माहि, राजधानी अति सोहै ।
जगतसिंह महराण, पाट सीसोदिन को है ।।

मडी धान की नगर माही, जहा जैन मदिर महा ।
तहा टहलवा पडितो इक, खेतसीह नामा कहा ।।२।।

दौलतराम उकील, पुत्र आनद कौ होई ।
ढु ढाहड पतिराज, तिनौं कौ सेवक सोई ।।

वासी वसवा कौ जु, जाति कहिये जु महाजन ।
गोत कसिलीवाल, माहि खडेल जु वालन ।।

कुल श्रावक कै जनम पायो, कछुयक श्रुत परचै जिसै ।
महाराण कै निकट कूरम, महाराज भेज्यौ तिसै ।।३।।

रहै राण कै पास, राण अति किरपा करई ।
जानै नीकौ जाहि, भेदभाव जु नहि धरई ।।
सो जिन मदिर आय, वाचई जिन मत ग्रथा ।
सुनै विवेकी जीव, सरदहै जिनवर पथा ।।
कैयक कै रुचि वहुत नीकी, आगम अध्यातम तनी ।
वाचे ग्रथ कितेक तानै, सैली अति सोभित वनी ।।४।।

वाच्यो महा पुराण, वीस हज्जार सिलोका ।
जाकै अति अनूप, वीर चरित जु गुण थोका ।।
जामैं कथा रसाल, स्वामि जीवधर केरी ।
सुनि करि हरषे भव्य, स्तुति कीनी जु घणेरी ।।
तवै वोलियो अग्रवाला, वासी कालाडहर कौ ।
चतुर चतुर भुज नाम चरची, ग्रथ पथ सिव सहरकौ ।।५।।

देव भाष गभीर, ससक्कृत विरला जानै ।
पडित करै वषान, अलप मति नाहि वषानै ।।
जौ ह्वै ग्रथ अनूप, देस भाषा कै माही ।
वाचै वहुत हि लोक, या महै ससै नाही ।।
सव गिरथ की वनि न आवै, तौ इह जीवधर तनी ।
अवसिमेव करनी सुभाषा, प्रथीराज भी इह भनी ।।६।।

सुनी चतुर मुख वात, सोहि दौलति उरधारी ।
सेठ वेलजी सुधर, जाति हूमड हितकारी ।।
सागवाड है वास, श्रवण की लगनि घणेरी ।
सव साधरमी लोक, धरै श्रद्धा श्रुत केरी ।।
तिननै आग्रह करि कही फुनि, दौलति कै मन मैं वसी ।
ससक्कृत तै भाष कीनी, इहै कथा है नौर सी ।।७।।

सवत ठारहसै जु पच, आषाढ सु मासा ।
तिथि दोईज गुरवार, पक्ष सुकल जु सुभ मासा ।।
तीजै पहर सु एह, ग्रथ सुभ पूरण हूवो ।
श्री जिनधर्म प्रभाव, सकल भव भ्रमतै जूवो ।।
नदौ विरधौ जगत माही, जौ लग चद दिवाकरा ।
तिष्टौ भव्यनि के हिये मैं, नवरस वरणन तै भरा ।।८।।

इति श्री जीवधरस्वामि चरित्र सम्पूर्णं सुभ भवतु-कल्याणमस्तु ।।६।।

"भग्न पृष्ठि कटि ग्रीवा वक्रदृष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखित शास्त्र, यत्नेम् परिपाल्यताम् ।।"

———

विवेक विलास

रचना काल —१८वीं शताब्दि

रचना स्थान —उदयपुर (राजस्थान)

अथ श्री विवेक विलास भाषा

दोहा

निज धाम वर्णन—

प्रणमि परमर्स (ऋषि) शात कौ, प्रणमि धर्म गुरु देव ।
वरणौ सुजस सुसील कौ, करि सारद की सेव ॥१॥

सील व्रत कौ नाम है, ब्रह्मचर्य सुख दाय ।
जाकरि प्रगटे ब्रह्मपद, भव वन भ्रमण नसाय ॥२॥

ब्रह्म कहावै जीव सहु, ब्रह्म कहावै सिद्ध ।
ब्रह्म रूप केवल महा, ज्ञान सदा परसिद्ध ॥३॥
ब्रह्मचर्य सौ व्रत्तना, न परम ब्रह्म सौ कोय ।
व्रतिन ब्रह्म लवलीन सौ, तिरै भवोदधि सोय ॥४॥

विद्या ब्रह्म विज्ञान सी, नही जगत मे जानि ।
विज्ञ नही ब्रह्मज्ञ से, इह निश्चै परवानि ॥५॥

ब्रह्म वासना सारिखी, और न रस की केलि ।
विषै वासना सारिखी, और न विष की वेलि ॥६॥

आतम अनुभव सिद्धसी, और न अमृत वेलि ।
नही वोध सौ वलवता, देहय मोह कौ ठेलि ॥७॥

अध्यातम चरचा समा, चरचा और न कोय ।
अरचा जिन अरचा समा, नही जगत मे होय ॥८॥

चरचाकारक लोक मैं, नहि गणधर से धीर ।
अरचा कारक इन्द्र से, नाहि दूसरे वीर ॥९॥

लोक न चेतन लोक सौ, विश्वविलोक निरूप ।
निज अवलोकनि जा विषै, केवल तत्व स्वरूप ॥१०॥

परकासक दुति धार को, अति दैदप्यि जु मान ।
भाव सोइ निज दीप है, भर्यो अनन्त निधान ॥११॥

विश्व प्रदीपक भाव सौ, दीप न सुख की खानि।
क्षेत्र न कोई स्वक्षेत्र सौ, अक्षय अभय प्रवान ॥१२॥

खण्डन भाव अखण्ड सौ, परमानन्द निवास।
स्व प्रदेश सौ देश नहि, जहा अनन्त विलास ॥१३॥

पुर न अभैपुर सारिखो, जहा काल भै नाहि।
निराकार निज रूप सौ, नृप धर नाहि कहाहि ॥१४॥

पुरपति निज चिद्रूप सौ, और न दूजो भूप।
पुरपति पटरानी महा, सत्तासीन सुरूप ॥१५॥

सत्ति अनतानत सौ, अन्तहपुर नहि कोइ।
महिमा अतुल अपार सौ, सखी समूह न जोइ ॥१६॥

सखा न समरस भाव सौ, एकीभाव लखाहि।
पासवान परिणाम से, नाहि जगत कै माहि ॥१७॥

निज विशेषता शुद्धता, अति अनन्तता कोइ।
बहु विस्तीरणता सदा, ता सम सेनन होइ ॥१८॥

अति प्रतापमय भाव जे, महा प्रभाव स्वरूप।
उमरावन तिन सारिखे, अद्भुत अचल अनूप ॥१९॥

नहि प्रधान निज ज्ञान सौ, व्यापक सब मे सोइ।
नहि प्रोहित आनन्द सौ, धर्म मूरती होय ॥२०॥

नहि अनन्त वीरज जिसौ, सेनापति जयरूप।
अगम अगोचर भाव सौ, और न दुर्ग अनूप ॥२१॥

नहि गम्भीर स्वभाव सौ, खाइ अति गम्भीर।
निश्चल अजित स्वभाव से दुर्गपाल नहि वीर ॥२२॥

द्वारन आतम ध्यान सौ, अध्यातम कौ सार।
निरव्रति रूप अनूप है जग परव्रति कै पार ॥२३॥

भाव अछेद्य अभेद्य से, और न कोइ कपाट।
दरसन बोध चरित्र सौ, और न दूजो वाट ॥२४॥

भाव अनन्त चतुष्टया, तिसे न चौहट और ।
व्यापारीन सुभाव से, नहि पुर मे झकझोर ।।२५।।

सुद्ध परिणमन सारिखो, व्यापारन है वीर ।
अविनश्वरता भाव सौ, धन अटूट नहि धीर ।।२६।।

गुण परणति पर्याय निज, नाना भाव सुभाव ।
पर जातिन सम और नहि, द्वैत न भाव लखाय ।।२७।।

भावनि के हि प्रभाव जे, अति प्रभास मय जेहि ।
तिसे न परजा घर विमल, अति सुख पूरण तेहि ।।२८।।

भरचौ भाव सौ पुर महा, वसै जगत कै कूट ।
ईति भीति नही पुर विषै, नही कपट अर कूट ।।२९।।

निज अवकास बराबरी, और न है दौ रास ।
निज उद्यौत विकास सौ राज तेज नहि भास ।।३०।।

सुर नर नारिक पसुनि के, सब ही रूप विरूप ।
विघटि जाहिं क्षण एक मे, जामण मरण सरूप ।।३१।।

वस्तु अरूप समान कौ, और न रूप अनूप ।
निजपुर माहि अरुप सब, जहा न कोइक रूप ।।३२।।

मूरति सूरति याकै नहि, जगत जीवकी कोइ ।
धूरत भाव धरै महा, रागादिक वसि होय ।।३३।।

आतम भाव अमूरता, अदभुत सूरतिवत ।
राजा परजा एक से, जहा न भेद कहत ।।३४।।

आतम राजा गुण प्रजा, और न राजा रैति ।
सस्त्र न भाव प्रचड सौ, जाकरि नृप की जैति ।।३५।।

प्रबल स्वभाव वरावरी, कोटवाल नहि कोय ।
चोर न मन इन्द्रीन से, तिन को नाम न होय ।।३६।।

चोरी होय न पुर विषै, जहा न कोई चोर ।
जोरी जारी नाहि कछु, होय न कबहू सोर ।।३७।।

सार भूत निज वस्तु सौ, और न नृप भडार।
भडारी अस्तित्व सौ, और न सरवसु धार ॥३८॥

नही धनी सौं दूसरौ, सदा धनी कै पासि।
सब सामग्री जा कनै, महा सुखन की रासि ॥३९॥

शुध पारणामीक सा, नही पारषद कोय।
कदे न छाडै नृप सभा, सदा हजूरी सोय ॥४०॥

क्षायक सम्यक सारिखा, नही महाभड भाव।
राज शुद्ध भावानि को करै निकटिक राव ॥४१॥

वाधा रहित स्वभाव सौं अग रक्ष नहि वीर।
नित्य निरतर भाव से, मित्र न कोई धीर ॥४२॥

श्रेष्ठी श्रेष्ठ सुभाव सौ, नही दूसरौ और।
सोभा पुर की जा थकी, चौहट को सिर मौर ॥४३॥

सर्वोत्तम निज भाव सौ, नहि सिहासन कोइ।
तापरि राजै राजई, सब को नायक सोइ ॥४४॥

आतप हरण स्वभाव से, छत्र न कोई जानि।
निर्मल भाव तरग से चमरन दूजे मानि ॥४५॥
चेतनता निज चिह्न से, नहि निसान परवानि।
विस्व विहारी भाव से, अस्व न और बखानि ॥४६॥

मगन महा गलतान से अति उतकिष्ट स्वभाव।
तिसे न मत्त मतगजा, धरै अतुल प्रभाव ॥४७॥
रथ नहि तत्वारथ जिसे, पुरुषारथ तिन माहि।
परमारथ परिपूरणा, यामे ससै नाहि ॥४८॥
अनुचर अतिसय से नही, विचरै विश्व मझारि।
नहि शिवका शिव भाव सी, थिर अर सकल विहार ॥४९॥
सुख न अतिन्द्रिय सारिखौ, सो सुख जहा अनन्त।
दुख को नाम न दीसई, जहा देव भगवत ॥५०॥

दुख नहिं इन्द्री भोग सौ, ताको तहा न लेस ।
केवल परमानदमय, वरतै देस असेस ।।५१।।
आतम अनुभव अम्रता, तिसौ न अम्रत आन ।
खान पान नहिं ता समा, इह निश्चै परवान ।।५२।।

भोजन तृप्ति समान नहि, सदा तृप्ति वह देस ।
स्वरस सुधारस पीयवौ, नहि त्रमना कौ लेस ।।५३।।

क्षुधा तृपा बाधा नही, नही काल को जोर ।
जन्म जरा मरणादि नहिं, नही रैनि नहि भोर ।।५४।।

रागादिक रजनीचरा, तिनकौ नहि सचार ।
मोह पिशाचान पुर विषै, रोग न सोग लगार ।।५५।।

काम लोभ परपच ठग, तिन कौ तहा न नाम ।
वसै महा सुख सो सवै, आनदी अभिराम ।।५६।।

धर्म न वसतु स्वभाव सौ, धर्म रूप पुर सोय ।
राजा परजा धर्म मय, नाहि अधर्मी कोय ।।५७।।

दान न सकल प्रत्याग सौ, त्यागी सव ही भाव ।
रागी कोइ न दीसइ, वीतराग है राव ।।५८।।

सील न विमल स्वभाव सौ, जो अति उजल रूप।
सील रूप राजा प्रजा, नहिं विकार स्वरूप ।।५९।।

तप नहिं वाछा रहित सौ, तहा न वाछ्या होय ।
भाव अनन्त अपार है, जहा कुभाव न कोय ।।६०।।
निज भावन की रम्यता, वहु मनोज्ञता जोय ।
ता सम नन्दन वन नही, निज उपवन है सोय ।।६१।।
कहै अमर वन सूत्र मे, ताकौ नाम मुनीस ।
रमै अमर वन मैं सदा, चिदानन्द जगदीस ।।६२।।
सघन स्वभावनि सारिखो, अम्रत व्रक्ष न और ।
ता वन मे ते लहलहै, रमै राव सिरमौर ।।६३।।

रही वेलि विस्तरि जहा, शुद्धातम अनुभूति ।
ता समान नहि सुध लता, केवल भाव विभूति ।।६४।।

परम सुभाव पियूष फल, निज रस पूरण जेहि ।
तिन से नाहि सुधा फला, फलि नु रहे अति तेहि ।।६५।।

सदा प्रफूलित भाव से, फूलन और सुगन्ध ।
फूलि रहे महकै महा, राजै राव अवन्ध ।।६६।।

व्रछ वेलि फल फूल ए, तिन करि वन अति रम्य ।
जहा न गम्य विभाव की, वस्तु न एक अरम्य ।।६७।।

माया वेलि न है तहा, जहा न विकलप जाल ।
क्रोधादिक कंटिक नही, निज वन महा रसाल ।।६८।।

नाहि शुभाशुभ कर्म से, विष तरु विश्व मझारि ।
तिन को लेस न है जहा, दुख फल नाहि लगार ।।६९।।

दुख फल से नहिं विष फला, देहि जगत कौ पीर ।
मानफूलि से फूल विष, तहा न जानौ वीर ।।७०।।

सुख सरवर सौ सर जहा, भरचौ सहज रस नीर ।
तरवर सघन स्वभाव से, तहा विराजै धीर ।।७१।।

केवल कला कलोलनी, वहै निरन्तर शुद्ध ।
क्रीडा करै महा सुखी, राजै राजा बुध ।।७२।।
अथग स्वभाव पयोनिधी, स्वच्छ महा गम्भीर ।
तिसौ न सागर खीर है, रमै गुणाबुधि वीर ।।७३।।
अति उल्हास विलास मय, आतम सक्ति प्रकास ।
ता सम लीला और नहि, यह भासै जिनदास ।।७४।।
अचल उच्च थिर भाव सौ, क्रीडा गिर नहिं कोइ ।
क्रीडा करै कला निधी, जगत सिरोमणि सोइ ।।७६।।
ज्ञान चेतना परणती, निज सक्ती वहुनाम ।
तासौ कमला वुध कहै और न कमला नाम ।।७७।।

सिद्ध अनन्ता सर्व ही, राज करै या रीति।
निज निज भाव प्रजा सहित, विलसै सुख जगजीत ।।७८।।

जहा न जन्म जरा मरण, जहा न इष्ट वियोग।
रोग न सोग न भोग तन, नहि अनिष्ट सयोग ।।७९।।

भूख न प्यास न पाप पुनि, त्रिविध ताप नहि कोइ।
सद्रूपा आनन्दघन, वस्तु अमूरत होइ ।।८०।।

नारि न पुरषन सढ को, नाहि तृषातुर कोय।
लोक शिखर निज क्षेत्र मे, शुद्ध सिद्ध अवलोय ।।८१।।

रहित नाम वहु नाम जे, रहित रूप अति रूप।
ते हमकौ निज बोध द्यौ, चिदानन्द चिद्रूप ।।८२।।

लघुता गुरता रहित जे, सदा अगुर लघु जानि।
सिद्ध अनन्ता सर्व सम, तिन से और न मानि ।।८३।।

ते भगवन्त जिनेश्वरा, तेहि महेश्वर देव।
शुद्ध बुद्ध योगीश्वरा, करै सुरासुर सेव ।।८४।।

व ं व्यापका विष्णु ते, भजै तिनै सुर राय।
लखै ज्ञेय कौ ज्ञान मे, ताते कृष्ण कहाय ।।८५।।

सकल वस्तु अवलोकिवौ, रहिवो सब तें भिन्न।
वसिवो आतम भाव मे, कबहू खेद न खिन्न ।।८६।।

सिव कल्याण स्वरूप ते, परम ब्रम्भ परतक्ष।
सदा परोखि अज्ञान कौ, तातै कहै अलक्ष ।।८७।।

ईश्वर समरथ सार जे, परमातम परवीन।
मुक्त सर्व गत विमल ते घट घट अन्तरलीन ।।८८।।

परम पुरष परवान ते, परम जान भगवान।
महादेव महिपाल ते, हा [illegible] ।।८९।।

रहित रजोगुण राव जे, रहित तमोगुण भाव ।
रहत सुभासुभ सत ते, निर्गुण है निरदाव ॥९०॥

महा महत अनत ते, सर्व गुणनि के नाथ ।
गुण पर्याय स्वभाव गण, सदा धरचा निज साथ ॥९१॥

रमि जु रहे निज भाव मे, तातै तिनकौ राम ।
कहिये सूत्र सिधत मे, रहित क्रोध अर काम ॥९२॥

तीन भुवन के चद ते, तीन भुवन के सूर ।
तीन भुवन के नाथ ते, गुण अनत भरपूर ॥९३॥

जैसे चितामणि वहुत, सब कौ एक स्वभाव ।
तैसे सिद्ध अनत ही, समभाव दरसाव ॥९४॥

भये अनता सिद्ध प्रभु, होसी सिद्ध अनत ।
सब कौ मेरी वदना, सेवै साह महत ॥९५॥

करै आप सम दास कौं, वडे गरीव नवाज ।
रहित कामना कलपना, भजै जिनै मुनिराज ॥९६॥

निज दौलत्ति विलसै सदा, महाप्रभू निजरूप ।
बसै भावपुर मैं प्रगट, परमानद स्वरूप ॥९७॥

नाम भावपुर कौ भया, कहै अभैपुर साध ।
वसै सासतौ सुख मइ, जहा न कोइ वाध ॥९८॥

निश्चै वास स्वभाव मै, व्यवहारै जगसीस ।
उपचारै घट घट विषै, व्यापक सदा अधीस ॥९९॥

सब कौ सादि सभाव है, तातै एकहि ईस ।
कहिए ग्रथनि कै विषै, चिदानद जगदीस ॥१००॥

है अनन्त सव एकसे, तातै एकहि ध्यान ।
करै महामुनि भाव सौ, ते पावै निज ज्ञान ॥१०१॥

सिद्ध भक्ति इह भाव धरि, पढै सुनै नर नारि ।
ते निरवेद दसा लहैं, जिन आज्ञा उर धारि ॥१०२॥

निश्चै देव निजातमा, व्यवहारैं गुरदेव ।
तिरै भवोदधि ते नरा, करै निजातम सेव ।।१०३।।

जैसे चेतनराव सौ, और न दूजो राव ।
तैसे व्रत मे सील सौ, और न कोइ कहाव ।।१०४।।

।। इति निजधाम निरूपण ।।

आगै ठग ग्राम का वर्णन करै है ।

दोहा

ठग ग्राम वर्णन—

ग्राम ठगनि केतैं प्रभू, काढै त्रिभुवन राय ।
पहुँचावै निजपुर विषै, ताहि नमूं सिर नाय ।।१०५।।

रे जन तू निज नगर मे, यह ठगनि को गाम ।
ठग मोहादि अनन्त है, कौ लग कहिए नाम ।।१०६।।

मोह महा वचक कुधी, सकल ठगनि कौ राव ।
ठगै कर्म ठग सवनि कौ, मोह राव परभाव ।।१०७।।

मोह पासि सी है नही, फासी जग मै आन ।
दे फासी जग जीव कै, हरै मोह गुण प्रान ।।१०८।।

नही मोह निद्रा जिसी, दीरघ निद्रा कोइ ।
सोवै सव जग मोह वसि, ज्ञान चेतना खोइ ।।१०९।।

मोह प्रिया ममता महा, तिसी न ठगनी जोइ ।
ठगै सुरिन्द्र नरिन्द्र कौं, महा मोहनी सोइ ।।११०।।

मायाचारी मोह ठग, इसौ न जगत मझार ।
मोहै महा मुनीनि कौं, सुर नर कपा विचार ।।१११।।

वडे ठगनि मैं दोय ठग, राग दोष बिड रूप ।
तिनके भुज परताप तैं, मोह जगत को भूप ।।११२।।

राग समान न राग कर, और सिकारी कोइ ।
वस करि सुर नर पसुनि कौ, मारैं पापी सोइ ।।११३।।

हरै ज्ञान से प्राण जो, हरै ध्यान सौ माल ।
लीया कपट अर कालिमा, करै बहुत बेहाल ।।११४।।

राग प्रीया जु सरागता, जाहि कहै जग प्रीति ।
जासौं करि अप्रीति मुनि, हौंहि मुक्ति जग जीति ।।११५।।

विपै प्रीति अनुरागता, अदभुत ठगनी सोइ ।
ठग चक्र वर त्यान कौ, वचै कहा तक कोइ ।।११६।।

दोप समान न दुष्टधी, जगत विरोधी जानि ।
करै दौर त्रय लोक मे, दौरौ खरौ प्रवानि ।।११७।।

हरै शुद्धता भाव जौ, हरै दया सौ दर्व ।
महा निरदयी दुरमती, धारै अतुलित गर्व ।।११८।।

दोष प्रीया दुर्जन्यता, महा दुष्टता होय ।
ठगै जु असुरिन्द्रादि कौ, हरि प्रति हरि कौ सोय ११९।।

काम नाम ठग अति प्रबल, तासम नाहि कुचील ।
करै फैल वद फैल वहु, हरै जगत कौं सील ।।१२०।।

कवर समान जु मोह कै, महा पाप कौ धाम
ठगै देव दैत्यानि कौ, नर पसु सब कौ काम ।।१२१।।

काम प्रीया रति अति बुरी, भव भरमावै सोय ।
अनुपम ठगनी है भया, व्रत तप हरणी जोय ।।१२२।।

कटिक कोइ न क्रोध सौ हरै प्राण तहकीक ।
हरै बुद्धि सौ धन महा, वोलै वचन अलीक ।।१२३।।

उघर्डां हथ मारो इहै, महा मोह उमराव ।
करता हरता मोह कै, धारै कुवुधि कुभाव ।।१२४।।

ठगै वास देवादि कौ, रुद्रादिक कौ सोय ।
ठगै सुरासुर वर्ग कौं, वचै कहा तै कोय ।।१२५।।

क्रोध प्रिया हिंसा महा, काल रूपणी जोय ।
ठगै सवनि कौ सर्वदा, उवरै मुनिवर सोय ।।१२६।।

नाहि कठोर गुमान सौ, चढि जु रह्यो गिरमान ।
गनै तुछ सवकौ सदा, खोसै गुन से प्रान ।।१२७।।

हरै विनै धन सर्वथा, करै वहुत विपरीत ।
ताकै वलि नृप मोह खल, होय रह्यो जु अजीत ।।१२८।।

अति सम्मान गुमान कौ, मोह राज दरबार ।
ठगै फनिन्द्र महिन्द्र कौ, यह ठग असि वलधार ।।१२९।।

मान प्रीया ठगनी बुरी, नाम अह ता होय ।
अहकार लीया सदा, भयकार अति सोय ।।१३०।।

ठगै जु अहमिंद्रादि कौ, ठगै मुनिनि कौ एह ।
काइक उवरै सात धी, धारै दसा विदेह ।।१३१।।

कपट समान न कुटिल कौ, सो नृप को परधान ।
अति छल वल परपचमय, पाखडी परवान ।।१३२।।

ठगै सदा सब कौ सही, करै जगत कौं बाध ।
कोइ उवरै साधवा, करैं जु निज आराध ।।१३३।।

कपट प्रिया है कालिमा, कुटिलाई कौं धाम ।
ठगै नारदा दोनि कौ, वचै मुनी तिह काम ।।१३४।।

नही लुटेरा लोभ सौ, लूटै त्रिभुवन जोहि ।
सो सेनापति मोह कैं, अति कोडीभड होहि ।।१३५।।

सुरपति नरपति नागपति, खगपति दलपति जेहि ।
सर्व लुटावै लोभ पै, डड लोभ कौ देहि ।।१३६।।

लूटै सवकौ सर्वथा, लोभ सर्वदा वीर ।
कोइक लूटे जाहि नहिं, सतोषी मुनिधीर ।।१३७।।

लोभ प्रीया तृष्णा महा, जगत द्रोहणी सोइ।
सर्व भक्षणी पापणी, मुनि ठगनी है सोइ ॥१३८॥

काइक मुनिवर उवरै, श्री जिनवर परताप।
तजै भोग त्रिश्ना सवै, सेवै धर्म निपाप ॥१३९॥

निज प्रतीति हर भरम कर, ठग न मिथ्यात समान।
सो स्वरूप है मोह कौ, कुवुधी पाप निधान ॥१४०॥

प्रीया मिथ्यात मलीन की, महा अविद्या जानि।
ठगै थावरा जगमा, जग ठगनी परवानि ॥१४१॥

नही सोच सौ कष्ट कर, सुख हिरदै सताप।
सोच प्रीया चिंता अरति, उर जावै वहुताप ॥१४२॥

भैकारी है भय महा, मारै चहुँगति माहि।
व्याकुलता है भय प्रीया, जामैं आनद नाहि ॥१४३॥

रोग महाबल तन हरण, मरण करण दुखदाय।
आधि व्याधि रोग प्रीया, कवहु नही सुखदाय ॥१४४॥

सोक हरै आनद कौं, करै सबनि को दीन।
सो प्रीया सतप्तता, करै जगत को छीन ॥१४५॥

अव्रत और असजमा, विकथावाद विवाद।
मोह राव के रावता, हर्ष विषाद प्रमाद ॥१४६॥
सव ठग सब पासीगरा, सर्व लुटेरा नीच।
सब दौरा सब चोर ए, भरे कालिमा कीच ॥१४७॥
ऐ सब ही जु पिसाच हैं, भूत राक्षसा एह।
दैत्य दानवा दुरमती, एही असुर गनेह ॥१४८॥
ए अजगर अष्टापदा, मत मतग सिंह सर्प।
एहि व्याघ्रा है सदा, जीतै मुनि नरसिंह ॥१४९॥
ए भिडि पाव अनादिका, ए भेरुड वित्रुड।
दुष्ट एहि चीला महा, एइ मगर प्रचड ॥१५०॥

नहि सरवर सम भाव से, निज रस पूरित जेह।
कमलन भाव अलेप से, सदा प्रफुल्लित तेह ॥१७३॥

भमरन भाव रस जसे, भमैं तिनौं परि भूरि।
इहै रग वन है भया, सव कुरग तै दूर ॥१७४॥

म्रग नहिं चपल स्वभाव से, ते यामे नहि कोय।
दुष्ट भावमय दुष्ट पसु तिनकौ नाम न होय ॥१७५॥

मोह दैत्य को वाम नहि, नाहि किरात कषाय।
असुर दुराचार न जहा, लोभ चोर न रहाय ॥१७६॥

नही दभ वल छिद्र ठग, नही धूर्त पाखड ।
न परद्रोह दौरा कदे, दौर करें परचड ॥१७७॥

पाप रूप परपच नहि, इन्द्री भूत न कोय।
मदन पिसाच रहै नही, अद्भुत वन है सोय ॥१७८॥

नही एक कटिक जहा, जहा न विकलप जाल।
विष वेलि न मायामयी, सो वन महा विसाल ॥१७९॥

विष वृक्ष न अघ कर्ममय, नाहि कुपक्षि कदाचि।
जहा क जीवन एक है, रहे ज्ञान घन राचि ॥१८०॥

नहि दुख फल नहि दोष दल, नाहि विषै विषफूल।
सो वन सेय सुजाण तू, जो सब सुख कौ मूल ॥१८१॥
रागादिक रजनीचरा, विचरै तहा न कोय।
तरवर सघन स्वभाव जे, तिन करि पूरण सोय ॥१८२॥
ते स्वभाव पीयूष तरु, सदा अमर फल दाय।
यह निज वन रमणीक है, रमैं जहा निजराय ॥१८३॥
शुद्धातम अनुभूति सी, अम्रत लता न कोय।
सदा प्रफुलित भावमय, अति सुख फल है सोय ॥१८४॥
भाव भवातप हरण से, और पत्र नहि होय।
तिन करि सोभित तरलता, अदभुत वन है जोय ॥१८५॥

निरमलता सी वापिका, अर निज रस से कूप ।
निज वन तिन करि सोहइ, अम्रत मइ अनूप ॥१८६॥

केवल कला कलोलनी, जामे सरस कलोल ।
ता सम नाहि कलोलनी, निज वन माहि अडोल ॥१८७॥

या सम नदन वन नही, वदन जोगि विसाल ।
इह तीरथ निज धाम है, हरै सकल जजाल ॥१८८॥

रमै सदा या वन विषै, तेहि लहै आनद ।
या सम रमिवा जोग्य नहि, यह अति रस कौ कद ॥१८९॥

ज्ञान सपदा सासती, सो निज दौलति जानि ।
निज सपति विलस्या विना, वन केलि न परवानि ॥१९०॥

इह निज वच वर्णन वुधा, पढै सुनै जो कोय ।
निज कानन क्रीडा करण, कर्म हरण सो होय ॥१९१॥

॥ इति निज वन निरुपण सपूर्ण ॥

निज भवन वर्णन—

दोहा

भव वन सौ वन नाहि को, गहन विषम अघरूप ।
जहा न रचहु रम्यता, दीसै महा विरूप ॥१९२॥

भव वन भ्रमण निवारिकै, देय अभयपुर वास ।
वदौ देव दयाल कौं, करै आप सम दास ॥१९३॥

भैंकारी भ्रम तम भरयौ, है हिंसा कौ धाम ।
असुरन हिसक भाव से, वसै वहुत तिह ठाम ॥१९४॥

दैत्य न दुष्ट स्वभाव से, ते विचरै घन घोर ।
चोर न चाहि स्वभाव से, है तिनकौ अति जोर ॥१९५॥

दैत्य सिरोमणि निरदयी, महा मोह छलवान ।
ता सम कोइन दुरजना, सो दन पति बलवान ।।१९६।।

दुराचार सौ दूसरो, असुभ अवर नहि कोय ।
सो जुगराज महीप कै, कहा भलाई होय ।।१९७।।

राग दोष रजनीचरा, तिसे न राखिस और ।
तेहि मोह नरपति नखै, सुभटनि के सिर मौर ।।१९८।।

पाप समान पिसाच नहि, सो नृप कै परधान ।
सपत विसन सेना सपत, सेनापति अज्ञान ।।१९९।।

नहि अपराध बराबरी, महा पारधी कोइ ।
सो प्रोहित भूपाल कं, दया कहा तै होय ।।२००।।

परे जगत के जीव सहु, मोह पासि कै माहि ।
पथ नगर निरवान को, नृप चलिवा दे नाहि ।।२०१।।

करि सथान भव वन विषै, वैठो मोह भूपाल ।
काल समो विकराल नहि, सो नृप कै कुटवाल ।।२०२।।

करै राज कानन विषै, कुवुधि कुटिल कुरूप ।
मोह राव को राज सब, लखिये पाप स्वरूप ।।२०३।।

ममता पटरानी महा, मोह भूप कै जानि ।
धरै ममत्व स्वभाव सो, कुवुधि भूल परवानि ।।२०४।।

पाप अति समान को, और नही अन्याव ।
वरतै तहा अन्याव ही, मोहराव परभाव ।।२०५।।

विप व्रक्षन वसु कर्म से, जे अति कटिक रूप ।
मरण देहि भव भव विषै, छाया रहित विरूप ।।२०६।।

तिन करि पूरण भव वना, मन मरकट की केलि ।
फैलि रही माया तहा, तिसी न विष की वेलि ।।२०७।।

शुधातम अनुभुति सी, अम्रत लता न कोइ ।
महा अगोचर है जहा, मरण हरण है सोई ।।२०८।।

सदा सधन अति मगन जे, भाव सुद्ध उपयोग ।
तिनमै अम्रत तरु नही, तिनकौ दुर्लभ जोग ।।२०६।।

नाहि कुपत्र कुसूत्र से, तिनही कौ विसतार ।
नाहि सुपत्र सुसूत्र से, तिनकौ तुछ विचार ।।२१०।।

मानफूलि धनफूलि जो, राजफूलि मनफूलि ।
विषै फूलि से विष पहुप, और न जानौं मूलि ।।२११।।

फूलि रहे तेइ तहा दुखफल फलै अनत ।
दुख फल से नहि विषफला, इह भासै भगवत ।।२१२।।

सदा प्रफूलित सहज ही, जे केवल निज भाव ।
तैसे फूलन सुख मइ, तिनकौ अलप लखाव ।।२१३।।

परम भाव अति रस मइ, तिसे सुधा फल नाहि ।
ते अगम्य भव वन विषै, जिन करि सव दुख जाहि ।।२१४।।

शात भाव सौ मिष्ट जल, अम्रत रूप न कोय ।
सो भव मै मिलवौ कठिन, जा करि तिरपत होय ।।२१५।।

विषै वासना सारिखौ, और न विष जल वीर ।
सो भव वन मै वहुत है, क्षार मलिन जो नीर ।।२१६।।

भरचो कपट मय कीच सौ, जाकरि त्रिषा न जाय ।
सो पीवै वन जन सबै, मरै रोग दुख पाय ।।२१७।।

मृग त्रिशणा नहि भ्रातिसी, सो अत्यन्त लखाय ।
इह वन भ्रग तिष्णा मई, सव जन सदा भमाय ।।२१८।।

वासिनि मैं मोती दुलभ, त्यौ भव वन मैं साध ।
कोइक पइए धर्मधी, केवल तत्व अराव ।।२१९।।

गिरन कठौर स्वभाव से, तिनकी भलो न [illegible] ।
ते भव वन मै मुख्य हैं, महा कष्ठ कौ ठौर ।।२२०।।

नला न नीच प्रवृति से, रह्यो [illegible] [illegible] ।
स्यालन का परभाव से, ते [illegible] मै भूरि ।।२२१।।

अग नहिं मूरिख जीव से, फसै फासि कै माहि।
करि अनुराग जु राग सौ, व्रथा जीव सौं जाहिं ॥२२२॥

अहकार ममकार से, नाहि अहेरी कोइ।
भयकार विचरै सदा, अतक सम हैं सोइ ॥२२३॥

जाल न विकलप जाल से, इह वन जाल स्वरुप।
अति जजाल भरयो सदा, महा भष विड रूप ॥२२४॥

जीवनि के कुल जाति जे, अर नाना विधि वस।
तिन सेवा सुन और को, नहि कुभाव से कस ॥२२५॥

भरयो वस अर कस तै, अ स मात्र सुख माहि।
लुटै पथ निरवान कौ, वहु पथी विनसाहि ॥२२६॥

सम्यक दरसरण सोइ करण, ता विनु पर की आस।
घास सोइ तासौ भरयो, भव वन कष्ट निवास ॥२२७॥

नहि कटिक कोधादि से, तिन करि पूरण एह।
क्रूर भाव से सिंध नहि, भव वन तिन कौ गेह ॥२२८॥

दुरनयवादी जीव से, नाहि कुपक्षी कोय।
या ससार असार मैं, करै सोर अति सोय ॥२२९॥

नही अजगर अज्ञान सौ, ग्रसै जगत कौ जोय।
वसै सही भव वन विषै, वचै कहा ते कोय ॥२३०॥

मद अष्ठनि से और कौ, अष्टापद नहि वीर।
भव अटवी मैं ते रहै, तिनै नही पर पीर ॥२३१॥

अति उदमाद प्रमाद सौ, मत्त गयन्द न और।
सो वनगज भव वन विषै, दुष्टनि कौ सिर मौर ॥२३२॥

रहै सदा उनमत महा, काल स्वरूप विरूप।
थिर चरसे नहि वन चरा, वसै तहा भय रूप ॥२३३॥

पीडै पाप पिसाच अति, दुष्टनि कौ सरदार।
भूतन्न इन्द्री पच से, तिन कौ तहा विहार ॥२३४॥

छल छिद्रनि से और को, नाहि छलावा होय।
फिरै छलावा वन विषै, वचै कहा तै कोय ।।२३५।।

भव कातर असा रहै, अति दुष्टनि कौ वास।
नहि उलूक मिथ्यात सौ, ताकौ तहा विलास ।।२३६।।

काम लोभ परपच से, ठग नहि कोइ और।
सदा ठगै भव वन विषै, करै जगत कौ चोर ।।२३७।।

वटयारौ दौरौ बुरो, नहि परद्रोह समान।
दौर करै परधन हरै, धरै बहुत अभिमान ।।२३८।।

नहि अ घेरि सुभाव से, सुसा औ रहै वीर।
सिथिल मन्द भाव से, गेडा जानि न धीर ।।२३९।।

भय दायक भावनि से, और नहि भिडि पाव।
भव अरण्य भीतरी भया, तिनको सदा लखाव ।।२४०।।

वाधाकारी भाव से, नाहि वघेरा कोय।
हठ ग्राहक भावनि से, सूकर और न होय ।।२४१।।

अविवेकी भावनि से, महिष अरण्य न और।
इत्यादिक खल जीव गण, दीसै ठौर जु ठौर ।।२४२।।

लोक गमार अजाण जे, तिसे न साभर रोझ।
सदा रहै भ्रम भाव मैं, धरै न तप व्रत वोझ ।।२४३।।
इत उत डोलत ही फिरै, अति हि झकोला खाय।
चितवति चचल रूप जो, निश्चल कबहु न थाय ।।२४४।।
ता सम और न लौंगती, भव कातार मझार।
विचेरे भ्राति भरी सदा, धरै न थिरता सार ।।२४५।।
उडे फिरै चचल महा, जे जग के परिणाम।
तिसे नभे रू डा गरूड, तिनकौ भव वन धाम ।।२४६।।
परमहस मुनिराज से, हस और नहि कोय।
तिनकौ भव कानन विषै, दरसन दुरलभ होय ।।२४७।।

नहि सरवर सुख सरसमो, सम रस पूरित नीर ।
ताके भेदी भव्य जन, विरला जानौ वीर ॥२४८॥

नही वाय जग वायसी, जगत उडावा जोइ ।
वाजै अति असराल सो, कपै थिर चर लोय ॥२४६॥

काय टापरी वापरी, यापै टिकै न कोय ।
निज पद परवत आसिरौ, पकरै उवरै सोय ॥२५०॥

नहि कोपल सारिखी, दावानल विकराल ।
सर्व चराचर भस्म कर, महा तापमय ज्वाल ॥२५१॥

लागि रही भव वन विषै, तापै वचिवौ नाहि ।
वुझै शात रस नीर मैं, सो दुर्लभ भव माहि ॥२५२॥

निज गुर अवुधि मैं वसै, ताहि न याकौ ताप ।
तातै सकल विलाप तजि, सेवो आपनि पाप ॥२५३॥

विषै पच इद्रीनि के, कालकूट विष तेहि ।
विष कौ मूल भयकरा, भव कानन है एहि ॥२५४॥

नहि लुटेरा काल सौ, लूटै सरवसु जोहि ।
सक न मानै काइ की, हरै प्राण धन सोहि ॥२५५॥

रागादिक रजनीचरा, विचरै अह निसो वीर ।
रोकै पचम गति पथा, करै जगत कौ पीर ॥२५६॥
दैति सिरोमणि मोह कौ, राज महा विपरीत ।
छोटे कौ मोटो गिलै, वसै लोक भैभीत ॥२५७॥
पर पचक पाखड से, और दूसरे नाहि ।
तिनकौ अति अधिकार है, मोह राज कै माहि ॥२५८॥
राज करै पापी जहा, दैत्यनि कौ सिरदार ।
कैसै चालै धर्म कौं, मारग तहा जु सार ॥२५९॥
दरसन ज्ञान चरित्र से, और न निज पुर पथ ।
या मारग ह्वै तत्व कौ, पावै मुनि निरगथ ॥२६०॥

मोक्षि मारगी मुनि जिसे, और न जानौ कोय ।
मोह मान हरि ज्ञान धरि, निज पुर पहु चे सोय ।।२६१।।

सजम तप वैराग व्रत, निरव्रिति विषै कषाय ।
सवर निर्जर सुभट ए, भैहारी सुखदाय ।।२६२।।

इन सेवौ लावा नही, भव भै गनै न मूल ।
पहुँचावे निरवान ए, कवहु न ह्वै प्रतिकूल ।।२६२।।

क्षायक सम्यक केवला, वीरज और अनत ।
वर दृग वोध अनत सुख, द्वै तन भाव कहत ।।२६४।।

शुद्ध पारिणामीक ए, साथी प्रवल प्रचड ।
इन से साथी और नहि, धारै साथ अखड ।।२६५।।

नहि सेरी जिनवानि सी, दरसिक गुरसे नाहि ।
नगर नही निरवान सौ, जहा सत ही जाहि ।।२६६।।

भव कातार वहैतरी, पढै सुने जो कोय ।
सो भव कानन लघि कै, निज पुर नायक होय ।।२६७।।

लहै सासती दौलतो, फेरि जु भव वन माहि ।
उपजै मरण करै नही, निज पुर माहि रहाहि ।।२६८।।

।। इति भव वन निरूपण ।।

भाव समुद्र वर्णन—

दोहा

चिदानद चिनमूरती, चेतनराय नरेस ।
रमैं सदा सुख सिंधु मै, नमैं जाहि जोगेस ।।२६९।।

ताहि प्रणमि नमि मुनिमहा, प्रणमि सार सिद्धान्त ।
निज समुझ वर्णन करू , जा सम और न सात ।।२७०।।

चेतन सागर सारिखौ, और न सागर क्षीर ।
यह अम्रत सागर महा, हरै दाह दुख पीर ।।२७१।।
विमल भाव सौ जगत मैं, होय न निर्मल नीर ।
भरयौ विमल जल भाव सौ, गुण सागर गभीर ।।२७२।।
लहरिन परमानद सी, जामै लहरि अनत ।
नदी न निज परणति जिसी, इह भासै भगवत ।।२७३।।
वहै अखडित धार जे, निज परणति रस धार ।
ते सब निज सागर विषै, मिलै महा अविकार ।।२७४।।
रतनन दरसन ज्ञान से, है रतनाकर एह ।
भरयौ भाव रतनानि तै, अवुधि अचल अछेह ।।२७५।।
मुक्त सकल परपच तै, जे आतम परिणाम ।
ते मुक्ताफल निरमला, सागर तिनकौ धाम ।।२७६।।
उजल उत्तम भाव से, परम हस नहिं कोय ।
यह हसनि कौ सागरा, अद्‌भुत अवुधि होय ।।२७७।।
अस्ति सदा सत्ता धरै, वस्तु रूप अतिसार ।
चेतनता आनदता, ए निज भाव अपार ।।२७८।।
भाव मइ सागर यहै, भाव समुद्र कहाय ।
सुख सागर रस सागरा, नाम अनत धराय ।।२७९।।
सुख नहिं विषयादिक विषै, सुख आतम रस सार ।
मन इद्री वरजित महा, अविनासी अविकार ।।२८०।।
सुख समुद्र है सासतो, निज गुण रूप अरूप ।
लौकिक गुण तै रहित जौ, गुण सागर सद्रूप ।।२८१।।
नाहिं मगन भावानिसे, वन उपवन जग माहि ।
ते सब याकै तीर हैं, यामैं सरौ नाहि ।।२८२।।
अम्रत वेलि न लोक मैं, निज अनुभूति समान ।
सोइ फलि रहि जलधि तटि, अमरण फलर समान ।।२८३।।

जड सुभाव जलचर नही, चेतन सागर माहि।
मोह मान मन मदन छल, मगर न एक रहाहि ।।२८४।।

मृत्यु कारण दुष्टते, इन से दुष्ट न और।
रस सागर रतनागरा, नही तिनी की ठौर ।।२८५।।

धरै पक्ष मिथ्यात की, दया भाव तें दूर।
तेहि कुपक्षी नहि तहा, सागर है सुख पूर ।।२८६।।

जीभ लोलपा माछला, निठुर काछिवा जेहि।
वृथा विवादी मीडका, सागर मैं नहि तेहि ।।२८७।।

तुछ भाव जे भीगरा, कीट कालिमा रूप।
जल सर्पा जग भावजे, सागर मैं नवि रूप ।।२८८।।

जग जजाल अनेक जे, ते जल देवत जानि।
तिनकौ तहा न ठाम है, यह निश्चै परवानि ।।२८९।।

मलिन भाव ही काग जल, जलनिधि मे नहि कोय।
मद मच्छर माछर नही, अदभुत सागर सोय ।।२९०।।

पर पीडा कर क्षुद्र जे, परिणामा जग माहि।
तेहि डासरा दुष्ट धी, रस सागर मैं नाहि ।।२९१।।

विषय वासना सारिखी, नहि वासना कोय।
निज सागर मैं सो नही, सुख सागर हैं सोय ।।२९२।।

विष तरु राग विरोध से मा पासी विष वेलि।
नहि अमृत सागर नषै, सागर रस की रेलि ।।२९३।।

कृपण भाव कोडी नही, नाहि मिथ्याती सख।
द्विविधा सीप नही जहा, निज सागर मधि वीभ ।।२९४।।

विषम पवन जग वायसी, और न कोइ असार।
सो वाजै नहि जलधि मैं, उदधि अथाह अपार ।।२९५।।

वडवानल वाछा जिसी, नही विश्व के माहि।
सो नहि विमल पयोधि मे, खल नहि कोइ रहाहि ।।२९६।।

कल हसन निज केलि से, जिनकी सदा निवास।
लहि सरिम समभाव से, तिनकी सदा विलास ॥२९७॥

राज हस रिपराय से, और न जानो वीर।
क्रीडा करै सदा तहा, जहा सहज रस नीर ॥२९८॥

अवर विहगम मारगा, होंहि सुभाव विहग।
तेहि सुपक्षी जलधि मैं, लीला करे अभग ॥२९९॥

हिसा भाव नही जहा, है हसन की केलि।
सीत न ताप न रैनि दिन, जल निधि रस की रेलि ॥३००॥

क्षार भाव से क्षार जल, जलधि थकी अति दूर।
सो रतनागर सागरा, गुण अनत भरपूर ॥३०१॥

नहि विभाव वितर जहा, असुभ असुर नहि कोय।
मायाचार न चोर छल, अनुपम सागर सोय ॥३०२॥

पापाचार स्वरूप खल, परिणामा सिंघादि।
सागर तीर न पाइए, मद परिणाम गजादि ॥३०३॥

कायर चचल भाव मय, एक न कोइ मृगादि।
सागर तीर न देखिये, दोप रूप दैत्यादि ॥३०४॥

लोभ लुटेरा नहि जहा, लूटि सकै नहि कोय।
दुखदायक दुरभाव नहि, सुखसागर है सोय ॥३०५॥

क्रीडा भाव सुभाव ही, क्रीडा नाव अनूप।
क्रीडा करै पयोधि मे, परमातम निज रूप ॥३०६॥

नाम अनत पयोध के, महिमा अगम अपार।
भाव नगर के निकट ही, भाव उदधि अविकार ॥३०७॥

आतम भाव हि नगर है, आतम भाव पयोधि।
आतम राम ही राव है, यह निज घट मैं सोधि ॥३०८॥

और न भाव प्रपच कछु, केवल चेतन भाव ।
यह निज सागर वर्णना, उर धारै मुनि राव ।।३०९।।

।। इति भाव समुद्र वर्णन ।।

दोहा

भव समुद्र वर्णन—

या ससार असार मे, श्री भगवान अधार ।
तेहि उधारै गुण निधी, करै भवोदधि पार ।।३१०।।

नहि ससार समुद्र सौं, सागर और विरूप ।
यह विष सागर दुख मइ, महा भयकर रूप ।।३११।।

भोग कामना कलपना, भर्म वासना तेह ।
अति कुवासना सौं भर्यौ, भव सागर है एह ।।३१२।।

दुख सागर सद्रूप इह, है अत्यत असार ।
क्षार महा विष जलमइ, तै भव पारावार ।।३१३।।

विषै सारिखो जग विषै, और न है विष नीर ।
भव भव उपजावै मरण, देय सदा दु ख पीर ।।३१४।।

भाव कालिमा सारिखौ, कीच न जग मे कोय ।
कीच कालिमा सौ भर्यो, भव सागर है सोय ।।३१५।।

मल नहि मोह ममत्व सौं, यह मल सागर पूर ।
छल सागर छल सौ भर्यो, खल सागर सुख दूर।।३१६।।

भोग भावना अति तृषा, उपजावै सताप ।
विषै नीर सौ नहि बुझै, विरथा विषै विलाप ।।३१७।।

आतम अनुभव सारिखौ, और सुधारस नाहि ।
सो अति दुर्लभ है भया, भव सागर के माहि ।।३१८।।

लहरि न लोभ तरग सी, ते भव माहि अनत ।
विषै तरंगनि सौं भरचो, दुख दोषनि कौ कत ॥३१९॥

नदी न आसा सारिसी, आकुलता जल पूर ।
मिलै सकल भव सिंधु में, रहै जीव अति क्रूर ॥३२०॥

भवरान भ्रम सौ और को, उहै भवरण भ्रम रूप ।
भव समुद्र विडरूप अति, कहै महामुनि भूप ॥३२१॥

याकै तटि तरवर विपा, विषम भाव अघ रूप ।
तिसे कुव्रक्षन और को, कटिक रूप कुरूप ॥३२२॥

वाधा सी विष वेलि नहि, विकलप से नहि जाल ।
ते भव सागर कैं नषै, दीखै अति विकराल ॥३२३॥

वन उपवन दुख फल भरे, भव सागर के तीर ।
माया ममता मूरछा, वन देवी है वीर ॥३२४॥

अमृत तरु सम भाव जे, ते सागर तटि नाहि ।
अमरण फल कौ नाम नहि, मरण सदा भव माहि ॥३२५॥

अमृत वेलि न विश्व मैं, निज अनुभूति समान ।
सौ भव सागर सौ सदा, है अति दूर निधान ॥३२६॥

ससै विभ्रम मोहमय, धारै असुर अपार ।
अति अथाह गम्भीर है, फैकट फे न असार ॥ ३२७॥

आदि न अत न मध्य है, भव सागर कौ वीर ।
कोइक उधरै धीर नर, तिरै भवोदधि नीर ॥३२८॥

मीनन लम्पट चपल से, तिनकौ अति विस्तार ।
मीन ध्वज से धीवरन, पाय सुरूप अपार ॥३२९॥

धारचा विकलप जाल जे, भाव महा विकराल ।
पकरै चपल मन मीनकौ, करै वहुत वेहाल ॥३३०॥

नहि दादर दुरबुद्धि से, वकवादी चल भाव ।
तिनकौ तहा निवासि हैय,ह भासै मुनिराव ॥३३१॥

निष्ठुर भाव कठोर जे, तेहि काछिवा जानि ।
भर्‌यो जलचरादिक थकी, जल निधि मानि ॥३३२॥

अति आलस परमाद से, सू सि और नहिं कोय ।
कर्म वध पर वध से, नहिं तातूरिण जु होय ॥३३३॥

मगर मछ नहि काल सौ, गिलै जगत कौ जोय ।
भव सागर मैं सो रहै, वचै कहा तै कोय ॥३३४॥

महा नून अति तुछ अति, हीन दीन भव भाव ।
तेहि भीगरा जानिये, तिनकौ बहुत लखाव ॥३३५॥

कीट न विषै कषाय से, महा मलिन दुख दाय ।
काई कर्म कलक सम, और न कोई कहाय ॥३३६॥

कूड कलक कलेस मय, भव सागर भय सिंधु ।
कोइक उधरे साधवा, रहित सकल परवध ॥३३७॥

माछर मछर भाव जे, डासर दुसह सुभाव ।
सागर तीर अपार हैं, यह दुख कौ दरियाव ॥३३८॥

थलचर जलचर नभचरा, थिरचर जग के जीव ।
भर्‌यो सदा सव भूत तै, जामै वहुत कुजीव ॥३३९॥

जामरण मरण करै सदा, दुख देखै मति हीन ।
कोइक मुनिवर पार ह्वै, निज आतम लवलीन ॥३४०॥

त्रिविधि ताप सताप तुल, वडवानल नहि कोय ।
सोही भवानल भव विषै, सदा प्रज्वलित होय ॥३४१॥

जैसै जल कौ सोसइ, वडवानल जल माहि ।
तैसै इह जीवन जला, सोसै संसै नाहि ॥३४२॥

इह नाही रतनाकरा, दोषाकर दुख रूप ।
खानि महा मछानि की, मुकरा कर विडरूप ॥३४३॥

दुरनय पक्षी सारखे, नाहि कुपक्षी कोय ।
करैं तेहि अति कुसवदा, सदा सोर अति होय ॥३४४॥

रहित ज्ञान धन जडता, जे मिथ्या परिणाम ।
तिन से सख न और को, भव जल तिनकी धाम ।।३४५।।

सखोल्यो सागर यहै, महा सख अति भग ।
उतरै पार पुनीत नर, जे निसक नहि कप ।।३४६।।

कृपण अति सम लोक मैं, कौडी और न कोय ।
भर्यौ भवोदधि तिन थकी, नही रम्य है सोय ।।३४७।।

कौड्यौ सागर है सही, नही कौडी की एह ।
गुण माणिक के पारखी, तजै या थकी नेह ।।३४८।।

सीपन द्विविध व्रत सी, है द्विविध्या की खानि ।
सीपोल्यो सागर यहै, रमि वाजे गिन जानि ।।३४९।।

कागन कोइ कुभाव से, है तिनकी ह्या केलि ।
वुग नहि ठग भावानि से, तिनकी रेलि जु पेलि ।।३५०।।

जड स्वभाव जडतामई, वरजित सम्यक ज्ञान ।
नहि तिनसे जल देवता, रोकै पथ निरवान ।।३५१।।

रागादिक अति राक्षसी, दुष्ट भाव दैत्यादि ।
पाप स्वरूप पिसाच वहु, विंतर है विषयादि ।।३५२।।

ते ससार समुद्र मे, वसै सदा विकराल ।
कैसे प्रोहण चलि सकै, वहै वाय असराल ।।३५३।।

वाय न मिथ्या वायसी, जा करि जग उडि जाय ।
गिर नही थिरता भाव से, जे निश्चल ठहराय ।।३५४।।

नाहि कुपर्वत लोक मैं, कठिन भाव से कोय ।
कर्कस कटु कषाय धर, निष्ठुर निर घृण होय ।।३५५।।

तै भवसागर कै विषै, नाव विहारक वीर ।
अवरहु विघन वहौत है, यह सागर गभीर ।।३५६।।

ग्रोहगा लूटै जल विषै, सव कौ सरवसु लेय।
जल दौरा लालच महा, जग कौ वद करेय ॥३५७॥

तसकर त्रिष्णा भाव जे, चौरैं ग्रह निसि माल।
मालन ज्ञान विराग सौं, हरे जगत जजाल ॥३५८॥

ग्रभख भक्षका हिंसका, तेहि सिंघ व्याघ्रादि।
ग्रति दोषी विष का भरचा, जेहि जानि सर्पादि ॥३५९॥

सदा भवोदधि कै तटै, मद परिणाम गजादि।
विचरै कायर चचला, भाव सुसा मृग ग्रादि ॥३६०॥

वाघक भाव कुभावजे, तेहि व्याध ग्रति होय।
ग्रपराधी परिणाम जे, तेहि पारधी जोय ॥३६१॥

मूल महा दुख को सदा, भव समुद्र भय रूप।
जामैं रच न रम्यता, दीसै वहुत विरूप ॥३६२॥

है ग्रछेह ग्रघ गेह यह, लघे याहि ग्रनेह।
तजैं गेह देहादिस्यौं, मोह मुनिंद विदेह ॥३६३॥

रतनन निज गुण रतन मे, दरसन ज्ञान स्वरूप।
सत्ता चेतनता महा, ग्रानदादि ग्रनूप ॥३६४॥

ते ग्रगम्य ग्रति दुर्लभा, जिन करि रोर नसाय।
रौरन रस ग्रनरस समा, इह निहश्चै ठहराय ॥३६५॥
नही रतन की वात ह्या, कौडिन कौ व्योपार।
सख सीप वहुतो सदा, सखनि कौ सरदार ॥३६६॥
निज मणि प्रापति ग्रति कठिन, कोइक पावे धीर।
सो नर है भव सिंधु मे, तजै तुरत भव नीर ॥३६७॥
विमल भाव परकास मय, निरमल ज्योति सरूप।
ते मुक्ताफल जानियै, वस्तू ग्ररूप ग्रनूप ॥३६८॥
तिनकौ दरसन दुर्लभा, भव सागर कै माहि।
उज्जल उत्तम भाव जे, हस न यहा रमाहि ॥३६९॥

नाव न मुनि व्रति सारिखी, विरकत भाव निवान।
मंडित मूलोत्तर गुरानि, पहुँचावै निरवारा ॥३७०॥

नाम नाव ही कौ महा, भाषै लोक जिहाज।
जति व्रत रूप जिहाज मैं, राजे श्री मुनिराज ॥३७१॥

छिद्ररा दूपरा ग्रहरा से, ते न नाव कै कोय।
इह अछिद्र नौका महा, भव जल तारक होय ॥३७२॥

संग रहित संजम मई, जब वाजै सुच वाय।
जति व्रतरूप जिहाज तव, भवसागर तिरिजाय ॥१७३॥

खेवटिया न गुरु समा, जिनके नाहि प्रमाद।
आप तरै तारै रखी, रहित विषाद विवाद ॥३७४॥

श्री भगवान मुजान से, और न सारथवाह।
भवसागर भय रूप मैं, तेइ करै निवाह ॥३७५॥

नित्य स्वरूप विलास सौ, वरदवान नहि वीर।
निज चेतन धन ले मुनि, पहुँचे निजपुर धीर ॥३७६॥

धर्म नाव गुर खेवटया, सारथवाह जु देव।
यह वरएान व्यवहार है, निश्चै आतम एव ॥३७७॥

आतम भाव अनूप जो, ता सम और न दीप।
भव सागर कै पार है, दिपै सदा दैदीप ॥३७८॥

ताहि कहैं निरवान अर, मोक्ष हु कहै मुनिंद।
कहै अभैपुर भावपुर, सिवपुर कहैं अतींद ॥३७९॥

ए निजपुर के नाम सव, फवै जाहि सव वोय।
नग्र निरूपम निर्मला, है निरलेप अछोय ॥३८०॥

वसै दीप सब कै सिरै, जहा न जम कौ जोर।
चोर न जोर न जार कौ, होय न कवहू सोर ॥३८१॥

दौलति रूप अनूप सौ, दीप दोष तै दूर।
संपति ज्ञान विभूति जो, हैं तातै भरपूर ॥३८२॥

निजपुर वासी होय कै, भाव ममुद्र विलास ।
लहैं भवोदधि तैं सदा, दूर रहैं सुवरास ।।३८३।।

भव समुद्र भव वन इहै, एहि भाव नल रूप ।
अध कूप विडरूप इह, तिरैं महामुनि भूप ।।३८४।।

भव समुद्र वर्णन भया, उर धारैं जो धीर ।
सो न परैं भव सिंधु मैं, तिरैं तुरत भव नीर ।।३८५।।

।। इति भव समुद्र वर्णन ।।

दोहा

ज्ञान निरूपण—

अचल अटल अति विमल है, जगदीस्वर जस रासि ।
ताहि प्रणमि नमि सूत्र कौं, श्री गुरु गुण परकासि ।।३८६।।

भाषौ सुथिर सुभावमय, गिरवर अचल सुभाव ।
क्रीडानिधि क्रीडा करे, जा परि चेतन राव ।।३८७।।

अचल सुथिर सुभाव से, क्रीडा गिर नहि कोय ।
रतनाचल रम्याचला, ताहा न कटिक जोय ।।३८८।।

अति उतकिष्टे उत्तमा, उच्च सवनितै जेहि ।
अचल भाव ते अचल है, और न अचल गनेहि ।।३८९।।

रतन न निज गुण रतन से, अस्ति स्वभाव अनत ।
चेतनता आदिक महा, थिर गिर माहि रहत ।।३९०।।
परम पुनीत पदार्थ जे, है तिनकौ यह थान ।
जहा मगन भावानि से, सघन वृक्ष रसवान ।।३९१।।

भरचो मदा रस वस्तु तैं, अम्रत रूप अनूप ।
जहा कुपक्षी एक नहि, चचल भाव स्वरूप ।।३९२।।

उज्जल निर्मल भाव से, परमहम नहि और।
इहै ज्ञानगिर धर्मगिर, है हमनि की ठौर ॥३९३॥

निज धारा कल्लोलनी, वहै अखडित धार।
ता सम ए तटिनि और नहि जाको पार न वार ॥३९४॥

सो उतरै या गिर थकी, सुख सागर कै माहि।
सदा समावै सासती, यामैं ससै नाहि ॥३९५॥

गिर परि समरस सरवरा, गिर निज पुर कै पासि।
सदा ज्ञान अनुभूतिमय, वेलि रही परकासि ॥३९६॥

सदा प्रफुल्लित भावमय, फूल रहे अति फूलि।
महा सुधारस भावफल, फलै हरै भ्रम भूलि ॥३९७॥

क्रोध अगनि कामागनी, लोभ मोह मय आगि।
देखत ही भावाचला, तुरत जाहि सब भागि ॥३९८॥

ज्ञानागनि ध्यानागनी, धूम रहित परकास।
तेज अगनि प्रज्वलित है, जा करि भर्म न भास ॥३९९॥

धूम न कर्म कलकसौ, ताकौ तहा न नाम।
नही वाय चल भाव मय, यह परवत निज धाम ॥४००॥

दुष्ट कठोर कुभावजे, पाहण तेहि बखाण।
यह क्रीडा गिर थिर गिरा, रमणाचल कहवाय ॥४०१॥

या गिर मैं नहि पाहणा, ककर कोइ न होय।
क्षुद्र रक भावानि से, ककर और न जाण ॥४०२॥

वहै व परि सुसगता, तिसी न सुन्दर वाय।
है रतननि कौ पर्वता आपहि माहै सोय ॥४०३॥

अति हि कृपणता नान्हपन, जाचकता जग माहि।
तिसी न नान्ही काकरी, ते या गिर परि नाहि ॥४०४॥

सठ पसु नहि कामीनि से ते गिर परी न लगार।
दुष्ट पसु न पिसुनानी से, तिनकौ नहि सचार ॥४०५॥

पसु न कहावै पापिया, गहै दोष पर जेहि ।
पिसुन न पेखै पर्वता, थिरता रूपक देहि ।।४०६।।

गिर परि हिंसा नाम नहि, नहि हिंसा परिणाम ।
यह पहार निज धाम है, रमैं आतमा राम ।।४०७।।

खल नर खल तिर खल असुर, लखि न सकै गिरराज ।
दिव्य भाव निज तेहि सुर, तिनके तहा समाज ।।४०८।।

फूलि रहे भावा कमल, अमल अलेप स्वरूप ।
समरस सरवर कै विषै, थिर गिर परि सद्रूप ।।४०९।।

निज रस वेदक भावजे, तेहि भमर भ्रम दूरि ।
ते रमणाचल उपरैं, रमैं सदा भूरपूरि ।।४१०।।

आतम अनुभव केलिसी, और न कोइल कोइ ।
सो गिर ऊपरि है धनी, अति सुखदायक सोय ।।४११।।

माया जाल न है तहा, जहा न विकलप जाल ।
विष तरु अध कर्मन जहा, पर्वत वहुत विसाल ।।४१२।।

विष वेलि न ममता तहा, समता अतुल अपार ।
जे विषफल दुख दोष मय, गिर परि ते न लगार ।४१३।।

नही काल अजगर जहा, और न अघकर कोइ ।
है सुखकर इह पर्वता, निजपुर निकट हि होय ।।४१४।।
नहिं कटिक क्रोधादिका, नहि मन मरकट केलि ।
मोर प्रमोद स्वभाव से, तिन की रेल जु पेलि ।।४१५।।
गुफा ज्ञान मय ध्यान मय, तिन करि सोभित एह ।
सिखर सुधा भावानि से, धारै अचल अछेह ।।४१६।।
या पर्वत की तलहटी, शुभाचार शुभ रूप ।
अशुभ दैत्य दूरै रहैं, थिर गिर अमल अनूप ।।४१७।।
महा मुनिंद्र गिरद्र परि, राजै शात स्वरूप ।
रहैं राज हसा सदा, आतम राम अनूप ।।४१८।।

सुख की वात अनन्त है, दुख की एकहु नाहि।
यह सुख सिखरी सर्वथा, नहिं भव सागर माहि ॥४१६॥

इहै भाव गिर भूप गिर, भाव नगर कै पासि।
विना अभैपुर थिर गिरा, नहि भव वन मैं भासि ॥४२०॥

इह निज क्रीडा गिर कथा, उर मैं धारै सत।
सो क्रीडा गिर उपरै, क्रीडा करै अनत ॥४२१॥

क्रीडा नाम न और को, क्रीडा निज अनुभूति।
जो निज सत्ता मैं रमै, विलसै ज्ञान विभूति ॥४२२॥

वस्तु अमूरति चेतना, है अनूपम अविकार।
आपहि निज गिर निजपुरा, आपहि सिघु अपार ॥४२३॥

आपहि निज सर निजवना, आपहि है रसकूप।
निज विभूति वापी विषै, केलि करै चिद्रूप ॥४२४॥

॥ इति ज्ञान निरूपण ॥

दोहा

गर्व गिरि वर्णन—

मोह न मान न मनमथा, मन न वचन नहि देहि।
गेह न नेह न राग रिस, राजै राव अछेह ॥४२५॥

ताहि प्रणमिन भारती, अनेकात अविकार।
भापौ मान मही धरा, नमि मुनि सजमधार ॥४२६॥

नही मान गिर सारिखौ, और विष गिर कोध।
महानीच यह गर्व गिर, नीचन को घर होय ॥४२७॥

नर्दय दुष्ट स्वभाव से, और न खल तिरजच।
या परवत परि वहु रहै, जिनकै दया न रच ॥४२८॥

क्रूर दिष्टि कोपाधिका, तेहि केसरी आदि ।
जानहु भाव विकार मय, विष भरिया सरपादि ।।४२९।।

उडते रहैं विभाव मैं, धरहि कुपक्ष कुभाव ।
तेहि कु पक्षी हिंसका, तिनकौ तहा प्रभाव ।।४३०।।

कायर चपल सुभाव जे, वन पसु तेहि मृगादि ।
विचरैं गिर परि मैं भरे, भावहि विषय त्रिणादि ।।४३१।।

पातिक से नहि पारधी, अति परपच स्वरूप ।
ते परवत परि अह निसी, फिरै महा विडरूप ।।४३२।।

कठिनि कठोर स्वभाव से, और न पाथर जोय ।
है पाथर कौ पर्वता, रतन कहा ते होय ।।४३३।।

कुटिल कुव्रत्ति कुभाव से, ककर कोइ न और ।
प्राणिनि कौं पीडा करैं, यह गिर तिनकी ठौर ।।४३४।।

औरन कौ नीचै गनै, इहै नीच व्रति होय ।
क्षुद्र व्रति ने काकरी, नान्ही निश्चै जोय ।।४३५।।

पाथर काकर काकरी, तिनसौं भरचौ पहार ।
महाकष्ट कौ थान इह, तू मति करै विहार ।।४३६।।

है कटिक क्रोधादिका, मद गिर माहि अपार ।
सदा विपक्षी ह्या रहैं, मिथ्यात्वादि विकार ।।४३७।।

सोर विपक्षनि कौ सदा, सोर पसुनि कौ वीर ।
जोर कुजीवनि कौ तहा, जहा न अमृत नीर ।।४३८।।

नहि अविद्या सारिखी, विषवल्ली विषरूप ।
सो गिर परि विस्तरि रही, दुखदायक दुख रूप ।।४३९।।

जाल न माया जाल सौ, यह गिर जाल स्वरूप ।
भरचो आल जजाल कौ, विकलप रूप विरूप ।।४४०।।

विष तरवर नवि भाव से, धरै अनेक विकार ।
यह विष वृक्ष मइ सदा, गरव पहार असार ।।४४१।।

है विपफल नरकादि जे, यह गिर विपफल रासि ।
सुभ को लेस न है इहा, नहि गुण मणिया पासि ।।४४२।।

विषै फूलि धन फूलि से, और न विप के फूल ।
फूलि रहे तरु तिन थकी, तहा जाय मति भूल ।।४४३।।

सदा कुपत्र परे इहा, महा अपात्र स्वरूप ।
मिथ्या सूत्र कुवाय तै, उडे फिरै जड रूप ।।४४४।।

नहि अध्यातम तन्त्र से, अमृत तरु गिर माहि ।
नहि अध्यातम व्रति मी, अमृत वायु लखाहि ।।४४५।।

नाहि मानगिर कै विषै, सदा प्रफूल्लित भाव ।।
नाहि सुधाफल परमफल, यह गिर विषम लखाव ।।४४६।।

नाहि शुद्धता सारिखी, गिर परि अमृत वेलि ।
विमल भान हसानि की, तहा न कवहू केलि ।।४४७।।

नहि अमृत सरवर जहा, समरस भाव सुरूप ।
भरे शात रस नोर तै, दाह हरण सद्रूप ।।४४८।।

भाव अलेय अछेय से, तहा सरोज न कोय ।
सर विनु होय सरोज क्यों, यह निश्चै अवलोय ।।४४९।।

भावरसज्ञ से विज्ञसे, भमर न भमै कदाचि ।
काहै मद गिर ऊपरै, रहे मूढ जन राचि ।।४५०।।

नही मगनता भाव मय, या परवत परि मोर ।
नहि कोइल कलकठ ह्या, अमृत धुनि मन चोर ।।४५१।।

या गिर तै नहि नीसरै, अमृत सरिता सार ।
ज्ञानामृत धारामइ, आनदी अविकार ।।४५२।।

या गिर तै आसा नदी, वाछा रूप विसाल ।
निकलै ममता मूरती, मानो परतखि काल ।।४५३।।

इहा भरे दुख सरवरा, विष जल तै विकराल ।
विचरै चोर निरतरा, मन इद्री असराल ।।४५४।।

ठग न धूर्त भावानि से, इहै ठगनि को थान ।
पर बाधक अपराध मय, वसै व्याध बलवान ।।४५५।।

असुर न असुभाचार से, दुराचार के राय ।
यह असुरनि कौ आश्रया, असुराचल कहवाय ।।४५६।।

दैत्य दानवा दुष्ट जन, दगादार सौ काहि ।
परदुख दायक दुरित धर, रहैं बहुत गिर माहि ।।४५७।।

नहि पिसाच पापानि से, भूत न भर्म समान ।
विंतर नहि विपरीत से, तिनकौ घर गिर मान ।।४५८।।

इह भूतनि कौ पर्वता, है दैत्यनि को केलि ।
सदा पिसाचनि कौ पुरा, रहे निसाचर खेलि ।।४५९।।

रागादिक रजनीचरा, परवत के सिरदार ।
मोहासुर असुरेस कौ, जिनकी भुज पर भार ।।४६०।।

मदगिर मैं माया गुफा, करै मूर्छा भाव ।
द्रोह सिखर सर्से मइ, तहा धरै मति पाव ।।४६१।।

महा वधिक वाधा करा, पशू धार का क्रूर ।
विचरै दुर्जन भाव अति, यह गिर सुख तै दूर ।।४६२।।

यहै पापगिर तापगिर, कबहू न क्रीडा जोगि ।
वसै रौद्र भावादिका, पसु नर असुर अजोगि ।।४६३।।

मगलकारी मूलि नहि, सवै अमगल भाव ।
यहै विघन गिर विषम गिर, धारै बहुत विभाव ।।४६४।।

काम अगनि क्रोधागनी, लोभानल विकराल ।
दोष अगनि दुख अग्नि अति, काल अगनि असराल ।।४६५।।

मोह अगनि सब मैं सरस, जा करि जगत जलाय ।
यनसी अगनि न लोक मैं, भव भव ताप कराय ।।४६६।।

सप्तार्चा सही, विनु समरस न बुझाय ।
सो समरस नहि गिर विषै, सदा अगनि भवकाय ।।४६७।।

यनसी नाहि दवानला, नहिं वडवानल होय।
नहि वज्रानल विश्व मैं, नहि प्रलयानल कोय ॥४६८॥

मोहादिक मोटी अगनि, सदा प्रज्वलित रूप।
यह गर्व गिर अगनि मय, दाह रूप विड रूप ॥४६९॥

भ्राति समान न वाय को, वाजै जहा असार।
कहिए झंझा जाहि कौं, धारै महा विकार ॥४७०॥

नहि वन उपवन सुखमई, इहा न रस कौ नाम।
इहे मान अज्ञानमय, नही ज्ञान को काम ॥४७१॥

लघि मान गिर मुनिवरा, लेय भाव भड लार।
पहुँचे निजपुर धीर धी, जहा न एक विकार ॥४७२॥

यहै मान गिर दोष गिर, भव वन माहि अनादि।
सिवपुर सौं दूरी सदा, जहा वसै विरसादि ॥४७३॥

मानाचल की तलहटी, समल सुभाव समस्त।
मानाचल के आसिरौ, होय ज्ञान रवि अस्त ॥४७४॥

वर्णन गर्व पहार कौ, पढै सुनै जो कोय।
सो मद गिर परि नहि चढै, बढै ज्ञान सुख होय ॥४७५॥

॥ इति गर्व गिर वर्णन ॥

दोहा

निज गगा वर्णन—

गुण समुद्र गुणनायको, सतजन सेवै जाहि।
सो सर्वेसुर सनमति, नमसकार करि ताहि ॥४७६॥

निज सरिता वर्णन करू, जामैं स्वरस प्रवाह।
जाहि लखे सब दुख मटै, उपजै अतुल उछाह ॥४७७॥

नित्य निरंतर निर्मला, निज परणति रस धार।
वहै अखडित धार जो, ता सम नदी न सार ॥४७८॥

केवल कला कलोलनी, सदा सहज रस पूर।
रमैं जा विषै राग हर, निज रसिया भ्रम दूर ॥४७९॥

नहि तरगनि रग जसी, उठै तरग अपार।
नही अत तटिनि तनौ, यह तटिनी अविकार ॥४८०॥

तट अनेकता एकता, ए द्वय अदभुत रूप।
भरी शात रस नीर तैं, नदी अनूप सिवरूप ॥४८१॥

पक न पाप समान को, या मैं पक न लेस।
हरै पाप सताप सहु, सरिता रहित कलेस ॥४८२॥

रक भाव जे झीगरा, नाहि नदी मैं कोय।
डासर माछर विकलपा तिनकौ नाम न होय ॥४८३॥

जडता भाव जु जलचरा, ते न कदाचित जानि।
जल देवत जग भावजे, कवहु तहा न मानि ॥४८४॥

मगरमच्छ नहि मोह सौ, महा पाप कौ धाम।
सो न पाइए ता विषै, रमै निजातम राम ॥४८५॥

मिथ्या मारग पक्ष घर, तेहि कुपक्षी क्रूर।
तिनतैं रहित महानदी, सर्व दोप तैं दूर ॥४८६॥

है निकलक निराकुला, अमृत रूप अवाध।
निज गगा तासौ कहैं, निज रस रसिया साध ॥४८७॥

कर्म कलक समान को, और न होय कलक।
कर्म भर्म हरैं नदी, सेवै साधु निसक ॥४८८॥

ककर भाव कठोर जे, कृमि कुभावना रूप।
ते न कदे धारै नदी, अमृत रूप अनूप ॥४८९॥

लोलुपता मय मीन जे, कूरम करकस भाव।
दुरवादी दादर भया, सरिता मैं न लखाव ॥४९०॥

सरिता तटि तरवर सघन, मगन भावमय होय ।
विपतरु रूप न भाव खल, कटिक एक न कोय ।।४९१।।

समता रूप लता महा, जिसी न अमृत वेलि ।
सो तटनी तटि लहलहै, है हसनि की केलि ।।४९२।।

शुद्ध स्वभावमइ महा, परम हस मुनिराय ।
तजे न तटिनी को तटा, भव आताप बुझाय ।।४९३।।

माया वेलि न विपमइ, नही कलपना जाल ।
नाहि कलिमा कीट अर, सर्सै रूप सिवाल ।।४९४।।

उठै परम द्रह माहि तै, मिले महोदधि माहि ।
इह अमूर्ति गगा भया, चेतन पुरुप लहाहि ।।४९५।।

नाहि रजोगुण रूप रज, नाहि तमो गुण मैल ।
नदी निकट नहि नीच नर, नाहि कोइ वद फैल ।।४९६।।

नदी अनादि अनत इह, छेह न जाको होय ।
वहै भाव की भूमि मैं, विरला वूझै कोय ।।४९७।।

सरिता सत्ता रूप यह, अति कल्लोल स्वरूप ।
केलि ठौर चिद्रूप की, एक न जहा विरूप ।।४९८।।

महा रतन की खानि इह, महा सुखनि की खानि ।
गुण मानिक की रासि इह, रस रूपा परवानि ।।४९९।।

हरै जनम मरणादि भय, हरै पाप सताप ।
हरै रोग रागादि सहु, यह तीरथ निहपाप ।।५००।।

याहि गगन गगा कहैं, निज रस रसिया धीर ।
मगन होंहि जे या विपै, ते न लहै भव पीर ।।५०१।।

निरमल नभ सम रूप निज, तामै करै विहार ।
तेहि विहगम दुर्लभा, सरिता तीर अपार ।।५०२।।

कमल समान कलक विन, विमल भाव जे होय ।
तेइ सरिता मैं रमै, अदभुत सरिता सोय ।।५०३।।

नांहि प्रपच स्वरूप ठग, मायाचार न चोर।
लोभ लुटेरा नहि जहा, नही काहू कौ जोर ।।५०४।।

मान मनोभव मन महा, मै वासी भव माहि।
ते तटिनी तटि दुरमती, कबहू दौरै नाहि ।।५०५।।

आसा रूप जु आसुरी, असुभ असुर जे कोय।
वाछा रूप जु विंतरी, विंतर विषय जु होय ।।५०६।।

रसना रक्ति जु राक्षसी, रक्ष सरोज जु धूत।
भ्राति रूप जो भूतनी, भर्म स्वरुपी भूत ।।५०७।।

दुरजनता जो दैत्यनी, दैत्य दंभ दोषादि।
पातक व्रति पिसाचनी, फुनि पिसाच पिसुनादि ।।५०८।।

एनहि निज सरिता नषै, सरिता निज पुर पास।
इनि पापिनि कौ सर्वथा, भव वन माही वास ।।५०९।।

क्रूर भाव जे केसरी, व्याघ्र विभाव स्वरुप।
व्याधि रुप जे व्याध खल, हिंसक महा विरुप ।।५१०।।

अर अपराधी पारधी, अति निरदय परिणाम।
विषै दर्प सर्पादि फुनि तिनकौ तहा न काम ।।५११।।

फूलि रहे तटनि तहीं, भाव प्रफुल्लित फूल।
भमैं विचक्षण भाव अलि, रसिक भाव के मूल ।।५१२।।

है निज धाम नदी महा, रमैं आतमाराम।
सुधा रूप सरिता यहै, सतनि कौ विश्राम ।।५१३।।

गुण अणत मणिकी महा, ऊर्मि मालिनी खानि।
परम स्वरूप पयोधि मैं, करै प्रवेस प्रवानि ।।५१४।।

निज अनुभूति अनूपमा, अमर दौलति होय।
निज अनुभूति लख्या विना, सरिता केलि न कोय ।।५१५।।

निज समीप गगा सदा, वहै अखंडित धार।
करै सनान जु ता विषै, सो पावै भव पार ॥५१६॥

॥ इति निज गगा निरूपण ॥

दोहा

आशा वैतरणी विष नदी वर्णन—

आसा नाहि वरै प्रभू, सब वाछा तै दूर।
वदी परमानद जो, गुण अनत भरपूर ॥५१७॥

विष कल्लोलनी विश्व मैं, नहि वाछा सी कोय।
विष नहि विषै विचार सौ, भव भव दुख दे सोय ॥५१८॥

आसा सी न तरगनी, त्रिषा सी न तरग।
भवर न ससै सारिखौ, नहि तिरिवे कौ ढग ॥५१९॥

भरी चाह विष नीर तै, नही ताप हर एह।
कपट कीच कालिम मइ, भवि जन करै न नेह ॥५२०॥

विकलप सकलपानि मे, और नही दुख रूप।
सो द्वय तट धारै सदा, आसानदी विरूप ॥५२१॥

विष वन विषम विभाव से, और नही जग माहि।
सो याके तटि दीसइ, जिनमैं छाया नाहि ॥५२२॥

विष वेलिन ममता जिसी, सो आसा कै तीर।
फलै सदा दुख विषफला, जहा न अमृत नीर ॥५२३॥

उपजावै जडता इहै, राग दोष की खानि।
क्षार महा दुरगध है, प्राण हरा परवानि ॥५२४॥
वाजै जहा विरूप अति, आति रूप जगवाय।
सोइ उडावै जगत कौ, इह भासै मुनिराय ॥५२५॥

निकसै गिर अभिलाष तै, आसा तटिनि एह ।
पइसै सागर सोच मैं, धारै अति सदेह ॥५२६॥

वहै सदा भव वन विषै, आसा अति असराल ।
रोकै सिवपुर कौ यथा, नदी महा विकराल ॥५२७॥

मोखहू की आसा महा, मोख मोह दे नाहि ।
कैसै भव भोगानि की, आसा दोष हराहि ॥५२८॥

आसा आकुलता भरी, वाछा विकलप रुप ।
त्रिशना ताप मई महा, तजै सदा मुनि भूप ॥५२६॥

तुछ व्रति झीगर जहा, भाव लोलपी मीन,
मीडक वाचाली तहा, व्रथा वकै मति हीन ॥५३०॥

भाव कठोर जु काछिवा, कृमि कुभाव मय मानि ।
कीट कालिमा सौ भरी, आसा नदी प्रवानि ॥५३१॥

काम क्रोध लोभादि से, और न धीवर नीच ।
ते डारै भ्रम जाल खल, आसा तटनी बीच ॥५३२॥

मृत्यु समान ना लोक मैं, महा मगर नहि कोइ ।
विचरै आसा मैं सदा, निगलै सबकौ सोइ ॥५३३॥

तिमर सारिखै तिम नही, तिनकौ तहा निवास ।
जड सुभाव जलचर घने, करै आस मैं वास ॥५३४॥
नाहि अविद्या सारिखी, जलदेवी खल भाव ।
वसै आस मैं सासती, धारै अतुल कुभाव ॥५३५॥
मैं वासी नहि मोह सौ, मारे मारग मोष ।
दौरे दुष्ट सदा जहा, हरै प्राण धन कोष ॥५३६॥
नाहि विभावनि मे भया, जग मैं वितर कोय ।
वसै आस मैं सासती, इह निश्चै अवलोय ॥५३७॥
पर वस्तुनि के ग्राहका, अभिलाषी परिणाम ।
तिन से चोर न वचका, आसा तिनकौ धाम ॥५३८॥

कुपख धारका कुसवदा, जेहि कुपक्षी क्रूर ।
ते सव आसा तीर है, दया भाव तै दूर ॥५३६॥
हिंसक कुटिल कुभाव जे, ते मिधादिक जीव ।
सदा आस तटिनी तटै, विचरै महा कुजीव ॥५४०॥
सर्पन कंदर्पादि से, तिनकौ तहां निवास ।
सदा कुवस्तुनि सौं भरी, यहै तरगणि आस ॥५४१॥
मल नहि राग विरोध से, आसा अतिमल पूर ।
विमल भाव हंसा महा, ते तटिनी तै दूर ॥५४२॥
आसा तटि मुनिवर महा, रहै न कवहू धीर ।
अति अपराधी पारधी, विचरै दुर्जन कीर ॥५४३॥
वैतरणी हू न या समा, आसा नदी असार ।
उतरै कोइक साधवा, महाव्रती अणगार ॥५४४॥
अध्यातम विद्या जिसी, और न उत्तम नाव ।
पार उतारै सो सही, वायु विराग प्रभाव ॥५४५॥
वैठन हारे नाव के, सम्यक दृष्टि धीर ।
तिन से तेरू और नहि, ते उतरै भव नीर ॥५४६॥
आसा मै वूडे घने, वूडैगे जु अनत ।
पार उतारै मुनिवरा, कोइक सजमवत ॥५४७॥
गुण नहि दरसन ज्ञान से, तिन करि जकरी नाव ।
रहित परिग्रह भार तै, उतरै गरु प्रभाव ॥५४८॥
तिरि आसा मुनिवर महा, त्यागि जगत जजाल ।
वसै निराकुल होय कै, निजपुर मै ततकाल ॥५४९॥
निजपुर सौ नहि कोइ पुर, जहा काल भय नाहि ।
गुण अनत निज पुर विपै, सुख अनत जा माहि ॥५५०॥
इह आसा कल्लोननी, सकट रूप सिवाल ।
कटिक विषै कषाय से, वहुत कलपना जाल ॥५५१॥

तहां जाय मति मित्र तू, तजि आसा कौ तीर।
विष सरिता आसा जिसी, और न जानौ वीर ॥५५२॥

इह आसा वर्णन भया, जे धारै उर माहि।
ते वूडै नहि आस मैं, सुख संतोष लहाहि ॥५५३॥

निज दौलति अविनश्वरा, सत्ता रूप अनूप।
विलसै चेतनपुर विषै, चिदानद चिद्रूप ॥५५४॥

॥ इति आसा वैतरणी विष नदी वर्णन ॥

——

दोहा

भाव सरोवर वर्णन —

सुख सरवर मैं जो रमैं, दमैं दोष दुख देव।
नमैं नाग नरनाथ मुनि, करै सुरासुर सेव ॥५५५॥

ताहि प्रणमि नमि भारती, भाषित भगवत भूप।
करि प्रणाम गुरु देव कौ, भाषौं निज सररूप ॥५५६॥

सरवर समरस सौ नही, भरयौ सहज रस नीर।
तरवर सघन स्वभाव से, तहा विराजै धीर ॥५५७॥

अति सोभित सुख सरवरा, हरै दाह दुख दोस।
पालि जु सत्ता सारिखी, अचल अटल निरदोस ॥५५८॥

इह सर सत्ता माहि है, उठै लहरि आनंद।
वस्तु न दूजी जा विषै, केवल परमानद ॥५५९॥

कीच न कर्म कलक सौ, नहि कलक कौ काम।
या सम अम्रत सर नही, यह सरवर निज धाम ॥५६०॥

नीर जु निर्मल भाव सौ, जा करि तृषा बुझाय।
इह सरवर सूकै नही, रस भरपूर रहाय ॥५६१॥

भाव अलेप अछेप से, अदभुत अबुज होय।
सदा प्रफुल्लित सर विषैं, तिन से कमलन कोय ॥५६२॥

निज लक्षण मय लक्षमी, भाव सरोजनि माहि।
वसैं सदा सुख भासती, जा सम कमला नाहि ॥५६३॥

सुख नहि निर-विकलप समो, आतम अनुभव रूप।
जहां न इंद्री मन वचन, बुधि न वस्तु अनूप ॥५६४॥

केवल अनुभव केलि सी, और न अम्रत वेलि।
परम भाव फल फलि रही, निज सर तटि रस रेलि ॥५६५॥

भमर जु भाव रसज्ञ से, अति रस रसिया जेहि।
भाव अलेप सरोज परि, केलि करैं निति तेहि ॥५६६॥

हंस न उजल भाव से, स्वपर विवेकी वीर।
यह हंसनि को सरवरा, हिंसा हर गभीर ॥५६७॥

परमहंस मुनिराज जे, भ्रम न धरें कलंक।
ते यामैं क्रीडा करैं, निस वासर निहसंक ॥५६८॥

सार भाव से सारिसा, तजैं न इह सर कोइ।
चकवा चेतन भाव से, कबहु न विरही होय ॥५६९॥

जहां निसा नहि भ्रांति मय, चकवी कौ न वियोग।
नहि चकवी निज शक्ति सी, रहै सदा सजोग ॥५७०॥

ज्ञान भान भासिजु रह्यौ, जाको अस्त न होय।
यह अदभुत सरवर भया, वरणि सकैं नहि कोय ॥५७१॥

गुण रतननि की रासि यहै, रहित रजोगुण रेत।
वर्जित तामस तापसहु, सतनि कौं सुख देत ॥५७२॥

इन्द्री सुख दुख तैं सदा, यह सर दूर अनादि।
भाव अतिद्री अति धरें, जहा नहो रागादि ॥५७३॥

निज पक्षनि कौ धाम इह, सर्व कुपक्ष विलीत।
है पवित्र पीयूष सर, रमैं पुरिष जगजीत ॥५७४॥

रहित शुभाशुभ शुद्ध सर, भाव प्रवुद्ध स्वरूप ।
महा मोह मगरन जहा, तहा न एक विरूप ।।५७५।।

काइ काम किरोध मय, सर कौ फरसि सकै न ।
सर्व विभाव विकारमय, विंतर एक रहै न ।।५७६।।

जाचक भाव समान नहि, नून भाव जग माहि ।
तेइ भीगर जानियै, तिनकौ नाम हु नाहि ।।५७७।।

दादर व्रथा विवाद जे, मछी वकल स्वभाव ।
कदरज भाव जु काछिवा, सर मैं नाहि लखाव ।।५७८।।

कीट कलपना जाल जे, डासर दुष्ट कुभाव ।
माछर मछर भाव जे, तिनकौ तहा अभाव ।।५७९।।

नानाविध वर्णादिका, जडता भाव अनेक ।
ते जलचर नहि ता विषै, भाव असुद्ध न एक ।।५८०।।

विषै विकार विनोदमय, विष व्रक्षन सर तीर ।
विष वेलिन विभ्राततता, भाव विषमता वीर ।।५८१।।

मायाजाल न है जहा, ममता मोह सुरूप ।
पाप वासना रहित सर, आप स्वरूप अरूप ।।५८२।।

जहा न भय कौ नाम है, अभै सरोवर एह ।
अभै नगर कै निकट ही, परमानन्द अछेह ।।५८३।।

दुराचार दुरभाव जे, दुरविकलप दुखदाय ।
दुरित रूप ते दानवा, तहा धरै नहि पाय ।।५८४।।

असु प्राणनि कौ नाम है, हरै प्राण पर जेहि ।
असुर असुचि अति हिसका, भाव न सर मैं तेहि ।।५८५।।

विषै रागरत राखि सा, रसना लपट भाव ।
रमणीरत रजनीचरा, तिनकौ तहा अभाव ।।५८६।।

यद्री भोगमयी भवा, भाव भूत भ्रम रूप ।
ते न कदे सरवर लखै, जहा छाह नहि धूप ।।५८७।।

आसा नाम जु आसुरी, सर कौं नाम न लेय।
पर निंदा जु पिसाचनी, पाव न तहां धरेय ॥५८८॥
अमल न कोइ मिथ्यात सौ, जहा न मिथ्या भाव।
जोग सदा आनद कौ, सम्यकज्ञान प्रभाव ॥५८९॥
वचक नाहि प्रपच से, चोर न चित से कोय।
ठग नहि छल पाखड से, सब तें वर्जित सोय ॥५९०॥
नाहि विपरजै भाव से, बटपारे विपरीत।
मारे मारग मोक्ष को, धारै सदा अनीत ॥५९१॥
तिनकी नाहीं वगाय है, राजै चेतनराय।
लूटि सकै नहि लोक कौं, लोभ लुटेरा आय ॥५९२॥
दौरा दौरि सकै नहीं, दस दोप दुख आदि।
अणाचार अपराध सब, जहा न जल कागादि ॥५९३॥
भाव विराधक कुटिल अति, आरति रौद्र कुध्यान।
बुगलेही गति ठग महा, जहा नहीं छलवान ॥५९४॥
अविधि अजोगि अरीति नहि, निज तडाग तटि कोइ।
शुद्ध बुद्ध आनदमय, सिद्धनि को सर सोय ॥५९५॥
त्रिविध तापहर पापहर, हरण सकल सताप।
इह निज सर सुखधाम है, रमै आप निहपाप ॥५९६॥
परम मनोहर सर सदा, रतन सरोवर एह।
राज सरोवर है महा, क्रीडा जोगि अछेह ॥५९७॥
स्वरस स्वसवेदन समो, नहीं और रस स्वाद।
अमर अनूपम सर इहै, जहा न हर्ष विषाद ॥५९८॥
मरै न काहू काल ही, निज सरवर रस पीव।
रहै मगन निज भाव मैं, सदा सरवदा जीव ॥५९९॥
भाव नगर कै निकट ही, भाव सरोवर होय।
रम्य महा रमणीक अति, सु दर सरवर सोय ॥६००॥

शुद्ध सरोज निवासिनी, निज सत्ता अनुभूति।
करै केलि सुखसर विषै, केवलज्ञान विभूति ।।६०१।।

इह समरस सर वर्णना, पढै सुनै जो कोय।
सो अविनासी पद लहै, निज दौलति पति होय ।।६०२।।

।। इति श्री भाव सरोवर वर्णन ।।

दोहा

विभाव सर वर्णन—

चेतन भावमइ सदा, चिदानद चिद्रूप ।
सर्व भाव वितीत जो, ज्ञानानद स्वरूप ।।६०३।।

सीतल विमल अनत गति, धर्म धुरधर देव।
शातभाव सव कर्महर, करै सुरासुर सेव ।।६०४।।

जाकी भगति प्रभाव सौं, उपजै आतम बोध।
लखै आप मैं आपकौं, करै करम कौ रोध।।६०५।।

काढै विकलप सर थकी, निर विकलप रस पाय।
टारै मनमथ मोह मल, सौ त्रिभुवन कौ राय ।।६०६।।

ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि सार सिद्धात।
विकलप सर वर्णन करू, तजै जाहि मुनि शात ।।६०७।।

विषसर विकलप सर समो, नहि ससार मझार।
महाविषम सर मलिन सर, जामैं रच न सार ।।६०८।।

अति सकल पर विकलपा, तेइ विष जल वीर।
भरयौ सदा विष नीर तै, विषतरु ताकै तीर ।।६०९।।

विषतरु विषै कषाय से, और न जानौ कोइ।
सर्व विभाव विकार मय, सदा मरण दे सोइ ।।६१०।।

पाप पालितै वधियो, इहै ताप सर आप ।
महा विकट सर भर्म रस, देय सदा सताप ॥६११॥
नही दाहहर दोसहर, नही रम्य सर एह ।
हंसन शुद्ध स्वभाव से, करे न यामों नेह ॥६१२॥
कीचन काम कलक सौ, यहै पक्र तै पूर ।
अम्रत जन्म निज अनुभवा, सदा या थकी दूर ॥६१३॥
अम्रत वृक्ष न बोध मे, फलै विमल फल भाव ।
ते विकलप सर तीर नहि, यह निश्चै ठहराव ॥६१४॥
निज प्रवृत्ति भव निरअती, ता सम सुधा न वेलि ।
सो विष सरवर तटि नही, जामे रस की रेलि ॥६१५॥
अशुभ कर्म से वृक्ष विष, विषै बुद्धि विष वेलि ।
तिनकी विकलप सर निकट, दीसै रेलि जु पेलि ॥६१६॥
जल कागन जड भाव से, तिनको तहा निवास ।
बुग नहि पाखडीनि मे, तिनको सदा विलास ॥६१७॥
बुद्धि वियोगी बहिरमुख, बहिरातम भव भाव ।
तेइ चकवा ता विषै, विरह रूप दरसाव ॥६१८॥
निसि न अविद्या सारखी, तिमर रूप दरसाय ।
तामे चकवी चेतना, कबहु लखी नहि जाय ॥६१९॥
जगत वासना सारिखी, और न कोइ कुवास ।
फैलि रही विपसर विषै, रोग सोग परकास ॥६२०॥
मल नहि राग विरोध से, इह मलसर छलपूर ।
खलसर अखिल विभाव से, सु दरता सौं दूर ॥६२१॥
मिथ्या मारग पक्षधर, हिंसक दुष्ट सुभाव ।
तेहि कुपक्षी कुसवदा, तिनको सदा प्रभाव ॥६२२॥
मीन नदी न स्वभाव से, अति मलीन मतिहीन ।
ते विचरै विपसर विषै, अति च चल अघलीन ॥६२३॥

ऋथा वकै वितथा लपै, लोभी लपट भाव ।
तिन से भेक न और को, धरै विवेक अभाव ।।६२४।।

दादर डेडर भेक ए, हैं मीडक के नाम ।
यह मीडक कौ सरवरा, काल नाग कौ धाम ।।६२५।।

मुह मीठी बातैं करैं, पीछैं अति ही कठोर ।
तेहि काछिवा सर विषै, जहा असुभ कौ जोर ।।६२६।।

नान्हौ मन नांन्ही दसा, कृपण सदा परिणाम ।
तेइ भीगर जानियें, मलसर तिन कौ धाम ।।६२७।।

धीवर कुकरम भाव जे, चालैं अधरम चाल ।
ते विचरैं विषसर नखे, धारैं विकलप जाल ।।६२८।।

मगर न होइ मही विषै, महा मोह सौ कोइ ।
सुर नारक नर तिरन कौ, निगलै पापी सोइ ।।६२९।।

वसैं सदा विषसर विषै, रूप महा विकराल ।
अवरहु जलचर भावखल, जामैं अति असराल ।।६३०।।

सोर कुपक्षनि कौ सदा, सारिस जुगल न कोय ।
सारिस दरसन ज्ञान से, और न जग मैं होय ।६३१।।

दुवदाइ दोषीक जे, दया रहित परिणाम ।
दैत्य दानवा ते महा, खलसर तिनकौं धाम ।।६३२।।

दुष्ट व्रती दुरजन दसा, दुरगति दाइ रीति ।
तेहि दैत्यनी वहु वसैं, मलसर मैं विपरीति ।।६३३।।

असुचि असुभ अव्रतमयी, अरि समान अघ भाव ।
असुर असंजम रूप जे, तिनकौ तहा प्रभाव ।।६३४।।

अकुलत अविवेकता, आसा आरति रूप ।
वसैं अविद्या आसुरी, विषसर विषै विरूप ।।६३५।।

रमैं राग धरि भोग मैं, जग अनुरागी भाव ।
रस अनरस ते राखिसा, तिनकौ तहा वसाव ।।६३६।।

रति अरति अति रापिमी, रसना लोलप रीति ।
सर्व कुरीति लीया वसैं, विष सर में विपरीति ।।६३७।।

भय विभ्रममय भाव जे, तेहि भूत भ्रमजाल ।
यह भूतिन को सरवरा, रहे भूत विकराल ।।६३८।।

भोग भावना भूतनी, अति स्वरूप विरूप ।
भ्रमैं सदा भ्रमसर विषै, भयकारी विडरूप ।।६३९।।

परदारा परधन हरा, परद्रोही परिणाम ।
ते पिशाच पापी करै, विषसर में विश्राम ।।६४०।।

पराधीनता पापिनी, मिथ्या परणति रूप ।
पापव्रति पिसाचिनी, भवजल में भय रूप ।।६४१।।

सर्व विभाव विकार जे, विषै विनोद असेस ।
ते वितर विषसर विषै, वैरी वसैं विसेस ।।६४२।।

व्रति अव्रतनिकी सदा, निरव्रति धरै न सोइ ।
वे वितरी बलवती, मल सरवर मैं होइ ।।६४३

दुराराध्य दुरनीति धर, दुरजय दुसह सुभाव ।
ते दौरा दौरे सदा, अति दोषादि कुभाव ।।६४४।।

अति प्रपचमय वचका, माया मदन मनादि ।
पूति सरोवर तीर हो, वचे विश्व अनादि ।।६४५।।

भाव चलाचल चपल गति, त्रिशना रूप विरूप ।
ते तसकर कुतडाग तहि, चोरी करे कुरूप ।।६४६।।

लोभादिक लपट महा, तेहि लुटेरा वीर ।
लूटें सर्वहि लोक कौं, कोइक उबरै धीर ।।६४७।।

वटपारे कुविसन महा, जूवा मद मासादि ।
वेस्या परधन हरणता, परदारा हिसादि ।।६४८।।

रोकै पथ निरवान कौं, रहैं पापसर पालि ।
तिन करि जग के जीव ए, सकै नही सभालि ।।६४९।।

ठग नहि जग के भात्र से, ठगै ज्ञान सा माल ।
वसै सदा छलसर निकट, करै वहुत वेहाल ।।६५०।।

अति ठगनी भव भावना, ठगै सुरासुर सोय ।
कोइक उवरै साधवा, सजम जिनपै होय ।।६५१।।

अभख भक्षका हिंसका, करै कुसील विहार ।
तिन से अपराधी नही, ते सर तीर अपार ।।६५२।।

यह सरवर नहि केलिकौ, कवहू रमन न जोगि ।
तहा जाय मतिमत्र तू, सवही वात अजोगि ।।६५३।।

है पिसाच सर पिसुन सर, विकट सरोवर वीर ।
कीट सरोवर क्षार सर, करै महादुख पीर ।।६५४।।

कीट न कलुष स्वभाव से, यहै कलुषता पूर ।
रहै पारधी पातकी, जे शुभ तैं अति दूर ।।६५५।।

तामस सौ नहि तिमर है, राजस सम रज नाहि ।
यह राजस तामस मइ, सव दुख याके माहि ।।६५६।।

कमल न भाव अलेप से, तिनकौ सदा अभाव ।
कटिक नाहि कपाय से, तिनकौ महा प्रभाव ।।६५७।।

ककर क्षुद्र स्वभाव जे, दीखै तेहि विसेस ।
नही रतनन की वात ह्या, लखिए असुभ असेस ।।६५८।।

भमर न भावर सज्ञ से, तिनकौ नाम हु नाहि ।
दुष्ट भाव डासर घने, रच न सुख सर माहि ।।६५९।।

मछर भावहि माछरा, माखी मलिन सुभाव ।
कृमि कुभाव रूपी महा, सर मैं वहुत लखाव ।।६६०।।

भव वन मैं विकराल इह, भ्रमसर भयकर होय ।
है विभाव-सर विषम-सर, विषसर इसौ न कोय ।।६६१।।

शुद्ध निजातम भाव तैं, भिन्न जेहि भव भाव ।
राग दोष मोहादि रिपु, ते कहिये जु विभाव ।।६६२।।

मदा विभाव तडाग तटि, थावर जगम जीव।
लूटे जाहि अनेक जन, कूटे जाहि कुजीव ॥६६३॥

कोइक मुनिवर उवरै, जिनवर को जन होय।
सर विभाव सो विषमसर, और न जग मैं जोय ॥६६४॥

इह विकलप सर वर्णना, उर धारै जो धीर।
सो विकलप सर लघि कै, निरविकलप है वीर ॥६६५॥

निज स्वभाव सत्ता महा, सो निज दौलति होय।
और न सपनि मामती, यह निश्चै अवलोय ॥६६६॥

॥ इति विभाव सर वर्णन ॥

दोहा

अध्यात्म वापिका वर्णन—

देव दयानिधि देव जो, दिव्य दृष्टि भगवान।
दरसावै निजसपदा, सो सरवज्ञ सुजान ॥६६७॥

वदनीक सब लोक गुर, सकल लोक को ईस।
रमै निजातम भाव मैं, नमू ताहि नमि सीस ॥६६८॥

नही ब्रह्म विद्या जिसी, वापी अमृत रूप।
वापी मै पापी नही, मोह पिसाच विरूप ॥६६९॥

अध्यातम सो लोक मैं, अमृत और न कोय।
अध्यातम ये वापिका, त्रिविध तापहर होय ॥६७०॥

नही सिंवाल सरै जहा, पाप पक नहि लेस।
नहि व्याकुलता भाव कृमि, मेटै सकल कलेस ॥६७१॥

भरी शात रस नीर तै, परमानद स्वरूप।
हरै दाह दुख दोष सब, रमै तहा चिद्रूप ॥६७२॥

नहि विभाव व्यतर जहा, भर्म भूत नहि होय।
रागादिक राक्षस महा, तिनकौ नाम न जोय ॥६७३॥

नही अविद्या वासना, सम कुवासना कोय।
सो न जा विषे है सही, सम रस निर्मल तोय ॥६७४॥

दुख कौ लेस न है जहा, निज सुख पूरण सोइ।
नाहि कलपना जालमय, काई कलमष कोइ ॥६७५॥

उज्जल निरमल भाव से, परम हस नहि और।
केलि करै तामै सदा, जा सम और न ठौर ॥६७६॥

जहा सिवाण प्रमाण से, अप्रमाण अति रम्य।
अचल अखड अनूपमा, नहि अजाण की गम्य ॥६७७॥

जोर न इद्री चोर कौ, सोर न कहू सुनाव।
ठगनि सकै परपच ठग, शुद्ध राव परभाव ॥६७८॥

भागै वचक तसकरा, वापी कौ सुनि नाम।
रतन वापिका इह सही, गुण रतननि को धाम ॥६७९॥

वटपारे न विकार से, काम लोभ से वीर।
तिनही न सूझै वापिका, रमै महामुनि धीर ॥६८०॥

फूलि रहे भावा कमल, अमल अलेप स्वभाव।
रमण भाव रूपी भमर, भर्मै सदा निरदाव ॥६८१॥

ताकै तटि तरवर सुधा, भाव अछेदि अभेदि।
सीतल सघन सुवास अति, डारै दाह उछेदि ॥६८२॥

समता रूप सुधा लता, धरै विमलता जोय।
फूलि रही अति फलि रही, सदा लहलहै सोय ॥६८३॥

परम भाव अम्रत फला, भाव प्रफुल्लित फूल।
पल्लव भाव प्रकासमय, पत्र तापहर मूल ॥६८४॥

वेलि वृक्ष पीयूषमय, वापी तीर विसाल।
माया वेलि न विपमइ, एकन विकलप जाल ॥६८५॥

नाहि कुपक्षी कुसवदा, विष वृक्षन विषयादि।
नहि कटिक क्रोधादिका, नहि निसिचर मदनादि ॥६८६॥

है अतता एकता, ए द्वय तट रमणीक।
भोग भुजग नही जहा, आतम सुख तहकीक ॥६८७॥

मलिन भाव मछली नही, भेक न भ्राति स्वरूप।
जहा कर्म कूरम नही, वस्तु न एक विरूप ॥६८८॥

कालिम कीट नही जहा, नही काल को जोर।
अभै नगर के निकट है, जहा न कबहू सोर ॥६८९॥

नहि दुर्जनता भाव मय, डासर माछर मूर।
क्षुद्र भाव झीगर नही, वापी सब दुख दूर ॥६९०॥

दभ भाव बुग नहि जहा, नाहि वियोगी कोक।
सारिस दरसन ज्ञान जुग, केलि करे विनु सोक ॥६९१॥

कागन भाव कलक मय, राग रोग नहि होय।
शुद्ध स्वभाव मई रहै, नाहि शुभाशुभ दोय ॥६९२॥

यह अध्यातम वावरी, तामै करै सनान।
सो भव दाह निवारिके, पावै पद निरवान ॥६९३॥

॥ इति सपूर्ण ॥

——

दोहा

विषय वापी वर्णन—

वसै बुद्धि के पार जो, हरै कुबुद्धि कुभाव।
वीतराग सरवज्ञ जो, तीन भुवन को राव ॥६९४॥

प्रणमू ताहि प्रमोद करि, प्रणमैं जाहि सुरेस।
नमैं नाग नर सुर असुर, विद्याधर राजेस ॥६९५॥

वुधि वावरी जीव की, विषै कषाय स्वरूप ।
तिसी न विष की वावरी, और महा दुख रूप ।।६६६।।

विष नहि विषै विकार सौ, भव भव मरण प्रदाय ।
इह विष वापी पाम है, पापी मोह रहाय ।।६६७।।

विषै वासना सारिखी, नहि कुवासना जोय ।
अति कुवासना सौं भरी, धर्म नासना होय । ६६८।।

कर्दम कर्म कलक सौ, कहैं न कोविद कोय ।
इह कर्दम की वापिका, जहा न अम्रत तोय ।।६६६।।

मल नहि मिथ्या भाव सौ, ता करि पूरण सोय ।
अहकार ममकार के, धरै विकट तट दोय ।।७००।।

भरी जाल जवाल सौ, मरी समान विरूप ।
खरी वुरी दोषाकरी, विष वापी विडरूप ।।७०१।।

जहा सिवाण अपाण से, विषम महा दुखदाय ।
कमि कुभाव अति कुलमलै, जाहि लखै तरसाय ।।७०२।।

नहि सिंवाल सदेह सौ, भापे सजम धार ।
भरा सदा सदेह सौ, सुख नहिं जहा लगार ।।७०३।।

वाचाली वादी विकल, दुरवुधी दुरभाव ।
ते दादर कुसवद करै, धरै कुकर्म कुभाव ।।७०४।।

रसना लपट चपल गति, हीन दीन अघलीन ।
मीन तेहि विचरै तहा, काल कीर अघलीन ।।७०५।।

कठिन कठोर सुभाव ही, कहे काछिवा जीव ।
कीट कलक भरी सदा, जामैं वहुत कुजीव ।।७०६।।

नून भाव अति रकता, तेहि भीगरा जानि ।
माछर मछर भाव वहु, डासर खल ता मानि ।।७०७।।

शात भाव सौ विमल जल, और न जगत मझार ।
सो वापी मैं नाहि कहू, तापहरण रसधार ।।७०८।।

विष बेलिन ममता समा, वापी तीर विसेस।
सुधा वेलि समता मयी, ताकी तहां न लेस ॥७०९॥
सघन भाव निज मगनता, तेहि सुधा तरु वीर।
ते वापी के तीर नहिं, अघ विगनरु अति तीर ॥७१०॥
दोष दैत्य को धाम है, रहैं भूत भ्रमरूप।
छलैं छलावा छलमइ, ठगै कामरति भूप ॥७११॥
मोह निसाचर नृप जहां, पापी वापी वीचि।
रागादिक रजनीचरा, अविकारी अति नीच ॥७१२॥
पाप पिसाच रहै जहां, जो धारै परद्रोह।
चारे चोर चहूं दिसा, राजै राजा मोह ॥७१३॥
धन तृष्णा परिणाम से, तसकर और न कोय।
तिन ही को यह थान है, कहा भलाइ होय ॥७१४॥
इह क्रीडा वापी नहीं, नहि मनोज्ञता मूरि।
करै वास वंचक इहां, सदा अमगल भूरि ॥७१५॥
वचक और न विस्व में, दभ प्रपच समान।
पाखडादि अनेक खल, छल बल भरे गुमान ॥७१६॥
ठगे जाहि इन्द्रादिका, ठगे जाहि चक्रेस।
ठगे जाहि नागिंद्र सुर, ठगे जाहि असुरेस ॥७१७॥
लोभ लुटेरा लूटइ, धर्मरूप धनसार।
क्रोधादिक कटिक घने, वापी बहुत असार ॥७१८॥
विषै वासना वितरी, धरैं विकार अनेक।
रति ठगनी परपच करि, खोसैं रतन विवेक ॥७१९॥
वापी भववन मैं इहै, पापी अतक साप।
वसै सदा सुर नर असुर, पसु निकरैं सताप ॥७२०॥
इहै गलकटा वावरी, जानैं सब संसार।
रहै निरदयी दुर्जना, क्रूर कुभाव अपार ॥७२१॥

हिंसक पिसुन पसूघना, मिथ्याती मतिहीन ।
परधन परदारा हरा, लोभी लपट दीन ।।७२२।।

तेइ करैं प्रवेस ह्या, रहै सनमती दूर ।
कवहु करै मति क्रीड तू, यहै कलपना पूर ।।७२३।।

निर्मल भावन हस ह्या, वुग ठग भाव अनेक ।
दरसन ज्ञान स्वभाव से, सारिस जुगल न एक ।।७२४।।

रमैं विषै अनुराग से, काग कालिमा रूप ।
विकल विवेक वितीत खल, पापी पाप स्वरूप ।।७२५।।

पापाचारी पारधी, धीवर अघ परिणाम ।
मारैं तिर नर सुर असुर, थिर चर आठौ जाम ।।७२६।।

निज पुर सौ दूरी इहै, वापी अति विकराल ।
वहु वूडै वहु मरि पचै, दुख देखै असराल ।।७२७।।

त्यागि कषाय कलक सब, तजि विषयनि सौ प्रीति ।
गहौ पथ निजपुर तनौ, दहौ दोष दुख रीति ।।७२८।।

जीति काल कटिक भया, मारि मोह रिपु राव ।
रहौ मोक्षपुर मै सदा, प्रगट करौ निज भाव ।।७२९।।

मिथ्यामति अति मूढता, रूप वापिका तीर ।
कदे रमै न विचक्षणा, वमैं विषै रस वीर ।।७३०।।

लहिं निज सपति सासती, ज्ञानानद स्वरूप ।
करैं केलि निजपुर विषै, तजि भव वन भ्रम रूप ।।७३१।।

अध्यातम अम्रत भरी, वापी निरव्रति जोय ।
करैं सनान तहा सुधी, लहैं विमलता सोय ।।७३२।।

इहै मूढता वावरी, विषै प्रव्रत्ति स्वरूप ।
नहिं सनान कौ जोग्य है, मलिन विकट विष रूप ।।७३३।।

विष वापी वर्णन यहै, पढै सुनै जो कोइ।
सो न परै वापी विषै, घट घट व्यापी होय ॥७३४॥

॥ इति विषय वापी वर्णन ॥

दोहा

रस कूप वर्णन—

ज्ञान कहे नव भाव कौ, नव सुख दायक देव।
नायक है रस कूप कौ, करे सुनासुर सेव ॥७३५॥

रस न कूप न निज रूप सौ, परम सुधारस पूर।
है अरूप अति रूप जो, सकल दोष तैं दूर ॥७३६॥

नाहिं सुधारस ज्ञान सौ, असरण करण अनूप।
हरै भ्रांति अति शांतिकर, ताप हरण गुण भूप ॥७३७॥

अवर नाम रस कूप कौ, रतन कूपहू होय।
रोग अबोध मिथ्यात हर, राग रोग सुर सोइ ॥७३८॥

अदभुत गुण मणि सौं भर्यौ, इह मणि कूप महंत।
रमवा जोगि निरंतरा, रमैं मुनीसुर संत ॥७३९॥

अमृत कूपनि कूप इह, निज भावन की केलि।
करै शुद्ध भवि जीव कौ, देय दोष कौं ठेलि ॥७४०॥

याके तटि अति सघन वन, चिदघन आनंद रूप।
इहै कूप निजपुर निकट, जहा राव चिद्रूप ॥७४१॥

कपट कीच नहि या विषै, रहै न मोह पिसाच।
इंद्री भूत न पाइए, मानि वारता साच ॥७४२॥

जहा नाहि चितामयी, कृमि कीटादिक कोइ।
मीन दीनता भावमय, तिनकौ नाम न जोय ॥७४३॥

नहि अविवेक स्वभाव मय, मीडक चपल विरूप ।
नही विषै की वासना, अति कुवासना रूप ।।७४४।।

पर निंदक परपूठि जे, निष्ठुर दुष्ट स्वभाव ।
तेहि काछवा जानिये, तिनकौ नाहि लखाव ।।७४५।।

मिथ्या मारग पक्ष धर, तेहि कुपक्षी कूर ।
ते न करै सचार ह्या, हिंसक भाव न मूर ।।७४६।।

दुर्जन भाव न दोष मय, दुख कौ नाम हु नाहि ।
सुख की बात अपार हैं, रमण कूप कै माहि ।।७४७।।

नही सर्प कदर्प ह्या, चोरन चाहि स्वभाव ।
छल परपच न वचका, विपरीती न विभाव ।।७४८।।

दृष्टि न पसरै देव्य की, दैत्य न काल समान ।
एक न कटिक पाइए, क्रोध न लोभ न मान ।।७४९।।

रमैं आतमा राम निज, सत्ता रमा समेत ।
केलि कूप है इह महा, सतनि कौ सुख देत ।।७५०।।

लखि दौलति अविनस्वरा, परम भाव फल वेलि ।
निज दौलति लखिया विना, नही होय रस केलि ।।७५१।।

इह वर्णन रस कूप कौ, पढै सुनै जो कोय ।
सो निकसै भव कूप तै, निज रस रसिया होय ।।७५२।।

।। इति रस कूप वर्णन ।।

दोहा

भव कूप वर्णन –

प्रभु निकासि भव कूप तै, पहु चावै निज थान ।
प्रणमै जाहि पुरदरा, चक्रेसुर निधिवान ।।७५३।।

विष कूपन भवकूप सौ, यह दुख कूप विरूप।
अंध कूप यासौं कहैं, महा मुनिनि के भूप ॥७५४॥

जिसी अविद्या वासना, तिसी कुवास न कोय।
भरयो महा दुरगंध सौं, विषम कूप है सोय ॥७५५॥

विष नहि विषै विनोद सौं, मरण अनंत प्रदाय।
यह विष पूरण दुखमइ, जाहि लखै सुधि जाय ॥७५६॥

नहि पियूष संसार मैं, अनुभव सौ अविकार।
उहा न अमृत वारता, विकलप जाल अपार ॥७५७॥

कीचन कोठ कुभाव सौ, भरयो कीच तैं कूप।
लोभ पिसाच रहै जहा, मोहासुर है भूप ॥७५८॥

विभ्रम भूत घनै तहा, दोष दैत्य को थान।
रागादिक रजनीचरा, विचरै पाप निधान ॥७५९॥

नागन पिसुन सुभाव से, तिनको तहा निवास।
चोरन चित अभिलाप से, हरै धरम धनरास ॥७६०॥

ठग नहि छल परपच से, तिन ही की ह्या केलि।
फूलि रही अति विषमइ, विषै वासना वेलि ॥७६१॥

याके तटि विष वृक्ष बहु, विषै विकार विरूप।
छाय रहे कटिक मइ, माया जाल कुरूप ॥७६२॥

ठगे जाहि सुर असुर नर, कोइक उबैर धीर।
ज्ञान विराग प्रसाद तैं, जा ढिग संजम वीर ॥७६३॥

पापी जन पाखड मे, और दूसरे नाहि।
ते लूटैं परगट इहा, रच न सक धराहि ॥७६४॥

वटपारे क्रोधादि से, मारैं सुख पुर वाट।
ते डारैं दुख कूप मैं, तिनकै कूर कुठाठ ॥७६५॥

नहि विसास घाती अवर, मदन सारिखौ कोय।
रचक भोग दिखाय खल, दे अनत दुख सोय ॥७६६॥

नहि सिवाल ससार मैं, ससय सोच समान ।
भरयौ ग्राल जजाल सौ, मलिन कूप मलवान ।।७६७।।

चितवृति चचल ग्रति मलिन, कृमि समूह है सोय ।
भर पूरित क्रमि तै सदा, तिमर कूप यह होय ।।७६८।।

नहि डेडर वाचाल से, उछलत फिरै कुभाव ।
मीन जीभ लपट जिसे, ग्रौर न चपल सुभाव ।।७६९।।

नहि कठोरता भाव से, कोइ काछिवा ग्रौर ।
ग्रधकूप भवकूप इह, सदा तिनौ की ठौर ।।७७०।।

नाहि सुधातरु या निकट, केवल वोध स्वरूप ।
नाहि ज्ञान ग्रनूभूति है, ग्रम्रत वेलि ग्रनूप ।।७७१।।

मायाचारी मन मलिन, तेहि काग ठग जानि ।
तिनही की क्रीडा इहा, नाहि सुपक्षी मानि ।।७७२।।

नही कोइ सुचि वात ह्या, सकल ग्रसुचि की बात ।
काल समान न जालधर, करै जीव को घात ।।७७३।।

परे जीव भवकूप मैं, को काढन समरत्थ ।
काढै श्री भगवत ही, दयावत वड हत्थ ।।७७४।।

ढाएान नय परमाएा सौ, नहि निश्चै सी नेज ।
निकसै उद्यमवत ही, जिनकै रच न जेज ।।७७५।।

ग्रधकूप विडरूप यह, है पाताल जु कूप ।
निकसि तहा तै तुरत ही, होय ग्रभैपुर भूप ।।७७६।।

फेरि न ग्रावै भव विषै, निज मैं करै निवास ।
लोक सिखर राजै सदा धारै ग्रतुल विलास ।।७७७।।

निज दौलति निज गुएामइ, सत्ता रूप विभूति ।
सो विलसै ग्रति सासती, ग्रविनासी ग्रनुभूति ।।७७८।।

अथ कूप वर्णन यहै, पढ़ै सुनै जो कोय।
सो नर है भवकूप मैं, निज निधि नायक होय ॥७७६॥

॥ इति भव कूप वर्णन ॥

दोहा

अन्तरात्मा ज्ञान राज वर्णन—

अंतर गति ज्ञाता गुरु, अंतरजामी देव।
अंतर आतमा ध्यावहीं, करैं सुरासुर सेव ॥७८०॥

ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि महा मुनिराय।
नमि परमागम गुण कहूं, ज्ञानिनि के सुखदाय ॥७८१॥

भ्रमत भ्रमत भव वन विषै, कोइक चेतन राव।
चेतै स्वतह स्वभाव ही, कै श्री गुरु परभाव ॥७८२॥

तजि अज्ञान अनादि कौ, गंथि अविद्या भेदि।
धारि सरधा सरवज्ञ की, सर्व भर्म उछेदि ॥७८३॥

त्यागि भूमि मिथ्यात की, क्रोध लोभ छलमान।
मारि चौकरी प्रथम ही, ले सम्यक गुनथान ॥७८४॥

तथा देसव्रत देस ले, दोय चौकरी डारि।
अप्रमत्त थानक तथा, तीन चौकरी मारि ॥७८५॥

सम्यकपुर कौ आदि ले, क्षीणकषाय प्रजंत।
अंतरातमा राजई, राज करै मतिवंत ॥७८६॥

ता सम भूपन और कौ, समझवार रिझवार।
सो निकसै भव कूप तै, पावै पद अविकार ॥७८७॥

पटरानी परवीन है, नाम सुवुद्धि अनूप।
गढ सम्यक अति निश्चला, मंत्री ज्ञान स्वरूप ॥७८८॥

गुर विवेक प्रोहित धरम, दरसन चारित दोय।
सब उमरावनि के सिरै, अति कोडीभड होय ।।७८९।।

निज स्वभाव उमराव वहु, निज निधि है भडार।
है वीरज सेनापती, भडारी स्वविचार ।।७९०।।

सजम तप आदिक सुभट, गुणसेना अति साथ।
द्वारपाल सवर महा, ध्यान खडग नृप हाथ ।।७९१।।

व्रत वगतर सील सर, धीरज धनुष महीप।
धारै मनमथ मार नै, सूरवीर अवनीप ।।७९२।।

अणाचार हर नीतिधर, शुभाचार कुटवाल।
मूलोत्तर गुण है प्रजा, सावधान भूपाल ।।७९३।।

पावन पुण्य स्वभाव से, पासवान परवीन।
टारै पाप सुभाव कौ, सदा स्वामि आधीन ।।७९४।।

मित्र महा वैराग से, हितकारी नृप पासि।
मदति भगति भगवत की, दे सब सुख अघ नासि ।।७९५।।

नृप कै अदभुत अनुपमा, सामग्री समतादि।
हारै जातै मोह रिपु, डरै राग दोषादि ।।७९६।।

अव्रतपुर अर देसव्रत, इन माही गढ रारि।
परमत पुर आगे प्रगट, लेय मोह कौ मारि ।।७९७।।

कैसै मारै मोह कौ, सो तुम सुनहु उपाय।
अप्रमाद पुर मैं हणै, सुर नारक तिर आय ।।७९८।।

भाव अपूरव करणपुर, तहा हतै हास्यादि।
अनिवर्त्तापुर मैं हणै, वेद तीन सढादि ।।७९९।।

पाछै सूषिम क्रोध अर, मान कपट रिपु काटि।
सापराय सूषिम धरा, लेय मोह दल ठाठि ।।८००।।

सूषिम क्रोध पछारि कै, पूरौ पारै मोह।
भग होहि भूपाल पै, राकिस रागर द्रोह ।।८०१।।

क्षीण कषाय जती यती, क्षीण मोह मुनिराज।
हतैं विघन कौं वेगिदे, सजैं सिद्धि के साज ॥८०२॥

दरसन ज्ञानावरण की, परकति सवै विनासि।
साधक भाव समेटि लै, केवल भाव प्रकासि ॥८०३॥

घाति कर्म कौ घाति कै, ह्वै केवल्य स्वरूप।
अंतरातमा यह थकी, ह्वै परमातम रूप ॥८०४॥

जैसैं राजा नीति करि, महाराज ह्वै वीर।
तैसैं अंतर आतमा, ह्वै परमातम धीर ॥८०५॥

जानै लोक अलोक सहु, एक समै मैं सोइ।
भाखै मर्म भविन कै, केवल ज्ञानी होय ॥८०६॥

ज्यौं नरिन्द्र राजेंद्र ह्वै, धारि पराक्रम धीर।
त्यौं जोगिन्द्र जिनेन्द्र ह्वै, आतम बल करि वीर ॥८०७॥

आयु प्रमाण सरीर मैं, तिष्टै सरवगि देव।
जीवन मुक्त दसा धरै, करै सुरासुर सेव ॥८०८॥

करि दरसन मुनि सवद कौ, उत्तम कुल नर देह।
कैयक तप व्रत धारि कै, मुनिवर होंहि विदेह ॥८०९॥

कैयक मानव तिर तथा, धारि अणुव्रत सार।
स्वर्ग पाय नर होय फिरि, तप करि ह्वै भव पार ॥८१०॥

कैयक सुर अथवा असुर, गहि करि सम्यक ज्ञान।
करि पूरण थिति होय नर, पावै पद निरवान ॥८११॥

स्वर्ग निवासी देवजे, ते सुर नाम वखानि।
मध्यलोक पाताल के, देव असुर परवानि ॥८१२॥

देव जोनि के भेद है, देव दैत्य द्वय रूप।
स्वर्ग निवासी वहुसुखी, दीरघ आयु सुरूप ॥८१३॥

मद कषायी हर्ष अति, अलप विषाद विवाद।
सव वातनि मैं अति निपुन धारैं अलप प्रमाद ॥८१४॥

असु अलप सुख अलप थिति, तीव्र कषाय प्रचंड ।
अति विषाद अतिवाद हैं, अलप बुधि अति दंड ।।८१५।।

सुर नर असुर विद्याधरा, पचेन्द्री पसु जेहि ।
नभचर वनचर ग्रामचर, निकट भव्य सुलटेहि ।।८१६।।

होंहि कृतारथ सबद सुनि, करि दरसन बहुजीव ।
कैयक तदभव पार ह्वै, मनुज मुनिंद सुजीव ।।८१७।।

कैयक जनमांतर तिरैं, पावैं निजपुर वास ।
सुखदाई संसार मैं, केवल ज्ञान प्रकास ।।८१८।।

तारण तरण दयानिधि, जीवन मुक्त मुनिंद ।
आप मात्र ही गात्र मैं, बसै देव जोगेन्द्र ।।८१९।।

इन्द चन्द असुरिंद अर, रवि नरिंद नागिंद ।
हरिषिन्द अहमिंद खग, रटै जतिंद गणिंद ।।८२०।।

आयु लार ही गोत्र कौं, नाम रूप को नासि ।
बादर सूषिम गात्र हरि, वेदनि कर्म विनास ।।८२१।।

कर्म भर्म हरि शुद्ध ह्वै, बसै भावपुर माहि ।
सो विदेह मुक्तो प्रभू, कहिये सर्से नाहि ।।८२२।।

ज्ञान रूप चिद्रूप सो, ह्वै अनूप जग भूप ।
फेरि न जनमैं जगत मे, ह्वै अविनासी रूप ।।८२३।।

थूल देह अर सूषिमा, बहुरि न धारै धीर ।
ह्वै अनंत स्वरूप निज, चिनमूरति असरीर ।।८२४।।

जगत सिरोमणि भावपति, लोक सिखरि सद्रूप ।
निज सुरूप मै नित्य ही, करै निवास अरूप ।।८२५।।

अंतर आतम राम की, कथा प्रबोध प्रकास ।
पढै सुनै अर सरदहै, सो पावै सिव वास ।।८२६।।

निज दौलति अनूभृति है, ताहि विलसवे काज ।
छाडै राज विभूति सव, सो पडित सिरताज ।।८२७।।

।। इति अ तरातमा ज्ञान राज वर्णन ।।

दोहा

वहिरातमा दशा वर्णन—

विहिर मुख वहिरातमा, लखै न जाको रूप ।
अतरातमा अति रहै, सो परमातम भूत ।।८२८।।

करि वदन ताके चरण, लेय सरण सिद्धात ।
भाषौ वहिरातम दसा, दोस रूप एकात ।।८२९।।

मूढ महा वहिरातमा, धरै द्रिष्टि वहिरग ।
गनै आपने कर्म जड, गनै आपनौ अग ।।८३०।।

ता सम सठ नृप और नहि, करै राज वेढग ।
वारावाट कुठाट सव, सदा कुवुद्धी सग ।।८३१।।

पराधीन वरतै महा, नही राव कौ जोर ।
राव मोह के फद मै, परचो सहै दुख घोर ।।८३२।।

राजथान नहि निश्चला, भटकै भव वन माहि ।
सुर नर नारक पसु पुरा, थोरे दिन रह वाहि ।।८३३।।

काढै कर्म महीप कौ, देह वेगतै वेगि ।
सदा भोगवै भूप दुख, नही राज वल तेगि ।।८३४।।

ते गन ज्ञान ज्योतिसी, सो नहिं नृप के हाथ ।
कायर कुटिल सुभाव सहु, ते भूपति के साथ ।।८३५।।

काची गढी न कायसी, विना धकै विनसाय ।
वसै तामहै भैमयी, अलप काल रहवाय ।।८३६।।

मोह वसाय अनादि कौ, भर्मैं भूपाल अयाण ।
इक छोडै इक पुर गहै, मोह आण परमाण ।।८३७।।

कुबुद्धि सारिखी और नहि, जग मैं काइ कु नारि ।
सो पटरानी राव कैं, बैठी राज विगारि ।।८३८।।

घर खोवा घरणी इहै, कलह कारणी जोय ।
पापारभ प्ररूपणी, कहा भलाई होय ।।८३९।।

भयौ कुमति कै भूप वसि, नही वुद्धि को लाग ।
परचौ राव परमाद मैं, नही धरम सौ राग ।।८४०।।

महा मोह निद्रा जिसी, निद्रा और न नीच ।
सोवै सठ भूपति सदा, मोह नीद कै वीच ।।८४१।।

घूमैं नृप वेसुधि भयौ, मोह वारुणी पीय ।
परचौ भर्म की पासि मैं, पिरथीपति टुक जीय ।।८४२।।

कुवुधि सुता है मोह की, जाइ ममता मात ।
चाहै मोह प्रकास ही, अति अघ सौ न डरात ।।८४३।।

नहि प्रताप पति को चहै, निहिपति कौ विस्वास ।
डरै भूप कुबुद्धि तैं, धरै मोह की आस ।।८४४।।

है कुभाव मत्री कुटिल, मोह मिलाऊ जोइ ।
नृप कोउ दौन वाछइ, स्वामि दरोही सोइ ।।८४५।।

विषयनि के अनुराग मैं, राख्यौ राय लगाय ।
रमैं सदा सव कुमति वसि, सुधि वुधि विसराय ।।८४६।।

नहि कुभाव सौकलि विषै, और कुमत्री कोय ।
चौर को पूठी रखा, कहा भलाई होय ।।८४७।।

चोरन नहीं इद्रीन से, है तिनही कौ जोर ।
ते कुभाव कै वलि सदा, करै कर्म अति घोर ।।८४८।।

चौरैं अहि निसि नृपति घर, डर नहि राखै मूलि ।
रच न दीखै गुण रतन, देखौ नृप की भूलि ।।८४९।।

भडारन निज ऋद्धि सौ, तीन भुवन मै जार ।
कुवुद्धि कुभावनि दावियौ, दे भव भोग असार ।।८५०।।

राव ह्वै रह्यौ रक अति, गुन धन विन नहि चैन ।
भौंदू भूपति विपति मै, परचौ वृथा वसि मैन ।।८५१।।

भूलि रह्यौ नृप आपकौ, होय रह्यौ मतिहीन ।
भाव सुभट सव वुद्धि ढिग, वैठे वोध अधीन ।।८५२।।

सुवुद्धि रहै जु विवेक धरि, वैठी परम उदास ।
राव वात वूझै नही, करै कुवुद्धि विलास ।।८५३।।

आतम भाव भटानि कौ, नहि नृप कै सचार ।
मोहराव के राव तनि, दावि लीयौ दरवार ।।८५४।।

मोह राव को है सही, सेवक सदा कुभाव ।
कुवुद्धि पुत्रिका मोह की, चाहै मोह प्रभाव ।८५५।।

भेद न समझै मूलि ही, भौदू करै विसास ।
मोह तिमर करि अ ध नृप, भयौ कुवुद्धि कौ दास ।।८५६।।

निज परणति पर्याय निज, नृप परजा सुखदाय ।
तिनकौ वास न कुमति पै, वसै सुवुद्धि वसाय ।।८५७।।

सर्व विभाव विवाद खल, सकल विपरजै भाव ।
अखिल कुपर्याया सदा, वसै कुवुद्धि प्रभाव ।।८५८।।

जीवक्षेत्र मैं जड मयी, रहै कुभाव अनेक ।
कैसै आय सकै महा, सुवुद्धि सुभाव विवेक ।।८५९।।

है मिथ्यात महीप गुर, मोह प्रकृति मति हीन ।
पाप धरै प्रोहत पदा, जो जग माहि मलीन ।।८६०।।

कुवुधि कुभाव प्रभाव करि, राव ह्वै रह्यौ रक ।
पटरानी राजै महा, राज विगार निसक ।।८६१।।

आवै असुभ महीप पै, शुभ कौ देय विडारि ।
शुद्ध भाव की वात हू, जहाँ कीया ह्वै रारि ।।८६२।।

कायर कृपरा कुचील जो, भाव भूप कै ताहि।
सेनापति पदवी धरचा, कैसे राज जमेहि ॥८६३॥

द्वारपाल दरावर मै, परमादी परिणाम।
रौके नहि अपराध कै, राकै विधि कौ नाम ॥८६४॥

दुराचार कुटवाल है, सेठ महासठ भाव।
वहुरि महा अन्याव से, जहा मीर उमराव ॥८६५॥

कुविसन सेना है जहा, वसती जहा विभाव।
है फैलाव कुभाव कौ, राव करै नहि न्याव ॥८६६॥

भोग भावना भर्म मैं, भूपही दोयो भमाय।
करै कामदारौ कुमन, सुमनहु सकै न आय ॥८६७॥

छल प्रपच पाखण्ड अर, पिसुन धूर्त खल भाव।
पेसगार ए कुमनके, चाहै कुबुद्धि कुभाव ॥८६८॥

फैलि रहे वद फैल सहु, मैल भरे तहकीक।
खेल मचि रह्यौ पुर विपै, वोलै वचन अलीक ॥८६९॥

अपने अपने स्वारथी, नही स्वामि की पीर।
राज दावि लीयो अरचा, सुभटन नृप कै तीर ॥८७०॥

ज्ञानावर्ण जु कर्म खल, मित्र मोह कौ एह।
ज्ञाना शक्ति दावै सवै, दे दुख दोष अछेह ॥८७१॥

दरसन आवरणी कर्म, द्रिग अवरोध करेय।
भाव भडनि कौ भूप कौ, दरसन होन न देय ॥८७२॥

कर्म वेदनी वलवता, महा मोह कै जोर।
करै असाता जीवकौ, करवावै अति सोर ॥८७३॥

कबहुक साता देय कै, तुरत खोसि ही लेय।
सुखन अतिंद्री होन दे, भव भव कष्ट करेय ॥८७४॥

लाग्यौ काल अनादि कौ, नृप कौ मोह पिसाच।
थावर जगम जोनि मै, करवावै वहु नाच ॥८७५॥

एक ठौर रहने न दे, मोहासुर असुरेस ।
कवहुक सुर नर पसु करै, कवहुक नारक भेस ।।८७६।।

आयु नाम है कर्म इक, सहचर मोह नरेस ।
जीव अमर सो अलप थिति, करि राख्यो राजेस ।।८७७।।

नाम कर्म नामा करम, नाना देह धराय ।
भरमावै नरनाथ कौ, हुकम मोह कौ पाय ।८७८।।

गोत्र कर्म अति भर्म जो, जीवहि मोह वसाय ।
ऊ च नीच गोत्रादि मैं, लघु दीरघ करवाय ।८७९।।

अतराय दुखदाय अति, मोहराय परसाद ।
जीवराय को जगत मैं, करै अनेक विषाद ।।८८०।।

विघन करै आनद मैं, मगन होन नहि देय ।
विसतै वुरे जु कर्म वसु, भव भव प्राण हरेय ।।८८१।।

क्रोध मान माया मदन, लोभ हासि रति सोक ।
अरति जुगपसा मोह के, सुभट रहे हैं रोकि ।।८८२।।

जान देंहि निज धाम नहिं, राखै जगत मझार ।
नरक निगोदादिक दुख, देहि अनत अपार ।।८८३।।

क्रमि कीटादिक जोनि मैं, जामण मरण कराय ।
कारागृह मै नृप परचौ, दुख देखे अधिकाय ।।८८४।।

छूटि सकै नहि वधतै, रहै वहौत वेहाल ।
खेंच्यौ विषै कषाय कौ, भटकत फिरै भूपाल ।।८८५।।

टिक न सकै गढ वाधिकै, लरि न सकै वलहीन ।
चउरासी लख जोनि मैं, भ्रमण करै अति दीन ।।८८६।।

निजपुर आतम भाव जे, तहा सकै नहि जाय ।
भवकातार असार मैं, भरमैं भौंदूराय ।।८८७।।

काल अनतानत मैं, कवहुक सुर पद होय ।
सुर भवतै मानुष जनम, अति दुर्लभ है सोय ।।८८८।।

ऐकेंद्रीय विकलत्रय, पसु नारक दुख रूप ।
जन्म अनत निगोदि मैं, धरै मोह वसि भूप ।।८८९।।

कवहुक कोइक जीवकी, भ्राति दूर ह्वै जाय ।
जानै निज विरतात सो, ठानै मोख उपाय ।।८९०।।

पूरण भाग प्रभाव तै, सतगुर दरसन होय ।
करै वीनती तव यहै, सुनै दयाकरि सोय ।।८९१।।

जीवो वाचा—

स्वामिन इह ससार है, अति असार भ्रमजार ।
भरमू तामैं मोह वसि, लहू न भवजल पार ।।८९२।।

कैसैं पहूचू निजपुरा, भ्रमण मिटै किम नाथ ।
मोह पासि तूटै कवै, अवलोकू निज साथ ।।८९३।।

सो उपाय भाषौ प्रभु, तुम हौ करुणा सिंधु ।
लूटि सकै नहि मोह खल, छूटि जाय सव वंध ।।८९४।।

।। इति वहिरात्मा दशा वर्णन ।।

——

।। श्री गुरु वाचा ।।

दोहा

श्री गुरु वाचा—

तू अनादि वध्यौ भया, भ्रम करि भव कै माहि ।
निज स्वरूप निज भाव भड, तै अवलोके नाहि ।।८९५।।

सुवुधि महाराणी शुभा, पतिवरता परवीन ।
ताकी तोहि न सुधि कछू, ता विन तू अति दीन ।।८९६।।

है प्रवोध मत्री महा, ताकौ तोहि न भेद ।
यक छिन मैं सो साहसी, करै करम दल छेद ।।८९७।।

भाव अनत महाभडा, मोह विदारण सूर।
कुवुधि कुभाव प्रभाव तै, रहै तो थकी दूर ॥८९८॥

बैठे सर्वं विवेक पै, जहा सुवुधि प्रबोध।
तेरे पुर मैं सर्वही, वसै विभाव अबोध ॥८९९॥

पटरानी तेरै बुरी, कुबुध कलक निवास।
बुरौ कुभाव प्रधान है, धरै मोह की आस ॥९००॥

बैठी सुबुधि अनादि की, घर विवेक कै वीर।
तेरे सुभ चितक सवै, है विवेक कै तीर ॥९०१॥

करै राज वेढग तू, निजपुर की सुधि नाहि।
अविवेकी अज्ञान तू, होय रह्यौ भव माहि ॥९०२॥

छाडि कुवुधि को सग अव, मेल्हि मोह कै याहि।
निज वसि करि मन चपल कौं, ठाट कुभाव उठाहि ॥९०३॥

वसती काढि विभाव की, काम क्रोध कौ ठेलि।
तोरि मोह की पासि अव, तज कुवुद्धि की केलि ॥९०४॥

सम्यक गढ मैं वास करि, लेहु सुवुधि वुलाय।
करहु दूरि मत्री कुमन, ज्ञान मत्रि ठहराय ॥९०५॥

करि विवेक कौ राजगुर, पापहि तुरत उथापि।
प्रोहित पद दै धर्म कौ, शुद्ध स्वभाव सथापि ॥९०६॥

सेनापति तप सजमा, भड करि अपने भाव।
निज प्रभाव उमराव करि, इह उपाय है राव ॥९०७॥

शुभाचार कुटवाल करि, दुराचार सहु मेटि।
दरसन रूप उघारि हग, चारित सज्जन भेटि ॥९०८॥

हरहु प्रभाव विभाव कौ, मोह राव की कारिण।
मति राखौ महिपाल तुम, गुर आज्ञा उर आरिण ॥९०९॥

एक न राखौ मोह कौ, मन तन कौ परसग ।
निज स्वभाव सेना करे, करहु करम दल भग ।।९१०।।

राज करहु निजपुर विषै, अटल अचल सुख रूप ।
जहा न वस है मोह कौ, नही काल सौ भूप ।।९११।।

राज विगारा दूर करि, राज सुधारा लेहु ।
यह उपाय करि राय तू, ममता भाव हरेहु ।।९१२।।

काया काची है गढी, जहा काल कौ जोर ।
रहनौं जामैं मोह वसि, वली काम मे चोर ।।९१३।।

तजि काया गढ सर्व ही, सूषिम और सथूल ।
करि निवास निजपुर विषै, यहै वात सुख मूल ।।९१४।।

सुनी सुगुर की वारता, उर धारी भवि जीव ।
वुद्धि प्रवोध प्रभाव करि, त्यागे भाव अजीव ।।९१५।।

कियौ राज कटिक रहित, फेरि न विनसै राज ।
इहै वात जे उर धरै, करै निजातम काज ।।९१६।।

गुर आज्ञा धारै नही, तजै न कुवुद्धि कुभाव ।
ते अभव्य जन जानियै, तथा दूर भवि राव ।।९१७।।

वहिरातमता त्यागि कै, अतरातमा होय ।
सो परमातम पद लहैं, इह निश्चै अवलोय ।।९१८।।

वहिरातम कौ वर्णना, जोहि सुनै धरि कान ।
सो वहिरातमता तजै, पावै आतम ज्ञान ।।९१९।।

निज लखिमी लखिया विना, है वहिरातम वीर ।
दौलति निज अनुभूति लखि, तिरै भवोदधि नीर ।।९२०।।

त्याग जोगि पर वस्तु जे, हेय कहावै तेहि ।
लेन जोगि निज भाव जे, उपादेय हैं एहि ।।९२१।।

हेय उपादेयनि कौ, जो विचार अविकार ।
सो विवेक भासै बुधा, ता सम और न सार ॥६२२॥

पढै सुनै अर सरदहै, इह जु विवेक विलास ।
सो अविवेक निवारिकै, पावै निजपुर वास ॥६२३॥

निजपुर सौ नहि कोइ पुर, जहा काल भय नाहि ।
कर्मन भर्मन कलपना, सुख अनत जा माहि ॥६२४॥

इति श्री विवेक विलास सपूर्ण ॥ लिखो सवाइ जैपुर मैं मिती पोस सुदि ३ व्रीसपतवार सवत १८२७ ॥ वाचै जीनै श्री स्वद वचनां ॥ श्री ॥

अध्यात्म बारहखड़ी

रचना काल —सं० १७६८ फागुण सुदी २

रचना स्थान :—उदयपुर (राजस्थान)

ॐ नम सिद्धेभ्यो नम ।। ॐ नम परमात्मने ।
अथ भक्त्यक्षर मालिका बावनी स्तवन ।
"अध्यात्म बारहखडी"—लख्यते ।।

श्लोक

मगलाचरण—

वदे मोक्षाधिप देव, मोक्षमार्गप्रकाशक ।
भुक्तिमुक्तिप्रदातार, भेत्तार कर्म्मभूभृता ।।१।।
गौतमादिमुनीन्वदे, वदे तत्वप्ररूपणा ।
वदे समाधितत्र च, त्रयीमूल तु नाटक ।।२।।
गुरुमानदरूपच, देव देवेन्द्रकीर्त्तित ।
वदे सवात्मरक्षाढ्य, ज्ञानब्रह्मं कल्पिणा ।।३।।
भक्त्यक्षरमयीमाला, ज्ञानतंत्रेण ग्रथिता ।
प्रभोर्नाना गुणस्तोत्र, पुष्पैं सौरभ्यशालिभि ।।४।।
मुनयो भ्रमरा यत्र, याति तृप्ति महाशया ।
नत्वा जिनाध्रि पद्मे च, अर्पयामि शिवाप्तये ।।५।।

दूहा

वदौ आदि अनादिकौ, जो युगादि जगदीश ।
कर्म्म दलन प्रभु जगपति, परमेश्वर चिदधीस ।।६।।
वदौ केवलभाव कौ, केवल चिनमय ज्योति ।
जाके परसत परम सुख, ऋद्धि सिद्धि सव होति ।।७।।
केवल रूप अनूप कौ, हरिहर विधि रविकत ।
कहिये श्रुति सिद्धात मैं, सो श्रीपति अरहत ।।८।।
शक्ति व्यक्ति धर मुक्तिकर, सदा ज्ञप्तिधर सत ।
वीतराग सरवज्ञ जो, सो गणपति भगवत ।।९।।

और न दूजो देवता, और न दूजो पथ।
शिव विरचि जगनाथ है, जो जिनवर ग्रंथ ॥१०॥

वदौ केवल राम कौ, रमि जु रह्यौ सब माहि।
ऐसी ठोर न देखिये, जहा देव वह नाहि ॥११॥

व्यापि रह्यौ सब लोक मैं, अग अलोक हू माहि।
लोक शिखर राजै प्रभू, साधु लखै निज पाहि ॥११॥

सब वामैं वह सबनि मै, वह है सब ते भिन्न।
वातै सब ही भिन्न हैं, वह भिन्नोच अभिन्न ॥१२॥

वधनहर हर नाम धर यम करि त्रासक सिंह।
वह जु हरी नरहरि धुरी, भवनासक नरसिह ॥१३॥

कल्याणातम शिव जिको, विधिकारी विधि नाम।
द्वादशाग सूत्र जु रचै, सहि विरचि सु राम ॥१४॥

रचै तत्व स्रिष्टी सवं, विरचै अतत नितं जु।
वहै विरचि न दूसरौ, सही वसै शिवमैं जु ॥१५॥

शिव जु मुक्ति कौ नाम है, सिव कल्याण जु होय।
शिव शकर जिन देव है, और न दूजो कोय ॥१६॥

कर्त्ता आतम भाव कौ, कर्त्ता शिव को सोय।
हर्त्ता सर्व विभाव कौ, निवसै जो शिवलोय ॥१७॥

रतनत्रय कौ जोग है, तातै जोगी जोय।
अतुल अनते गुणनि कौ, भोगन हारौ होय ॥१८॥

जोगी भोगी हरि सही, और न जोगी जोग।
ओर न भोगी भोग हैं, करि जु न जिन सजोग ॥१९॥

सर्वधाम मैं रमि रह्यो, रहै जु एकै ठाम।
रम्य सकल मै रमण जौ, रमैं अखिल मै राम ॥२०॥

सर्वग व्यापक विष्णु जो, सर्वज्ञो जिन ईश।
जयकारी जिन नाम है, जो महेश जगदीश ॥२१॥

गणनायक गणिनाथ जो, शक्ति अनत मुनिंद।
शक्ति मूल शक्तीश जो, शक्ति रूप जिनचंद ।।२२।।

ज्ञान शक्ति द्रिग शक्ति जो, वीरज शक्ति अनत।
सुख शक्ती युत जिन प्रभू, अमित शक्ति भगवत ।।२३।।

अतर वाहिर तमहरन, भानुपती जिनदेव ।
वुद्धि प्रदायक वुद्ध जो, सुगत सहित सुखदेव ।।२४।।

सुमति सुगति दातार जो, जिन गुरु देव दयाल।
नागर नित्य विसाल जो, थिर चर को प्रतिपाल ।।२५।।

गणपति पति जु समूह कौ, गणधर पूज्य जिनिंद।
नायक सवकौ है प्रभू, रहित जु नायक इद ।।२६।।

नाम विनायक और नहि, वहै विनायक देव।
सरसुति जाके मुख विषै, करीहौ ताकी सेव ।।२७।।

क्षेत्र जु कहिये द्वै विधी, स्वपर क्षेत्र विनु भर्म्म।
असख्यात परदेस जो, सो निज क्षेत्र सु मर्म ।।२८।।

पर क्षेत्र जु पर द्रव्य है, लोकालोक अकास।
लोक जु कहिये पु जधर, सकल द्रव्य परकास ।।२९।।

है जु अलोक सु एकलौ, जा मै अवर जु नाहि।
स्वपर क्षेत्र पालक प्रभू, क्षेत्रहु पालक हाहि ।।३०।।

क्षेत्र जु कहिये देह कौ, ताकौ पालक जीव।
जीव तणौं पति जिनवरा, क्षेत्रपाल पति पीव ।।३१।।

क्षेत्रज्ञो क्षेत्राधिपो, क्षेत्रपाल जिनदेव ।
और न दूजो देव को, एक देव अति भेव ।।३२।।

वदौं वा गुणधाम कौं, जो ज्ञानामृत पूर ।
प्रणति करौ सिर नायकै, करि मेरे अघ चूर ।।३३।।

सेऊ देव दयाल कौं, कर्म्म हनत अतिशूर।
द्रव्य कर्म्म नोकर्म्म अर, भाव कर्म्म ते दूर ।।३४।।

पूजौ आतम देव कौं, करै जु आतम सेव।
अ ेयातम जगदेव जौं, देव देव जिन देव ॥३५॥

अतुल गुणातम गुणमई, परगुण रहति जु देव।
निग्गुण कहिए जो प्रभू, गुण अनत निज वेव ॥३६॥

करौं अराधन नाथ की, जो अनत द्यु तिरूप।
अगणित शशि सूरिज विभा, नख सम नाहि अनूप ॥३७॥

गुण पर्यय स्वाभाव जो, सर्व विभाव वितीत।
अनत कला असम जु प्रभा, जगनाथो जगजीत ॥३८॥

आप एकलौ सर्वधर, एकानेक स्वरूप।
अनेकात आगम प्रगट, अनुभव रसकौं कूप ॥३९॥

वहिरगा कमला तजें, अमला कमला पासि।
सो कमलापति देव है, काटै जग की पासि ॥४०॥

कमला नाम न ओर है, कमला निज अनुभूति।
हृदै कमल राजै सदा, आतम सक्ति प्रभूति ॥४१॥

कमला निज अनुभूति है, वसै जु जिनकै माहि।
चरण कमल तजि जाय नहि, रहै सदा प्रभु पाहि ॥४२॥

नाहि प्रदेश जु भिन्न हैं, कमला अर प्रभूके जु।
द्रव्यर परणति भेद नहि, एक रूप अधिके जु ॥४३॥

जल तरग दुविधा नही, भानु रश्मि नहि भेद।
तैसै कमला हरि विषै, श्रुति गावै जु अभेद ॥४४॥

वह कमलाधर जिन प्रभू, वसै सदा मन माहि।
मै मूरख अलगौ रहू मो सम मूरिष नाहि ॥४५॥

वाही के परसाद तै, खोलू मिथ्या ग्रथि।
तव वास्यौं विछुरू नही, ध्याऊ ह्वै निरग्रथि ॥४६॥

रहू सदा मै हरि कनै, तजौ न हरि कौ सग।
जिन रगै रत्ता रहू, तजिकै द्विविधा साग ॥४७॥

नमो नमो वा देव कौं, द्रव्य भाव मन लाय ।
सबही तै न्यारो रही, सेऊ वाके पाय ।।४८।।

छंद नाराच

तू कर्म्मनाग केहरी, तुही जुहै नृ—केहरी ।
प्रकृत्य भाव दूरगो, तुही जु देव है हरी ।।
प्रभू जु केवलात्म को, सही जिनो हरो हरी ।
गुण अनत नायकौ, तु ही गणेश है धुरी ।।४६।।

तुही जिनेश सकरो, सुखकरो प्रजापती ।
तुही हिरण्यगर्भ को, अगर्भ को धरापती ।।
महा स्वशक्ति पूरको, तुही जिनो रमापती ।
रमाजु नाम भाम नाहि, शक्ति रूप है छती ।।५०।।*

तुही विशेष त्रा विशेष, शक्ति ते अनत है ।
सुचिद्विलास ज्ञानशक्ति, दृश्य शक्तिकत है ।।
अवाप्त रोम महाजु सत्व, तू जुहै तमहरो ।
विधिकरो दिनकरो, शिवकरो रमावरो ।।५१।।

सुयोगिनाथ नायको, भवहरो सुधाहरो ।
सुधातरो उमावरो, जपै जुता हिमाधरो ।।
सुनायको विनायको, सही स्वयोगदायको ।
अकाय को अमाय को, सदा सुवुद्ध नायको ।।५२।।

निजधरो परकरो, परहरो यतीस्वरो ।
शिवोभ वोधवो सदा, शिवो सही रमाधरो ।।
तु ही जिनेददेव, और दूसरौ जु भेदना ।
सही जु शक्ति व्यक्ति रूप, पाप पुण्य छेदना ।।५३।। ×

---

* छद सख्या ५१ मूल प्रति मे नही है ।

× छद तो है, पर सख्या ५४ नही है ।

तु ही मुनीश वृद्धि दो, स्व ऋद्धि दो निरतरो।
अनतभाव व्यक्ति दो, प्रबुद्ध है क्षमकरो ॥
अनादि ब्रह्मरूप को, अरूप को विसुद्ध जौ।
महाधि लछिमूल जो, निकूप को प्रसिद्ध जौ ॥५४॥

क्षमापरो परापरो, परपरो वरकरो ।
हितकरो मितकरो, दयाकरो कृपाकरो ॥
महासुदेव तू वही, न ओर कोय दीसही ।
विभू प्रभू महाप्रभू, स्वभू अभू जगीसही ॥५५॥

तुही तुही तुही सही, न तो समोन्य दूजही।
जिहा तिहा लखै जु साधु, एक तोहि पूजही ॥
तु ही यती अनर्भ को, अगर्व को पवर्ग को।
अवर्ग को सुसर्व को, मुनीश ध्येय सर्ग को ॥५६॥

नराधिपो सुराधिपो, फरणाधिपो तुझै भजै ।
अनादि काल के जु कर्म्म, दासतै परे भजै ॥
तु ही जु नाहिं बाल है, न वृद्ध है युवा न है।
अनेक एक ज्ञान रूप, ईश तू निधान है ॥५७॥

जिनोत्तमो जिनोत्तमो, जनोत्तमो जगोत्तमो ।
वरोत्तमो वुधोत्तमो, नरोत्तमो निजोत्तमो ॥
परोत्तमो पुरोत्तमो, धुरोत्तमो गुरोत्तमो ।
सुरोत्तमो सतोत्तमो, सितोत्तमो हितोत्तमो ॥५८॥

सजोग को अजोग को, सवोध को अवोध को।
अरोग को असोग को, स्वसोध को निरोध को ॥
अलोक को सलोक को, अथोक को सथोक को।
अनोघ को अमोघ को, विवोध को अरोध को ॥५९॥

नहीं जु शून्य वादि को, जिनो अनादि आदि को।
तुही जु स्यादवादि को, अनतभेद है इको।।
सदा जु सप्तभग भास को, अनत भास को।
अभास है अकास है, अनास है विभास को ।।६०।।

अरणाथि को जु आथिको, जिनद लवहाथ को।
सदा जु सर्वसाथ को, त्रिलोकनाथ नाथ को।।
नही जु तीरथकरो, तिथकरो शिवकरो ।
तुही सुबुद्धिदाय को, अपाय को अकिकरो ।।६१।।

अरणाथि को कहता अरणाथि जे निरगथ साधु त्या को पति छ अथवा आपही वहिरगा कमलास्यौं अलिप्त सर्व परिग्रह रहित नगन दिगबर छै अथवा अरणाथि जे गरीब लोक त्याको प्रतिपाल छै अथवा अरणाथि जे निगोदादि थावर जीव ज्याके इद्री प्राणादिक की आथि थोडी त्याको दयाल छै अथवा अरणाथि जो अलोकाकास जहा जीवादि पदार्थ नही शून्य रूप अनतो छै। तीहू को ज्ञायक अतरजामी छै।। अर आथिको कहतां आरितणा धणी जो ऋद्धिधारी मुनि त्या को नाथ छै अथवा आप ही अनत ऋद्धि सिद्धि समृद्धि को भरयो छै। अनत लक्ष्मी को नाथ छै अथवा आथि का धणी इद्र चक्रवर्त्यादिक त्यांको नाम छै। अथवा सभाग्या धनवान लोक त्याको प्रभू छै अथवा इद्रियादिक की आथि जाके घसा जेये इद्री आदिक जगम जीव त्याको रक्षक दयापाल छै अथवा आथि जो लोकाकाश जहां जीवादि पदारथ पाजे तीको धनी छै लोक को स्वामी छै।

प्रभू जु केवलीस जो, अनादिकाल ज्ञायको।
सुरेश यस्य पायको, तुही जिनो अमान को।।
सही निर्जवय दायको, तुही अनत ज्ञायको ।
जु सादि औ अनादि रूप, तू जु तत्व नायको ।।६२।।

पुराण है, पुनीत है, सही सुयोगि गम्य है।
वीतीत है अतीत है, सही सुनाक रम्य है ।।
चिदात्म है सुस्वात्म है, अनतभाव स्वात्म है ।
भवात है अशात है, सशात है निजात्म है ।।६३।।

महा जु निर्जु [illegible], [illegible] [illegible] जो ।
तु ही स्वयोग है समाधि, [illegible] तुम जो ॥
निरीह जो अनीहको अनीह जो अनीह जो ।
निरीशको अनीश्वरो, अनीश्वरो सुनीह जो ॥६४॥

तुही जु नाम नाम है, सही निराम राम को ।
तुही जु सर्वधाम है, सही जु एक धाम को ॥
तुही अनंत धाम है, सही जु एक धाम को ।
न ही जु नाम भेद रूप राम है अकाम को ॥६५॥

सुनिद्ध तू प्रसिद्ध तू, विरुद्ध कौ विनाश तू ।
सही जु अर्हदेव है, सदा स्वचक्षु भासतूं ॥
सुसूरि तू प्रसूरि तू, सदाजु तू अध्यापको ।
सु साधु तू अबाध तू, अलोक लोक मापको ॥६६॥

असाध को असाध्य तू, सही जू योग साध्य है ।
अराधि तूं उपाधिना, तुही मुनी अबाध्य है ॥
तुही जु ना अराधको, सबै तुझै अराधही ।
कभी जुना विघातको, महा जु साधु साधही ॥६७॥

प्रजापती सुगोपती, सदा च गोरखोयती ।
तुही अनंतज्ञान दो, सुदत्त है धरापती ॥
सु पौरषो अपार तू, महास्व पौरषेश तू ।
सबै प्रकृत्य चूर को, अरूप को जिनेश तू ॥६८॥

अमूरतो अधूरतो, असूरतो निरंतको ।
महा अनंत अमूरतो, सबै विभाव अंतको ॥
स्वरूपदो अरूपदो, स्वभावदो विभाण्वरो ।
अरजको निरंशको, अनंतभा प्रभाण्वरो ॥६९॥

सदासुभाव कारको, विभावता विदूरगो ।
महा अभाव भावको, अभाव भाव चूरगो ।।
महा सभाग भाग्यदो, सुशात भाव पोषको ।
स्वभाव भुक्ति भोगको, सदा विमुक्त मोषको ।।७०।।

अद्वैतभाव मुक्त जो, सद्वैत भाव मुक्त जो ।
अनेक एक दोय रूप, है अरूप युक्त जो ।।
निराकृतो चसाकृतो, विशेष भेव देव जो ।
रमापती जिनाधिपो, शिवाधिपो अभेव जो ।।७१।।

रमाधवो उमाधवो, भजै जु जाहि साधवो ।
शचीधवो धराधवो, जुपै जु जाहि राधवो ।।
सदा सुवुद्धि राधिका, पती मुनीश ईश जो ।
सवै कुवुद्धि खडको, महाव्रती अतीश जो ।।७२।।

इध्याक वशतारको, सु सोमवश तारको ।
महाकुरू जु वशतार, नाथ उग्रपारको ।।
सुविप्र वर्ण तारणो, सुक्षात्र वश धारणो ।
सुवैश्य वश तारणो, त्रयी उधार कारणो ।।७३।।

तुही जु शूद्र तारणो, न पु स ढोर तारणो ।
सुरा सुराच नारकी, जु नारि भी उधारणो ।।
सही जु जन्म अतिरै, उधारि है विनात्रयी ।
जिके सु सम्यका प्रभू, तुझै जु ध्याय ह्वै जयी ।।७४।।

सुनाभि जो उधार को, सुचक्रनाथ तारको ।
अनादि जोग धारको, सुकर्म्म भूमि कारको ।।
अनतसौखि सारको, जुगादि नाथ साथको ।
सही जु आदिनाथ है, तुही अनादि नाथको ।।७५।।

महायती अजीत जो, असभवो च शभवो ।
सदाभिनदनो जिनो, मतीशनाथ त्र भवो ।।
सुपद्मनाभ पद्म जो, निपद्मनाथ नाथसो ।
सही सुपास है प्रभु, रहै जु पासि साथ सो ।।७७।।

सुचद्रनाथ चद्रधार, चद्रकोटि ज्योतिसो ।
अनतज्योति धार जो, अनतसूर द्योति सो ।।
सुपुष्प तुल्य दत यस्य, पुष्पदत कत सो ।
सुशीतलो श्रियकरो, श्रियासनाथ सतमो ।।७८।।

सदा जु वाम वैसुपूजि वासुपूज्य देव जो ।
सुनिर्मलो अनत जो, सुधर्म्मनाथ सेव जो ।।
सही सु सातिनाथ है, प्रशात सर्व्वकारको ।
वही जु कुथवादि जीव, रक्ष को उधार को ।।७९।।

जु कुथवादि जीवनाथ, कुथनाथ देव सो ।
अरो अजो रजोहरो, हमैं जु देऊ सेव सो ।।
सुमल्लनाथ मल्लिनाथ मोहमल्ल मार जो ।
अनतजीत देव जो, सुव्रतनाथ सार जो ।।८०।।

मुनीशव्रत्तदायको, जिनो मुनीसुव्रत को ।
नमैं सुरासुरीतरा, नमीशना अव्रत्त को ।।
नही च कृष्ण भाव सो, सदा जु कृष्णरूप सो ।
सही जु कृष्ण ध्येय है, सु नेमिनाथ भूप सो ।।८१।।

यदूकुलेशनाथ जो, सु यादवो उधार वो ।
शिवा जु देवि तार को, समुद्रजीत पार को ।।
प्रभो गीरीश नायको, सुराज सविडार को ।
सु बालब्रह्मचारको, सुराजल उधार को ।।८२।।

सदा जु पासनाथ जो, रहै न जीक नाथ जो।
सही जु वीरनाथ जो, महासुवीरनाथ जो ।।
सदा जु वर्द्धमान जो, सही सुवर्द्धमान सो।
मतिकरो गतिकरो, जु सन्मती अमान सो ।।८३।।

अतीव वीर धीरवीर, है प्रभू सुनीर जो।
वसै सदा जु आप मै, हरै जु सर्व वीर जो ।।
जु पासि है अपासि है, प्रभु जु सर्वनाथ सो।
अनत है जु एक रूप, तीर्थनाथ नाथ सो ।।८४।।

इत्यादि है अनत नाम, एक वीतराग जो।
अनादि है अनतधाम, वाहिस्यौ जु लाग जो ।।
महाविदेह क्षेत्र आदि, एकसौ जु सत्तरी।
त्रिपच कर्मभूमि माहि, जे विभू महत्तरी ।।८५।।

जिके जु अर्द्ध सिद्ध साधु, केवली निरजना।
गणाधिपा श्रुताधिपा, जिनाधिपा अरजना ।।
सुरजना सवै जु लोक, भारती जिनोद्भवा।
मुझै जु देऊ शुद्ध तत्व, ईश्वरी मुखोदभवा ।।८६।।

दोहा

सरस्वती स्तुति—

सरवग के मुखतै भई, सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती, सुर नर मुनिजन सेवि ।।८७।।

अक्षर जो क्षरि है नही, अनिधन अवितप देव।
सोई अक्षर वावनी, प्रकट करै अभिलेख ।।८८।।

तेतीसौ विजन जिके, सुर चौदा सव होय।
जिह्वा मूली पुलतजो, गज कुभा कृति जोय ।।८९।।

अनुस्वारो जु विसर्ग है, ए सव वावन अक।
अ आ इ ई औ लगै, चौदा सुर जु निशक ॥६०॥

क का आदि हकारलौं, विंजन है तेतीस।
अ अनुस्वारो जानिये, अः विसर्ग धर ईश ॥६१॥

पुलतज कहिये उच्चसुर, वह जु त्रि मात्रा जानि।
गज कु भा कृति गुरनितें, जिह्वा मूलि प्रवानि ॥६२॥

द्वापचाशत अक्षरा, वहुरि जिके वीजाक।
सयोगी द्वित अक्षरा, सवकौ प्रगट शिवाक ॥६३॥

सव अक्षर के आदि ही, राजे प्रणव स्वरूप।
ॐकार अपार प्रभु आपै आप अनूप ॥६४॥

सो अक्षर नही और है, अक्षर रूप सु आप।
तातैं ॐ आप है, हरै सकल सताप ॥६५॥

देव शास्त्र गुरु की कृपा, तातै आनन्द पूत।
भापै अक्षर वावनी, नमि जिन मुनि जिन सूत ॥६६॥

× × × ×

आगै चउदह स्वर अनुमार विसर्ग। ए पोडसाक्षर त्यामैं मुख्य अकार, अकार विना ककारादि सर्व अक्षर खोडा छै। क असौ शब्द उचार कीजै। तब अइसौ सुर-ककार मैं उचरै। सर्व अक्षरा कौ जीवजोग अकार छै। तातैं प्रथम ही अकार को व्याख्यान करै छै। सा एकाक्षरी नाममाला मैं अ नाम हरिहर कौ कह्यो सो हरिहर जिन भगवांन ही कौ नाम छै। पापा नैं हरै। तास्यौं हर सारा का इद्र तीस्यौं हरियम कुजर नैं भयकारी। सिंह समान तीस्यौं। हरि सर्व कर्म्म नैं जीतै। तिस्यौं जिन सो ए नाम एक श्री जी का छै॥

श्लोक

अनादिनिधन वदे, जिन हरिहराभिध।
अलक्ष लक्षणोपेत, अमरामरमीश्वर ॥१॥

सोरठा

अकाराक्षर वर्णन—

अक्क कहिये श्रुति माहि,
हरिहर कौ इह नाम है ।
तो विनु अवर सुनाहि,
हरिहर जिनवर देव तू ॥१॥

छंद वेसरी

अणोरणीया महतो महिता,
तू अद्भुत आतम गुण सहिता ।
तू अनत जितदेव अभीता,
भव सतान अनत विजीता ॥२॥

अर्द्ध मात्र तेरै नहि शत्रू,
अर्द्ध जु नारीश्वर जग मित्रू ।
तेरै कटिक अर्द्ध न पइए,
तू अर्द्ध जु नारीश्वर कहियै ॥३॥

*अमल चक्षु तू क्षायक दिष्टी,
अनत चक्षु तू ईश्वर सिष्टी ।
अमित पराक्रम धारी राया,
अतुल सुखातम रूप अकाया ॥४॥

अचल प्रकाश अनत सुलोकी,
लोकालोक विलोकक थोकी ।
अतुल लब्धि को तूही ईशा,
तू जु अयोनी सभव धीशा ॥५॥

---

* अनत कहता न्यारौ सर्व प्रपच सौ न्यारी छै, क्षायक द्रिष्टि जिहकी ॥
अमित कहता जिह की मरजाद अनती छै ॥

अनत दान अर अनत जु लाभा,
अनत सुभोगुपभोग महाभा ।
तेरी समता तू ही सामी,
तो सौ और न अतरजामी ।।६।।

अजड अतिंद्रिय ज्ञान अनता,
तू जु विकल्प प्रवाह हनता ।
सकल्पा अर सकल विकल्पा,
मेरे मेटि जु देव अकल्पा ।।७।।

अकषाई तू परम पुनीता,
तू जु अलेसी देव प्रतीता ।
सुख जु अतिंद्रिय देहु जु मोकौं,
धोकौं द्रव्य भाव करि तोकौ ।।८।।

अमलातम तू विमल अरूपी,
अनहारी तू तृप्त स्वरूपी ।
तू जु अतेंद्री देव अजोगी,
तू जु अवेदी वेदक लोगी ।।९।।

अजरातम तू अजरण साई,
तू जु अमृत्यु अकाल गुसाई ।
तू जु असेष वितीत अशेषा,
तू अचलातम जन्मन भेषा ।।१०।।

तू जु अचिंत्यातम अति धामी,
चिंतऊ कैसे तो को स्वामी ।
अल अल पूरण अत्यर्था,
तेरै नाही एक अनर्था ।।११।।

तू हि अनर्थी अर्थ न एका,
तू हि जु अर्थी अर्थ अनेका ।
जड रूपी अर्थनि तैं न्यारा,
चेतन अर्थ तु ही जग प्यारा ॥१२॥

सकल अर्थ ए जग के झूठे,
तेरैं अर्थियती जगरूठे ।
अदभुत देव तुम्हारी प्रभुता,
तुम अधियोगी भरित सु विभुता ॥
तू जु अनस्वर रूप जिनदा,
तू अजर्य अजीरण इदा ।
तू जु अनत दीप्ति भगवता,
तू जु अग्रणी श्री अरहता ॥१३॥

अर्हन तू अरूजा अचल स्थिति,
तू अक्षोभ विदारक भवथिति ।
अच्युत भू पामोहु उधारौ,
दीनानाथ जु विरद उजारौ ॥
असभूश्नु है नाम जु तेरा,
मेरा हू करि देव निवेरा ।
तू अणिष्ट अति सूक्षम विमला,
तू अति निर्म्मल चिदघन अमला ॥१४॥

अनुभव नाथ अधिक तू प्यारा,
तू अशेष कलमष तैं न्यारा ।
मोकौं दै निज अनुभव स्वामी,
निज अनुभूति निवास स्वधामी ॥१५॥

---

१ १३वा तथा १४वा छन्द चार पक्तियो का है ।

अतिसगी तू है जु असगा,
यतिसगी तू है जु अरगा ।
रगनाथ तू है अती रगी,
लोकनाथ तू कथक त्रिभगी ।।१६।।

तू अधर्मंधक अगनि स्वरूपा,
तू अति धर्म्मी त्रिभुवन भूपा ।
तू अमूरतातम अति ज्ञानी,
तू जु अनतग अति गतिमानी ।।१७।।

अमृतोदभव अमृत आतम,
तू अशोक ध्वज अति जगदातम ।
तू अशोक घनशोक वितीता,
शोक सताप हरौ मम जीता ।।
तू अगण्य गणती तुझ नाही,
तू अचित्य वैभव समाही ।।१८।।

अभिनदन अभिनदनक देवा,
तू जु अपरमेयातम भेवा ।
तू सु अरिंजय फुनि जु अभीष्टा,
तू जु असस्कृत सव जग द्रष्टा ।।१९।।

त अप्राकृत अवधि जु वासी,
मेरी काटि देव जम पासी ।
तू जु अनाश्वा अशन वितीता,
तू जु अनत्पय अत्पय जीता ।।२०।।

तू जु अव्ययो नाश न तेरा,
व्यय अत्पय नाम जु मरणेरा ।
त अधिकोधि गुरु जु मुनीशा,
तू न अघातम देव अधीशा ।।२१।।

---

१ १८वा छन्द तीन पक्तियो का है ।

अक्षय तू च अनणु अग्राहक,
अविज्ञेय अवितर्क अवाहक ।
तू जु अगम्य अध्यातम गम्या,
अक्षप्तो तू परम जु रम्या ।।२२।।

तू अमोघ शुभ वाच जु स्वामी,
मोघन तू जु कदापि अकामी ।
मोघ जु नाम कहै सु वृथा को,
तू कबहू न वृथा वितथा कौ ।।२३।।

तू अमोघ शाशन जगनाथा,
तू अमोघ भाषक जिननाथा ।
तू अमोघ आज्ञादायक है,
तू जु जिनदा सव लायक है ।।२४।।

तू जु अतीद्रिक उपमाराया,
तू अधिपति अर अधिप अछाया ।
तू अचित्य चितक जगदीशा,
तेरी आज्ञा सवकै सीसा ।।२५।।

अधिदैवत तू अप्रतिघाता,
अप्रतिधो अति जगत विख्याता ।
तू अमुग्ध अति मुग्ध जु लोका,
तेरी सेव न जानहि वोका ।।२६।।

अमित सुज्योति श्री भगवता,
तू जु अमोमुह ओज अनता ।
तू जु अधिष्टान अप्रतिष्टा,
तेरी सर्वग ख्यात प्रतिष्टा ।।२७।।

महायती अजीत जो, असभवो च शभवो ।
सदाभिनदनो जिनो, मतीशनाथ व्रंभवो ॥
सुपद्मनाभ पद्म जो, निपद्मनाथ नाथसो ।
सही सुपास है प्रभु, रहै जु पासि साथ सो ॥७७॥

सुचद्रनाथ चद्रधार, चद्रकोटि ज्योतिसो ।
अनतज्योति धार जो, अनतसूर द्योति सो ॥
सुपुष्प तुल्य दत यस्य, पुष्पदत कत सो ।
सुशीतलो श्रियकरो, श्रियासनाथ सतसो ॥७८॥

सदा जु वास वैसुपूजि वासुपूज्य देव जो ।
सुनिर्मलो अनत जो, सुधर्म्मनाथ सेव जो ॥
सही सु सातिनाथ है, प्रशात सर्व्वकारको ।
वही जु कुथवादि जीव, रक्ष को उधार को ॥७९॥

जु कुथवादि जीवनाथ, कुथनाथ देव सो ।
अरो अजो रजोहरो, हमैं जु देऊ सेव सो ॥
सुमल्लनाथ मल्लिनाथ मोहमल्ल मार जो ।
अनतजीत देव जो, सुव्रतनाथ सार जो ॥८०॥

मुनीशव्रत्तदायको, जिनो मुनीसुव्रत को ।
नमैं सुरासुरीतरा, नमीशना अव्रत्त को ॥
नही च कृष्ण भाव सो, सदा जु कृष्णरूप सो ।
सही जु कृष्ण ध्येय है, सु नेमिनाथ भूप सो ॥८१॥

यदूकुलेशनाथ जो, सु यादवो उधार वो ।
शिवा जु देवि तार को, समुद्रजीत पार को ॥
प्रभो गीरीश नायको, सूराज सविडार को ।
सु बालब्रह्मचारको, सुराजल उधार को ॥८२॥

सदा जु पासनाथ जो, रहै न जीक नाथ जो।
सही जु वीरनाथ जो, महासुवीरनाथ जो ॥

सदा जु वर्द्धमान जो, सही सुवर्द्धमान सो।
मतिकरो गतिकरो, जु सन्मती अमान सो ॥८३॥

अतीव वीर धीरवीर, है प्रभू सुनीर जो ।
वसै सदा जु आप मैं, हरै जु सर्व वीर जो ॥

जु पासि है अपासि है, प्रभु जु सर्वनाथ सो।
अनत है जु एक रूप, तीर्थनाथ नाथ सो ॥८४॥

इत्यादि है अनत नाम, एक वीतराग जो ।
अनादि है अनतधाम, वाहिस्यौं जु लाग जो ॥

महाविदेह क्षेत्र आदि, एकसौ जु सत्तरी ।
त्रिपच कर्मभूमि माहि, जे विभू महत्तरी ॥८५॥

जिके जु अर्द्ध सिद्ध साधु, केवली निरजना।
गणाधिपा श्रुताधिपा, जिनाधिपा अरजना ॥

सुरजना सवै जु लोक, भारती जिनोद्भवा।
मुझे जु देऊ शुद्ध तत्व, ईश्वरी मुखोदभवा ॥८६॥

दोहा

सरस्वती स्तुति—

सरवग के मुखतै भई, सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती, सुर नर मुनिजन सेवि ॥८७॥

अक्षर जो क्षरि है नही, अनिधन अवितप देव ।
सोई अक्षर बावनी, प्रकट करै अभिलेख ॥८८॥

तेतीसौ विंजन जिके, सुर चौदा सब होय ।
जिह्वा मूली पुलतजो, गज कु भा कृति जोय ॥८९॥

अनुस्वारो जु विसर्ग है, ए सब बावन अक।
अ आ इ ई औ लगें, चौदा सुर जु निशक ॥६०॥

क का आदि हकारलों, विंजन है तेतीस।
अं अनुस्वारो जानिये, अः विसर्ग धर ईश ॥६१॥

पुलतज कहिये उच्चसुर, वह जु त्रि मात्रा जानि।
गज कुंभा कृति गुरनितें, जिह्वा मूलि प्रवानि ॥६२॥

द्वापचाशत अक्षरा, वहुरि जिके बीजाक ।
सयोगी द्वित अक्षरा, सबको प्रगट शिवाक ॥६३॥

सब अक्षर के आदि ही, राजै प्रणव स्वरूप।
ॐकार अपार प्रभु आपै आप अनूप ॥६४॥

सो अक्षर नही और है, अक्षर रूप सु आप।
तातैं ॐ आप है, हरैं सकल सताप ॥६५॥

देव शास्त्र गुरु की कृपा, तातैं आनन्द पूत।
भाषै अक्षर बावनी, नमि जिन मुनि जिन सूत ॥६६॥

× × × ×

आगें चउदह स्वर अनुसार विसर्ग। ए षोडसाक्षर त्यामैं मुख्य अकार, अकार विना ककारादि सर्व अक्षर खोडा छै। क असौ शब्द उचार कीजे। तब अइसौ सुर-ककार मैं उचरै। सर्व अक्षरां को जीवजोग अकार छै। तातैं प्रथम ही अकार को व्याख्यान करै छै। सा एकाक्षरी नाममाला में अ नाम हरिहर को कह्यो सो हरिहर जिन भगवान ही को नाम छै। पापा नै हरैं। तास्यौं हर सारा का इद्र तीस्यौं हरियम कुंजर नै भयकारी। सिंह समान तीस्यौं। हरि सर्व कर्म्म नै जीतें। तिस्यौं जिन सो ए नाम एक श्री जी का छै ॥

श्लोक

अनादिनिधन वदे, जिन हरिहराभिध।
अलक्ष लक्षणोपेत, अमरामरमीश्वर ॥१॥

सोरठा

अकाराक्षर वर्णन—

अक्क कहिये श्रुति माहि,
हरिहर को इह नाम है ।
तो विनु अवर सुनाहि,
हरिहर जिनवर देव तू ।।१।।

छंद वेसरी

अणोरणीया महतो महिता,
तू अद्भुत आतम गुण सहिता ।
तू अनत जितदेव अभीता,
भव सतान अनत विजीता ।।२।।

अर्द्ध मात्र तेरै नहि शत्रू,
अर्द्ध जु नारीश्वर जग मित्रू ।
तेरै कटिक अर्द्ध न पइए,
तू अर्द्ध जु नारीश्वर कहियै ।।३।।

*अमल चक्षु तू क्षायक दिष्टी,
अनत चक्षु तू ईश्वर सिष्टी ।
अमित पराक्रम धारी राया,
अतुल सुखातम रूप अकाया ।।४।।

अचल प्रकाश अनत सुलोकी,
लोकालोक विलोकक थोकी ।
अतुल लब्धि को तूही ईशा,
तू जु अयोनी सभव धीशा ।।५।।

---

* अनत कहता न्यारो सर्व प्रपच सो न्यारी छै, क्षायक द्रिष्टि जिहकी ।।
अमित कहता जिह की मरजाद अनतो छै ।।

अनत दान अर अनत जु लाभा,
अनत सुभोगुपभोग महाभा ।
तेरी समता तू ही सामी,
तो सौ और न अतरजामी ।।६।।

अजड अतिंद्रिय ज्ञान अनता,
तू जु विकल्प प्रवाह हनता ।
सकल्पा अर सकल विकल्पा,
मेरे मेटि जु देव अकल्पा ।।७।।

अकषाई तू परम पुनीता,
तू जु अलेसी देव प्रतीता ।
सुख जु अतिंद्रिय देहु जु मोकौ,
धोकौ द्रव्य भाव करि तोकौं ।।८।।

अमलातम तू विमल अरूपी,
अनहारी तू तृप्त स्वरूपी ।
तू जु अतेंद्री देव अजोगी,
तू जु अवेदी वेदक लोगी ।।९।।

अजरातम तू अजरण साई,
तू जु अमृत्यु अकाल गुसाई ।
तू जु असेष वितीत अशेषा,
तू अचलातम जन्मन भेषा ।।१०।।

तू जु अचिंत्यातम अति धामी,
चितऊ कैसें तो को स्वामी ।
अल अल पूरण अत्यर्था,
तेरै नाही एक अनर्था ।।११।।

तू हि अनर्थी अर्थ न एका,
तू हि जु अर्थी अर्थ अनेका ।
जड रूपी अर्थनि तै न्यारा,
चेतन अर्थ तु ही जग प्यारा ।।१२।।

सकल अर्थ ए जग के झूठे,
तेरै अर्थियती जगरूठे ।
अदभुत देव तुम्हारी प्रभुता,
तुम अधियोगी भरित सु विभुता ।।

तू जु अनस्वर रूप जिनदा,
तू अजर्य अजीरण इदा ।
तू जु अनत दीप्ति भगवता,
तू जु अग्रणी श्री अरहता ।।१३।।

अर्हंन तू अरूजा अचल स्थिति,
तू अक्षोभ विदारक भवथिति ।
अच्युत भू पामोहु उधारौ,
दीनानाथ जु विरद उजारौ ।।

असभूश्नु है नाम जु तेरा,
मेरा हू करि देव निवेरा ।
तू अणिष्ट अति सूक्षम विमला,
तू अति निर्म्मल चिदघन अमला ।।१४।।

अनुभव नाथ अधिक तू प्यारा,
तू अशेष कलमष तै न्यारा ।
मोकौं दै निज अनुभव स्वामी,
निज अनुभूति निवास स्वधामी ।।१५।।

---

१ १३वा तथा १४वा छन्द चार पक्तियो का है ।

अक्षय तू च अनणु अग्राहक,
अविज्ञेय अवितर्क अवाहक।
तू जु अगम्य अध्यातम गम्या,
अक्षप्तो तू परम जु रम्या ॥२२॥

तू अमोघ शुभ वाच जु स्वामी,
मोघन तू जु कदापि अकामी।
मोघ जु नाम कहै सु वृथा को,
तू कबहू न वृथा वितथा कौ ॥२३॥

तू अमोघ शाशन जगनाथा,
तू अमोघ भाषक जिननाथा।
तू अमोघ आज्ञादायक है,
तू जु जिनदा सव लायक है ॥२४॥

तू जु अतीद्रिक उपमाराया,
तू अधिपति अर अधिप अछाया।
तू अचित्य चितक जगदीशा,
तेरी आज्ञा सबकै सीसा ॥२५॥

अधिदैवत तू अप्रतिघाता,
अप्रतिघो अति जगत विख्याता।
तू अमुग्ध अति मुग्ध जु लोका,
तेरी सेव न जानहि वोका ॥२६॥

अमित सुज्योति श्री भगवता,
तू जु अमोमुह ओज अनता।
तू जु अधिष्टान अप्रतिष्टा,
तेरी सर्वंग ख्यात प्रतिष्टा ॥२७॥

अभयंकर तू उद्यतद्योती,
अखिलातम तू अखिल प्रज्योती ।
तू अपरधी अनत सु सत्ती,
कैसैं करिहौ तेरी भक्ति ॥२८॥

तू जु अनिद्रालू जोगेसा,
तू जु अतद्रालू अतिभेसा ।
तू जु अनामय आमय त्यक्ता,
व्यक्त अव्यक्त सुव्यक्ता व्यक्ता ॥२६॥

अनुभवगम्य सुगम्य अनूपा
अलभ अकथ्य अवाच्य अरूपा ।
अजर अछेद्य अभेद्य अतीसा,
अमर अलम्य सुलब्ध यतीशा ॥३०॥

अचर अचिंतित तू जु अशब्दा,
अति भवदाह बुझावन अब्दा ।
तू जु अनिंदित वदित देवा,
परम अनदी अकल अभेवा ॥३१॥

अतिदुल्लभ अतिवल्लभ स्वामी,
अतिपावन अतिभावन नामी ।
अति सु दयाल अनुत्तर साई,
अति सु कृपाल अपात गुसाई ॥३२॥

अतिधर्म्मी अभिवद्य जिनिंदा,
अतिज्ञानी अजरामर इंदा ।
अतिमर्म्मी अथकद निकदा,
अतिध्यानी अघचूर मुनिदा ॥३३॥

अतिदानी अति सुंदरनाथा,
अत्युत्तर पर अतिगुण साथा ।
तू जु अलक्ष अचक्ष अवर्णा,
तू जु अनक्ष अपक्ष अकर्णा ॥३४॥

अतिगति अपरस अतिपति तू ही,
तू अतिचक्षु अबाल प्रभू ही ।
तू जु अनवर अवर स्वामी,
अक्षजीत तू अति अभिरामी ॥३५॥

तू जु अजीत अभीत अकल्ला,
तू जु अतीत प्रतीत अटल्ला ।
तू जु अमूरित मूरति जैना,
तू अति सूरति अदभुत वैना ॥३६॥

अति धीरज तू अतुल अचल्ला,
अमरण अमृत अवश अखिल्ला ।
अरज अजो अजरो च अमल्ला,
तू जु अवस्पादेय असल्ला ॥३७॥

अरस अगध जु रूप न तेरै,
अफरस त्तू हि जु शब्द न प्रेरै ।
अग अभयो जु अविक्त गुसाईं,
अक्रिय रूपो अमन असाईं ॥३८॥

अभिप्राय सु जाकै नही कोऊ,
अभिप्राय जु ज्ञायक इक होऊ ।
अपर अपार अजड अरनाथा,
अकर अवक्त वि अतिवडहाथा ॥३९॥

तू अविकार अनजन स्वामी,
तू अनगार अरजन सामी ।
अति अधिकार जु एक तुही है,
गति गति ज्ञायक ज्ञायक तूहि मही है ।।४०।।

अवधिगम्य च साय हमारा,
सर्वाधिक्य सुरूप तुम्हारा ।
अक्षातीत अक्षवितीत,
अक्षरवीत परमप्रतीत ।।४१।।

अक्षर तू अक्षर तैं न्यारा,
अक्षर भासत जगत उधारा ।
अति दुपहर अघहर अभिनदी,
अति भरपूरण एन निकदी ।।४२।।

तू जु अकर्तृम देव अनादी,
अतिभव कदन एक अवादी ।
अकलित अखिलित तू जु अनुत्तम, *
तू अतिभार अभार जगुत्तम ।।४३।।

अत्युत्तर तू नाथ अत्युत्तम,
सुखतर उत्तर तू जु जिनुत्तम ।
अभयकरण अतिधरण अनता,
अजित जिनेश्वर श्रीभगवता ।।४४।।

अतनु विदार अनगस्वरूपा,
अतनु जु कहियैं काम अरूपा ।
अनघ प्रचार अहित हत तू है,
अचर अचार अभग प्रभू है ।।४५।।

---

* अनुत्तम कहता महा उत्तम सारा उत्तम जिह पाछै छै ।

तू जु अनग विवर्जित साई,
ब्रह्म स्वरूपी देव गुसाई ।
असत वितर्जित शील जु तूही,
अदयावर्जित जगतप्रभूही ॥४६॥

अनृतवर्जी अदितवितर्जी,
तू जु अहिसाप्रेर अगरजी ।
अदतन लेवा तू जु अकिंचन,
तू जु अलोक निवार निरजन ॥४७॥

तू जु अहिसाराय अमाया,
हिसावर्जित धर्म्म वताया ।
अतत अमत तै सहित जु नाथा,
अदत निकदा तू वडहाथा ॥४८॥

अमरेश्वर पूजित जिनदेवा,
अहपति गोपनि धारहि सेवा ।
चतुर निकायक पायक तेरे,
अर्कपती हरि तिमर जु मेरे ॥४६॥

अहमिद्रनि करि तू जु पुजाना,
तू अमरेद्र इद्र भगवाना ।
अहिपति अधिपति सुरपति जेते,
तव दासनि के दास जु तेते ॥५०॥

*अतिहित अघहत अहिपति तू,
अभगत अतिगति अतिछति जति तू ॥५१।

* इसमे अतिम पक्ति नही है ।

अधिपति तू हि जु और न कोई,
अवितथ अविगत अवहित होई ।
अखलित अचलित भाव जु तेरा,
तू जिनवर जतिवर सब केरा ।।५२।।

तू अरिहंता अर्हं जु मिता,
तू जु अनंता श्रीअरहंता ।
अर्हंत तू जु अविद्याहारी,
अर्क अनंत समोद्युति धारी ।।५३।।

तू जु अनंत सुदर्शी ईशा,
तू असपर्शी एक अधीशा ।
अर्द्ध सु चक्री वंद्य तुही है,
तू जु त्रिखंडी नाथ सही है ।।५४।।

अखिल जु चक्री वंदहि तोकों,
चक्रपती पति दे शिव मोकों ।
अखिल सु मंडलिका नृप सेवैं,
अनगारा मुनि तोहि जु लेवैं ।।५५।।

अणुव्रत धर श्रावक जे स्वामी,
तोहि जु पूजहि तू गुणग्रामी ।
अव्रत समकित धर थुत तू ही,
अमरासुर पूजित जगदूही ।।५६।।

असुरसुरा सब तोहि जु ध्यावैं,
अपछर गणसुर धरि गुण गावैं ।
तू अभिध्येय विकासक देवा,
तू अभिधान प्रकास अछेवा ।।५७।।

तू अभिधाता अतिगणपाता,
तू जु प्रमाता नाथ अधाता ।
अतिगुण-पूरा अतिसयधारी,
अतिभवदूरा निकट विहारी ॥५८॥

अमराणी इक तोकौं वंदै,
इक भव धरि वह कर्म निकंदे ।
अमरेस्वर अमराणी दोऊ,
शची सुधर्मा तो मय होऊ ॥५९॥

अब्रह्मनिंदक अधिक जिनंदा,
ब्रह्मचर्य धर तू जू मुनिंदा ।
अबला निंदक तू जु प्रभूजी,
अबल विलोकइ तू जु विभूजी ॥६०॥

तू जु अगृद्ध सुगृद्धि न तेरै,
अति जु अकिंचन रंच न प्रेरे ।
परम अकिंचन प्रकट करेवा,
अदुरित रूप जु अदुरित देवा ॥६१॥

अबला-तजक अलपट ज्ञानी,
अबला अधमपुरी परवानी ।
अदयावर्जित श्रीपति स्वामी,
अदया नर्कपुरी पदगामी ॥६२॥

अधम पुरुप अदया कौ लागैं,
त्यागि अहिंसा पापहि पागैं ।
ते सठ लहहि न शिवपुर वासा,
दुरगति भोग लहै अघदासा ॥६३॥

अदया अदतन अबला जाकै,
अनृत अब्रह्म गद्धि न ताकै ।
परम अकिंचन है भगवाना,
अबला संग न जसुधन धाना ।।६४।।

तू जु अशील तणौं अबहाला,
शील स्वरूप अरूप अहीला ।
दु जति हीला एद न तेरै,
शील निरूपक एनन प्रेरै ।।६५।।

तू जु अकेला कर्मदहता,
तू जु अचेला एक अनंता ।
तू जु अकिंचन मूल गुसाईं,
तू जु अलघ्य असधि असाईं ।।६६।।

तू जु अजघा वज्र सुजघा,
तू जु अलघा किनहिन लघा ।
तू अभिलाप विवर्जित ज्ञानी,
अतरहित अतरगति जानी ।।६७।।

अतुल वली अतिभार धरैया,
अनत सुखी अतिभोग करैया ।
अन उपभोग प्रपूरण स्वामी,
तू जु अयोगी जोग अकासी ।।६८।।

अति तिक्षाहर क्षम इक तूही,
तू जु अमाना अजित प्रभूही ।
तू जु अदत्रि दभ न जाकै,
तू जु अचती कपट न नाकै ।।६९।।

तू जु अमार्दव नासक एका,
तू जु अनार्जव छड अनेका ।
तू जु अदूज दूजि न तेरै,
अकपट अकपाट सु प्रभु तेरे ।।७०।।

तू जु अनूट अकट गुसाई,
अनृतवर्जित धर्म्म कराई ।
नाहि अलीक सुशाशन तेरौ,
अतितिक्षा जिनहित जु घणेरौ ।।७१।।

जपै अनार्जव नाश प्रवीना,
तोहिन पावहि मार्दव हीना ।
अनिधन भाव जु तो तै लहिये,
असत अतत माया तै रहिये ।।७२।।

तू जु अशौच प्रहार सु सूचा,
पूज अधातु अगात सु ऊचा ।
तू जु अजात न जातक काको,
तू जु अभूप प्रभु सुरमाको ।।७३।।

तू जु अनूप अनद स्वरुपा,
दूरि नही तू दूरि अरूपा ।
तू जु असयमहर यमधारी,
यम हारी तू सयमहारी ।।७४।।

सयम कारण तू अविकारी,
अति सयमधरनाथ अपारी ।
तू विभूयम भर निय स्वरूपा,
अनियमहारी तप जु प्ररूपा ।।७५।।

अति तपकर अति तपधर स्वामी,
अति तपभर अति तपहर नामी ।
अति तप अनशन आदिक प्रगटा,
अति तप-ज्वर-रोगादिक विघटा ॥७६॥

अति तप विनिंदक अति तप भाया,
अनशन रूप अभूष अकाया ।
अदन नही तेरैं कबहू जी,
अनशन भास कहै जु विभूजी ॥७७॥

अवमोदर्य प्रससक तू है,
तप तेजस्वी तू जु प्रभू है ।
अति वृतिपरिसख्या क्षायक तू,
अति रसनायक सव लायक तू ॥७८॥

तू अतिरस अर रसपरित्यागी,
अतिरित शय नाशन तप भागी ।
तू विविक्त शय्यासन देवा,
तू जु अकायक लेश अभेवा ॥७९॥

अति हि कायकौ क्लेश देना,
सकलेस भाव नविलेना ।
छह विध वाहिर तप तू भाषै,
छह विधि अतर तप हू राखै ॥८०॥

तू अपवित्र जु भावन राखै,
तू जु पावित्रा तम रस चाखै ।
तेरे प्रायश्चित नहि होई,
पाप लगै नहि तोहि जु कोई ॥८१॥

अभ्यतर तपो का वर्णन—

तू प्रायश्चित तप दायक है,
तू जु जिनिदा मुनिनायक है ।
अविनय रूप जु धर्म न तेरा,
विनयप्रकासी तू जु घणेरा ॥८२॥

तू अविनय सुनि कदक ईशा,
विनयमूल जसु धर्म अधीशा ।
तेरो विनय जु सबको करई,
वे नयभासक तू भवहरई ॥८३॥

अतिथिनि कौ आदेशक तू ही,
अतिथिनि कौ पति एक प्रभू ही ।
तू जु अवैया व्रत्त करेवा,
अवरनि कौं इह तप जु कहेवा ॥८४॥

अतुलित सयमभर अतिरगी,
अनघ अचभी अकलितरगी ।
अति थुति योग्य जु जे मुनिराया,
वहजु अपूजक तिन करि ध्याया ॥८५॥

अरति विहडी रतिपति दडी,
अवगुण छडी अविनय खडी ।
अति स्वाध्यायी जे मुनिराजा,
तिन करि ध्येय सदा जिनराजा ॥८६॥

अति पूरण वह आप जिनदा,
अति श्रुतधारक अति श्रुत इद्रा ।
अति श्रुतपूरण श्रुति जु उलघा,
केवल रूपी देव अलघा ॥८७॥

अति व्युतसर्ग उदेश कराई,
अति व्युतसरगी मूल गुसाई ।
अतिशय ध्यानी अतिशय ज्ञानी,
अनुपम शुकल प्रपूरण ध्यानी ।।८८।।

अध्ययनो ध्यानो इक तेरौ,
ध्यान रूप तू पति सब केरौ।
अतित्यागी अतिभागी देवा,
अति त्यागोत्तम आप करेवा ।।८९।।

अत्याकिंचन मूलविभू है,
धर्मराज तू एक प्रभू है ।
आप अकिंचन सर्वसु जापै,
इह अदभुत गति देख कु तापै ।।।९०।।

अपवर्ग कहिये जो मुक्ती,
तू मुक्तीश देहु मुझ भक्ती ।
सर्वसमूहा सर्वमई तू,
सर्व रिद्धिधर कर्म्मजयी जू ।।९१।।

अतिहि सथूला है जु निरजन,
सिद्धि वृद्धि भरवह जु अकिंचन ।
ब्रह्मचर्य तै लभ्य जु सोई,
ब्रह्ममई मूरति जु सुहोई ।।९२।।

अतनु विदार जु आपकारा,
काम जु दाइक काम प्रहारा ।
तू जु अध्यातम सार अनादी,
अध्यातम देव कई अवादी ।।९३।।

अति भव चूरण अति जगनाथा,
मयणजिती अजित जितहाथा ।
तू जु अध्यातम मूल प्रसिद्धा,
अविरुध अनिरुध अनुभव सिद्धा ॥९४॥

अखिल सुनायक देव अनाथा,
अखिल सुदायक आप असाथा ।
अखिल सुज्ञायक आप अलेखा,
अखिल सुव्यापक आप अभेषा ॥९५॥

अखिल सुकारक कारक नाही,
अखिल सुधारक अखिल जु पाही ।
अखिल सुतारक अखिलाचारा,
असुचि विडारा अतिगति भारा ॥९६॥

अनघ अधारा अतनु प्रहारा,
अति जगसारा भुवन उजारा ।
अकलक लोइक नाथ अभू है,
अवधि जु कद अनद प्रभू है ॥९७॥

अनत अपार करम गण हरिया,
अखिलप्रकास अतुल गुण भरिया ।
तू जु अशक्य विवर्णन साई,
शक्ति नाहि को वर्ण कराई ॥९८॥

अलख निरूपक एक तुही जो,
तू जु अवाच्य अनिर्णय ही जो ।
तू जु अकथ्य परुपण साई,
अलभ सुमहिमा जगत गुसाई ॥९९॥

अखिलाकारा अखिलाधारा,
अखिल स्वरूपा अखिल सुभारा ।
अगम प्रतिष्टा नाथ अपारा,
अखिल जु भूपा अखिल जु पारा ॥१००॥

अति सुखकारा अमरकरा,
अखिल सुसेवित स्वामि अधारा ।
अनत सु ज्योतिस्वर मुनि प्यारा,
अनत सुरश्मी तिमिर प्रहारा ॥१०१॥

अनुभव मूरति तू जु कृपाला,
निज अनुभूति स्वरूप दयाला ।
तेरी परणति गुण अनुभूती,
तेरी शक्ति जु व्यक्ति प्रसूती ॥१०२॥

अनवरत जु निरतर तू ही,
व्यापि रह्यौ सरवत्र समूही ।
अनिश नाम तिहारौ स्वामी,
जपिहैं ते नर हौंहि अकामी ॥१०३॥

अविरतिनाशक वृत्ति स्वरूपा,
अविरत अवृत्त रहित अनूपा ।
अव्रत त्यागि तोहि जै ध्यावै,
ते जगजीवन तो मोहिं आवै ॥१०४॥

असि आऊसा मत्र सु तेरा,
कर्मकलक हरौ सब मेरा ।
असि आऊसा जिन जन जपिया,
माया मोह महा तिन क्षपिया ॥१०५॥

अति गति देव अगति गति देवा,
अतिपति नाथ न जानू खेवा ।
अतिजुग ईस अतुल जग षेवा,
अतिजित जीत न सकिहू सेवा ।।१०६।।

अति जति स्वामि अलक्कृत रामा,
अक्षर रूप अनक्षर नामा ।
अति मुनिपाल अतुल सुखधामा,
अति अघटाल अनदित कामा ।।१०७।।

अति रति त्यागक अति गुणनाथा,
अतिहित स्वामी अखिल सुख साथा ।
अति मतिधीश अनत वडहाथा,
अकरम अकरण रूप असाथा ।।१०८।।

अनुभव रूप अधिक सुखकारी,
अभय जु मूल परम रसधारी ।
अति दुखहरण सु नाम तिहारा,
अतिभव दूरि करो जु हमारा ।।१०९।।

अति सुखिया अति श्रीयुत राया,
अनुभव मात्र जु आगम गाया ।
अचल असखि प्रदेश जु ईशा,
वोध प्रमाण सदा जु अधीशा ।।११०।।

अदभुत गति तेरी जु गुसाई,
तू जु अजान अकारक साई ।
तू जु अकर्त्ता कर्त्ता कर्मी,
तू जु अभुक्ता भोगक धर्मी ।।१११।।

अधिक सुखासुख रूप विराजा,
अति आनदमई भव पाजा ।
अतिशीली अतिभाव जगीसा,
अतिशर्मी शिवमूल अनीशा ॥११२॥

अति घननाथ अनादि अनता,
अच्युत अगणित श्रीभगवता ।
अमित जगत दुखहरण दयाला,
अखिल दया परदेव कृपाला ॥११३॥

अतिशय सागर अखिल जु पीवा,
अनुपद्रित अति शिवसुख दीवा ।
अति पापिष्ट जु जे नर स्वामी,
तोहि न पूज हितू जु विरामी ॥११४॥

अवनीपति पूजित वडभागा,
अजस निवारक देव विरागा ।
तू हि अनतमती सुजिनिंदा,
तूहि अनतगती सु मुनिंदा ॥११५॥

अष्ट अग समकित के तूही,
भावै जिनवर गुण जु समूही ।
अष्ट अग के धारक जे हैं,
ते सबतें हो ख्यात किये है ॥११६॥

अजन और अनतमती जो,
राव उदायन कर्म्म हती जो ।
रेवती राणी जिनवर भक्ता,
फुनि जु जिनेंद्र भक्त जिन रक्ता ॥११७॥

वारिषेरग औ विष्णुकुमारा,
वज्र कुमार महामुनि प्यारा ।
ए अष्टातम अग स्वरूपा,
तू सबकौ शिवदायक भूपा ॥११८॥

इनमैं कैयक तदभव तारे,
कैयक जन्मातर जु उधारे ।
जव तारै जब तू ही तारै,
तो विनु औरन कर्म निवारै ॥११९॥

अष्टाह्निका महात्म्य—

अष्टम दीप नाम नदीश्वर,
ता महि तोहि जु पूजहि सब सुर ।
वर्ष एक मैं तीन जु वारा,
कार्तिक फागुरग सुचिव सुवारा ॥१२०॥

अमल पक्ष मैं तीन अठाई,
अतिमु वसु दिन पूज कराई ।
अष्टमि सौ ले पूनिम ताई,
निति निति पूज करै अधिकाई ॥१२१॥

अष्ट दिवस कौ व्रत तै भाख्यौ,
अष्ट गुरगनि परि द्रिढकरि राख्यो ।
सिद्ध चक्र है नाम जु याकौ,
या करि पइए पति कमला कौ ॥१२२॥

सम्यक्त्वादि अष्ट महा जे,
गुरगी प्रभू तो माहि लहाज ।
तिनकौ इह व्रत अठ दिन करही,
ते शिव गति अव सुरगति वरही ॥१२३॥

अष्टाह्निक तुव गुण व्रतस्वामी,
तू अष्टातम ऊरध धामी ।
अष्टाह्निक व्रत करि जब ध्याये,
कोडीभड को कोढ गुमाये ।।१२४।।

अति ताकी पतिवरता बाला,
कोडीभड नरपति श्रीपाला ।
जलनिधि मैं कोडीभड तारे,
फेरि भवोदधि तैं जु उधारे ।।१२५।।

अखिल ऋद्धि भड कौं तुम दीनी,
इह तुम्हरी महिमा जग चीनी ।
अष्ट चक्रर्वात तैं ही तारे,
अष्ट हली तैं ही जु उधारे ।।१२६।।

चौ चक्री इकवल तारैंगो,
आप समान करी धारैंगो ।
अष्ट भेद लौकातिक देवा,
तुव जपि पावैंगे भव छेवा ।।१२७।।

अठ विधि लौकातिक कौं आयू,
अष्टहि सागरतैं हि बतायू ।
अठ विधि ऋद्धि लहैं तुव भक्ता,
तू जु अष्ट विधि कर्म विमुक्ता ।।१२८।।

अठ विधि योग प्रकाशक ईसा,
अठ विधि पूजा जोगि अधीशा ।
अष्ट प्रकारी पूज करैं जे,
तेरी जिनवर अष्ट हरैं जे ।
अष्ट हरी हमरे हरि देवा,
अष्ट गुणादे हो जु अछेवा ।।१२९।।

अवगम भूषित देव अकाया,
अष्ट धरा को तू इक राया।
अष्ट सुसम्यक दर्शन ईशा,
अष्ट जु सम्यक ज्ञान अधीशा।
तेरहि विधि चारित्र जु होई,
सब को भासक तू जिन सोई।
त्रयी रूप है तू जु अभेदा,
एक रूप तू सर्व सुवेदा ॥१३०॥

अष्ट सिद्धि अर नव निधि द्वारै,
तेरै कु भी अर जुगु दारै।
तू वसु ऋद्धि मूल जग स्वामी,
तू वसुधा महि अदभुत धामी ॥१३१॥

अठविधि प्रवचन माता जे हैं,
पच समिति त्रय गुप्ति गने हैं।
अष्ट शुद्धि धारक मुनि भक्ता,
तू जु अष्ट विधि कर्म विमुक्ता ॥१३२॥

अष्टम गुण थानक तै श्रेणी,
उपशम क्षपक रूप सुख देनी।
उपशय वारे ह्वै इक भवले,
क्षपक विहारे तद्भव शिवले ॥१३३॥

अष्टम गुण नीचै नहि शुक्ला,
इह तेरौ उपदेश जु अकला।
चौथौ गुण सौ सप्तम ताई,
धर्म ध्यान नही होइ जु साई ॥१३४॥

अष्टम सौलै चउदम लौ फुनि,
शुक्ल ध्यान ही धारहि वर मुनि।
पहिलौ शुक्ल जु ग्यारम लौह्वै,
दूजो शुक्ल सु बारम को ह्वै ॥१३५॥

तेरम चौदम भगवत रूपा,
परम शुक्लमय त्रिभुवन भूपा।
तीजौ शुक्ल सयोग अवस्था,
चौथौ शुक्ल अयोग व्यवस्था ॥१३६॥

सिद्धि दशा मैं ध्यान न कोई,
धारण ध्येय ध्यान निज होई।
धरम शुक्ल द्वै शिव के दायक,
आरति रुद्र कुजन्म भ्रमायक ॥१३७॥

इह तुम्हनै उपदेश जु दीनौ,
सो सम्यक्ती जीवनि चीनौ।
मोकौ देहु धर्म अरु शुक्ला,
आरति रुद्र निवारौ विकला ॥१३८॥

अष्टम धरपति अतरजामी,
अष्टम धर दाय अभिरामी।
अष्टापद है तेरै थाना,
तू अष्टकपति शिव ततिराना ॥१३९॥

अष्टापद तैं भूषित कीयो,
अष्टापद तैं शिवपुर लीयो।
अष्टापद कैलास जु गिर है,
ताकौ पति तू ऋषभ सुथिर है ॥१४०॥

अष्टापद व्याघ्रादिक दुष्टा,
तुझ दासनि परि ते नहि रुष्टा ।
अष्टापद कचन हू कहिये,
कचन त्यागि जु तोहि जु गहिये ॥१४१॥

अष्टमि चउदशि कौ व्रत देवा,
तू ही जग मैं मगर करेवा ।
तू अष्टाग डडवत योभा,
अष्टक स्वामि अद्व द अरोभा ॥१४२॥

अठमल सम्यक के तू नासै,
तू अध्यातम रूप विकासै ।
नैकत सर्व्व स्वरूप तुम्हारा,
अतिमित दोष हरौ जु हमारा ॥१४३॥

अष्ट भेद हैं वितर देवा,
तिन मै इद्रादिक वसु भेवा ।
योतिष सुर जे पच प्रकारा,
एउ शक्रादिक अठ धारा ॥१४४॥

भवनपती दश भेद कुमारा,
सुर्ग निवासी दोय प्रकारा ।
सुर्गपती अर भवनपती जे,
तिनमैं इद्रादिक दश लीजै ॥१४५॥

आयसत्रिसत लोक जु पाला,
योतिप वितर तै ए टाला ।
भव नर सुर्ग माहि दश भेदा,
तेईसौं अहमिद्र अभेदा ॥१४६॥

सब देवनि कौ तू ही देवा,
सब करि पूजित एक अभेवा।
अठ विधि तेरै एकन दीसै,
तू अठविधि अठविधि विधि पीसै ॥१४७॥

यम नियमाशन प्राणायामा,
प्रत्याहार सुधारण नामा।
ध्यान समाधि जु अष्ट प्रकारा,
तू जु प्रकासै रहित विकारा ॥१४८॥

सहस अठारह शील अधीशा,
मोकूं शील रूप करि ईसा।

तू जु अनंत गुणातम ज्ञानी,
शैलेसी किरिया परवानी ॥१४९॥

अष्टादश जे कोटाकोटी,
सागर भोगधरा जब लोटी।
तब प्रगटे श्री ऋषभ जु देवा,
कर्मभूमि विधि प्रगट करेवा ॥१५०॥

दश क्षेत्रनि मैं कलप जु होंही,
ठारा दोय वीस इतनींही।
ठारा भोग दोय है कर्म्मा,
वसि जु कोडाकोडि स्वधर्म्मा ॥१५१॥

अवसर्पिणी उतसर्पिणी दस दस,
सागर वीस जु कोडा कोडिस।
काल अनत भये अर ह्वैगे,
लोक लोकपति यो जु रहैंगे ॥१५२॥

पच भरत ऐरावत पचा,
इनमें ह्वै भू सुख दुख मचा।
दश क्षेत्रनि में रीति न एका,
और ठौर है एक विवेका ॥१५३॥

सर्व जु भेद कहे जिन तू ही,
तू अमितातम कलप समूही।
अष्टादश नहिं दोष जु तेरे,
ए वड दोष लगे सब केरे ॥१५४॥

गुण रूपो तू परम प्रधाना,
सर्व दोपहर मोख विधाना।
अष्टादश कोटी जु तुरगा,
त्यागहि चक्री होय इकगा ॥१५५॥

तेरह रग रागि निज रगा,
सग भूति तजि होहि अभगा।
सहस अठारह रांणी जाकै,
देव विद्याधर अनुचर ताकै ॥१५६॥

सो रावण विषयनि में पागो,
जगत भूति तजि तोहिन लागो।
तदभव मुक्त भयो नहिं तातै,
अधमपुरी लहि पाई घातै ॥१५७॥

तो महि पागि होयगो मुक्ता,
जब ध्यावैगो ह्वै जु विरक्ता।
अष्टाविंसति मूल जु सुगुणा,
तिनके धारक मुनिवर निपुणा ॥१५८॥

सर्व मुनीश्वर तेरे दासा,
दास उधारक तू जु उदासा।
अठवीसा है मोह प्रकारा,
ते सव चूरि किये तैं भारा ॥१५९॥

गुण यत्र जु मैं ते सव पीसे,
ग्रैसो तू जु अधीस जगीसे ।
लाव अठवीसा देवल तेरैं,
पूजैं सुर्ग सुऋद्धि घणेरे ॥१६०॥

अष्टविंसति हैं जु अपिंडा,
प्रकती भेद जु चउदह पिंडा ।
चौदह के ह्वै पैंसठि भेदा,
एवैं मिलि ह्वै त्रिणवै वेदा ॥१६१॥

नाम कर्म के ए जु विकारा,
ज्ञानावरण सुपच प्रकारा ।
दर्शन आवरणी नव भेदा,
अ तराय फुनि पच विवेदा ॥१६२॥

द्वै मोहो ह्वै अष्टावासी,
तीन मिथ्यात कषाय पचीसी ।
वेदनि कर्म जु दोय गनेसी,
आऊ चौंविधि तू जु हनेसी ॥१६३॥

गोत्र कर्म ह्वै नीचर ऊचा,
दोय प्रकार जु सूच असूचा।
अष्ट कर्म ए दायक भैंहे,
कवहू तो महि नाथ न अैंहैं ॥१६४॥

अष्टनि के से अर अटताली,
तैं सब भेव हरे भ्रमजाली।
तू जिन कर्म हरो हर अवसा,
वशकीये तैं त्रिभुवन स्ववशा ॥१६५॥

जीव समास जु हैं गुन्नीसा,
पूर्णोतर गुनिये अढतीसा।
सबकों रक्षक तू जु जिनेश्वर,
सब भेदनि तैं रहित शिवेश्वर ॥१६६॥

अठतीसाँ परि एक अधिक ह्वै,
कल परकल पातीत्त भेद द्वै।
सब ऊरध लोकहि कै ऊपरि,
तेरौ वास जु है सबकै सिरि ॥१६७॥

नाहि वासनाँ तो मै कोऊ,
वासदेन हारौ इक होऊ।
अठतालीसौ काव्य जु तेरी,
भक्तामर की ऋद्धि घनेरी ॥१६७॥

ते निवसौ मेरे घटि देवा,
मानतु ग दुख दूरि करेवा।
एक ऊन अडतालीसाजे,
घातिक प्रति अति मलिन महाजे ॥१६८॥

ते सब नासहि तेरे भक्ता,
तू सौ अर अठताल विमुक्ता।
चौवीसौं माता अरताता,
ए अठताल तो थकी ख्याता ॥१६९॥

अट्ठावन के आधे स्वामी,
गुणतीसौं रतनत्रय नामी ।
ते सब भेद देहु किरपा करि,
फुनि अभेद रूपो करि भवहरि ॥१७०॥

एक घाटि करिये जु अठावन,
जीव समास जु ह्वै सत्तांवन ।
जीव रक्षरणा तेरौ पथा,
तू योगीश्वर रहित जु गथा ॥१७१॥

* एक अधिक अढसठि सौ उपरि,
ए निश्चै पावै शिव भवतरि ।
कैयक तदभव कैयक जन्मैं,
पावै तुव पर ह्वैतो तन्मैं ॥१७२॥

अढसठि वर्ष जु ऊपरि एका,
गुणहत्तरी जीवी जु विवेका ।
एकादशमौ रुद्र जु स्वामी,
पारवती प्राणेश्वर नामी ॥१७३॥

तोहि ध्याय हासी तो सरिषा,
तू तीर्थंकर पूरण पुरिषा ।
अढसठि के आधे चौतीसा,
येहैं अतिशय तो करि ईशा ॥१७४॥

---

* १६९ जीव–मोक्षका अधिकारी छै—२४ तीर्थकर, २४ पिता २४ माता, २४ कामदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव, ९ नारद, ९ बलभद्र, ११ रुद्र, १४ कुलकर १२ चक्री—

[मूल प्रति की टीका]

अडसठि तीरथ भौतिक न्हावै,
तो विनु शिव पुर पथ न पावै।
अठहत्तरि के आघे देवा,
ऊरध लोक सु प्रथम कहेवा ॥१७५॥

गुणतालीसौ नाहि जु जाचौ,
ग्रैसी करतो मै हरि राचौं।
ग्रस्सी मदिर तेरे स्वामी,
पचमेरु मै है ग्रभिरामी ॥१७६॥

षोडस षोडस एकक सुरगिर,
धारहि तेरे सौध सदाथिर।
कै ग्रस्सी कै इक्यासी जो,
कै चउरासी पच्यासी जो ॥१७७॥

प्रकति ग्रघाती तेरम ठाणै,
तू सव भेद भाव परमाणै।
ग्रसी करो मोसौ जिनराय,
नई नई नहि धारौं काय ॥१७८॥

तेरौ निजदासा प्रभू ह्वै कै,
ग्राऊ तुव पुरि जग जल दैकै।
ग्रठयासी के ग्राघे देवा,
चउ चालीसा टारि विभेवा ॥१७९॥

मद मूढत्व ग्रनायत नाजे,
सकादिक ग्रर भय विसनाजे।
पच ग्रतीचारा प्रभु टारे,
द्वैवीसी द्वै दू ग्रघसारे ॥१८०॥

ए समकित के शत्रु जु पापा,
मोतैं सकल निवारि सु आपा ।
अठयासी तैं तीन घटैं जव,
प्रकति पच्यासी निवल महासव ।।१८१।।

त्रेसठि नासि जु केवल पावै,
पच्यासी तजि तो महि आवै ।
जीव समास अठयारणव सेती,
छुटि करि सीझै प्रकति सुरेती ।।१८२।।

है अठयारणव जीव समासा,
जग वासिनि के भेद निरासा ।
तू ही ख्यात करै जिन स्वामी,
सबकौ पालक अंतरजामी ।।१८३।।

पंच जु थावर चउदह भेदा,
तिन मैं च्यारि सु अष्ट विवेदा ।
पृथ्वी जल अर अगनि जु वायू,
सूक्षम वादर अष्ट गिनायू ।।१८४।।

नित्येतर सूक्षम अर वादर,
द्वै प्रत्येक मिले षट थावर ।
अष्ट सुषट मिलि चउदश भेदा,
पूरण इतर अलब्ध जु वेदा ।।१८५।।

चउदह कौं तिगुणे जव करही,
द्वै वीसी द्वै अधिके धरही ।
द्वै सुर द्वै नारक गनियें,
पूरण इतर गनैं चउ भनियें ।।१८६।।

विकलत्रय पूरण अर इतरा,
फुनि जु अलब्ध मिले नव चितरा।
मनुज तणे नव भेद सुनो अब,
षट अर तीन मिलै ह्वै नव सब ।।१८७।।

भोग कुभोग मलेछ जु खडा,
पर्यापित औ इतर जु मडा।
अरिजखड माहि द्वै भेदा,
गर्भज सन्मूर्छन जिन वेदा ।।१८८।।

गर्भज होय सुदोय प्रकारा,
पूरण इतर सही निरधारा।
सन्मूर्छन अलवधही होई,
षट द्वै इक मिलि तव विधि सोई ।।१८९।।

पचेंद्री पसु हैं चउतीसा,
तिनके भेद कहे जू जतीसा।
कर्मभूमि के समना अमना,
गर्भज जलचर थलचर गगना ।। ९०।।

पर्यापत औ इतर गनौ ए,
द्वादश सूत्र प्रमाण मुनौ ए।
फुनि सन्मूर्छन समना अमना,
जलचर थलचर नभचर गमना ।।१९१।।

पूरण इतर अनद्य मिलै जव,
ह्वै दश आठ गिनै जू भेद सव।
भोगहु भोगभूमि के समना,
नभचर थलचर द्वै द्वै गमना ।।१९२।।

अलवध गर्भज मैं द्वं नाही,
जलचर नांहि जु भोग धराही ।
बारा ठारा द्वै द्वै सब ए,
चउतीसा पसुहे हैं अब ए ॥१९३॥

चैयालीसा नव चौतीसा,
पच्यासी तिरयच गतीसा ।
नव मनुजा द्वै सुर द्वै नारक,
इन सब भेदनि तैं तू फारक ॥१९४॥

अठ अधिका निवै तू भाषै,
सर्व समासा तू ही राखै ।
पच्यासी नव चउ जब मिलही,
द्वै कम इकशत जब सब रहही ॥१९५॥

ए त्रस थावर भेद सवै ही,
भये होहिगे है जु अबैही ।
जिनवर तू सब कौ प्रतिपालक,
श्री भगवत सकल दुख टालक ॥१९६॥

इन भेदनि तैं मोहि निकासै,
शुद्ध रूप कर प्रभु अविनासै ।
इनकी रक्षक करि हरि मोको,
इनतै रहित करहु तुझ धोको ॥१९७॥

सोरठा

ठारा बारा च्यार ए, चउतीस जू भेद पशु ।
नौ विकलत्रय धार, वैयालीस जु थावरा ॥१९८॥

नौ मनुजा द्वै देव, द्वै नारक ए ठ्याणवै ।
इन मे तेरी सेव, करहि तिके ही श्लाघ्य जी ॥१९९॥

ए सब ही अति खेद, जगत निवासी अति दुखी ।
जो जन ह्वै निरवेद, खेद रहित ह्वै शिव लहै ॥२००॥

जीव रपिक जो साध, सो पावै जगदीस कौ ।
करही जीव जु बाध, वह रुलिहै ससार मैं[1] ॥२०१॥

छंद वेसरी

अष्टोत्तर शत है मणि काजैं,
माला के तुव गुण गणि काजैं ।
तिण करि तोहि जपै जे जीवा,
ते ताकौं पावै जग पीवा ॥२०२॥

पण तीसाक्षर षोडश अका,
षट अर पंचाक्षर चतुरका ।
द्वै अर इक अक्षर के नामा,
तेरे जाप जपै सुख धामा ॥२०३॥

अष्टोत्तर शत पाप निवारै,
तोहि भजै ते आप उधारै ।
ते अष्टोत्तर अघ है कैसे,
जीव विषै कर्दम हैं जैसे ॥२०४॥

मरभो च समारभो जी,
आरभो है अघ खभोजी ।
ए त्रय पापा मन वच कायैं,
नव भेदा ह्वै गुरु समझाये ॥२०५॥

---

१ इसका नाम वेक्षरी मे दिया है ।

नव कौ कृत कारित अनुमति,
करिति गुन करें सत्तवीस ठीक धरि ।
चउ कषाय तैं गुणिये ते सव,
अष्टोत्तर शत ह्वै अघ ए तव ।।२०६।।

ए सव पापा दूरि पुलावै,
जव गुण मणिका कोय फिरावै ।
अघहारी तू अमृतधारी,
अमृत रूपो पतित उधारी ।।२०७।।

हरिसौं अर अठतार जु मेरे,
केवलदै वदौ पद तेरे ।
अष्ट तणो सौ अर अठताला,
हमरे घातक टारि विशाला ।।२०८।।

पच शरीर गने ए तेही,
पंद्रह गने अधिक दश एही ।
टारि जु हमरे सौ अरठावन,
अपनौ वास देहु मन भावन ।।२०९।।

वरष अढाईसै जव वीते,
पारसनाथ पछै जु अतीते ।
तव प्रगटे श्री जिनवर वीरा,
वर्द्धमान अति गुणह गभीरा ।।२१०।।

तिन सव रीति वसी ही भाषी,
जैसी तेवीसनि नेराखी ।
चौवीसम अतिम जिनस्वामी,
सनमति नाथ जु अतरजामी ।।२११

अर्क विमान जु योजन अठसैं,
मनुज लोकथी उपरि निवसैं।
ससि मडल है अठसैं अस्सी,
ससि सूरिज सब तोहि नमसी ॥२१२॥

ससि अर अर्क जु तेरैं वसि है,
तू त्रिभुवन पति सब कौ ससि है।
तारागृह नक्षत्रादिक जे,
तेरे दास जु शक्रादिक जे ॥२१३॥

योतिगकौ इंद्र जु है चदा,
अर्क प्रतिदौ अह्नि करदा।
सातसैकरे अर निवैगनि,
योजनतारा मडल जो फुनि ॥२१४॥

मनुज लोक थी इह जु विचारा,
नव सत योजन योतिष धारा।
योतिष कौ मडल दससौ परि,
याजन तारागरण ते ऊपरि ॥२१५॥

सर्व ज्योतिसी तेरे दासा,
ज्योतिरूप तू परम उदासा।
अष्टाधिक दश सत शुभलक्षरण,
तेरे कहियै तू जु अलक्षरण ॥२१६॥

अष्टोत्तर शत लक्षरण स्वामी,
नवसैं विजन जे अभिरामी।
ते सब धारहि तेरौ वपु जो,
तू परमातम शिवपद पथजो ॥२१७॥

अयुत लक्ष कोट्यादिक गिनती
अमम अटट भासक तू सुजती।
अमित अनत असंख जु एका,
सख्या नाहि सुत्तू जु अनेका ।।२१८।।

उदधि असंख असखि जु दीपा,
तिन को दीपक तू अवनीपा।
अस्सी चउ अधिका लख जौनी,
मेरी मेटि जु पकरन मौनी ।।२१९।।

अगणित जीवा तै जु उधारे,
अगणित कर्म्मा तै जु पछारे।
अहिकौ अहिपति कौ पद दीयौ,
अगनि जरत जिह नाम सुनीयो ।।२२०।।

अहि-पतनी पदमावति कीनी,
दोऊनै अति भक्ति जु चीनी।
अहितारे अजहू सुरकारे,
तोसौ तू ही अमर अधारे ।।२२१।।

चारुदत्त दोयो तुव नामी,
अज पायो सुरलोक सुधामी।
जीवक सेठ सुनायो मत्रा,
नमोकार नामा शिवतत्रा ।।२२२।।

मरत सुन्यौ स्वानै चितधारी,
अघतै रहित भयो शुभकारी।
अति पापातम सार जु मेया,
तोतै सुर पद सुख वहुलेया ।।२२३।।

अति असपरस जु चडालादिक,
तां तै शिव पायो धरि भव इक ।
अरणि निवासी जे मुनिरायाा,
अवनी तज तै मुक्ति पठाया ।।२२४।।

अभयातम तू देव अभेवा,
अभय कुमार कियो जु अछेवा ।
अचिंतनाथ जु अर्चा तुम्हारी,
अर्चें ते नर पावै अमरी ।।२२५।।

अमरपुरी सुख भोगि बहुत जुग,
नर ह्वै अमरण हौहि रहित रुग ।
अष्ट जिती ध्वनि तुम्हरी जिनपति,
जे ध्यावैं निजि मनि तजि सव छति ।।२२६।।

ते निज निश्चय पाय स्वरसरति,
पहुचै लोक शिखर तजि जगतति ।
अब्जोपमक्रम देव तुम्हारे,
अलि सम सुर नर मुनिवर कारे ।।२२७।।

तजि अभिमान जपै जे जग जन,
ते अवनीधर पावहि पद जिन ।
अनुचर होय जु सेवहि तोही,
त्यागि अहकृत भाव विमोही ।।२२८।।

अनुचर तारक एक तुही है,
तू अपवर्ग जु दायक ही है।
एक अनुभित भाव सु भू है,
तु जु अहकृत रहित प्रभू है ।।२२९।।

अर्जुन पाडव तै जु उधारचौ,
द्रुपद सुता कौ सब दुख टारचो।
धर्मपूत अर भीम उधारे,
नकुल सु सहदेवा निजकारे ॥२३०॥

अनिरुध कुमर प्रद्युमन पूता,
पूत पिता तैं कीने पूता।
अवधिनाथ तू अनवधि स्वामी,
अनरन भूप सुतारक नामी ॥२३१॥

अनरन रावसु रघुपति दादा,
तुव भजि मुक्त भयो तजि कादा।
अतिबल खगपति महबल ताता,
तुव भजि सिद्ध भयो अति पाता ॥२३२॥

अपर अकपन राव उधारा,
मेघेस्वर कौतूइक तारा।
राव अकपन कासीराया,
श्रीसुलोचना तात कहाया ॥२३३॥

मेघेस्वर हथनापुर कौ पति,
पति सुलोचना कौ शिव सुखतति।
नाथ वस अर सोम जु वसा,
तै जु उधारे तू जु निरशा ॥२३४॥

तव परसाद भये वै राजा,
तव परभाव किये निज काजा।
अर्कपति तू अर्क उधारा,
तू अर्केन्द्र अर्क गण तारा ॥२३५॥

अर्ककीर्ति कौ मुक्ति जु दीनी,
अर भरतेस थकी भलकानी ।
दिक्षा लेत जु भरथ उधारयौ,
अग्रज चक्री पार उतारयो ।।२३६।।
अग्रेश्वर तू सबकै आगै,
सुर नर मुनिजन तुव पद लागै ।
अप्रधान तू आप प्रधाना,
सकल सुज्ञायक श्री भगवाना ।।२३७।।
अ कहियँ जग मैं हरिहर कौ,
ते ध्यावै केवल पदधरकौ ।
हरि नारायण हर जो रुद्रा,
इनको भेद न जानहि क्षुद्रा ।।२३८।।*
हरि हर मुनिवर जिनकौ ध्यावैं,
जिन विनु जग जन जन्म गुमावै ।
अन्य नारि सम मिथ्या परणति,
जो मै धारी सठमति दुखतति ।।२३९।।
सो मेरी मेटौ जग नाथा,
निज परणति कौ देहु जु साथा ।
पर परणति तै मै दुख पायौ,
आप विसारि सु जन्म गमायौ ।।२४०।।
अमित अपार जीव तै तारे,
ते मोपै किम जाहि सम्हारे ।
पँ गुर की सुनि वाणी स्वामी,
कैयक भाषे भाषौं नामी ।।२४१।।

---

* भावार्थ—हरि कहता वासुदेव अथवा हरि कहता इन्द्र अर हर कहता रुद्र सो ए सारा केवल अवस्था नैं ध्यावै छै। [मूल प्रति की टीका]

अग्निभूति अर वायु जु भूति,
सालिग्राम ग्राम मैं सोती ।
पहिली मुनि सौ वाद ज कीनौं,
पाछै तेरौ धर्म जु चीनौ ॥२४२॥

ते दोऊ तैं स्वर्ग पठाये,
वनके अशुभ समस्त उठाये।
अग्निभूति तै सप्तम भव मै,
कृष्ण पुत्र ह्वै आये तुव मै ॥२४३॥

अग्निभूति कौ जीव जु मदना,
भयो प्रद्युम्न मदन जु कदना।
वायुभूति भौ शबु कुमारा,
दोऊ तुव भजि उतरे पारा ॥२४४॥

अवर विप्र ह्वै ते द्वै भैया,
कौसाबी नगरी जु वसैया।
जेठौ वन मै अगनि जु भूती,
लहुरौ सठमति वायु जु भूति ॥२४५॥

पहले तोकौ तन मनि ध्यायो,
जिन मारग कौ गुण बहु गायौ।
तातै तेरे शिवपुर आयौ,
सूरमित्र गुर कौ मन भायौ ॥२४६॥

दूजै तोकौं ध्यायो नाही,
भयो गुरद्रोही जग माही।
कोढ़ी ह्वै मूवो सो पापी,
भयो गदहरी अति सतापी ॥२४७॥

सूरी ह्वै फुनि कुकरी हूवो,
महादुखी ह्वै वह जन मूवो।
भयो अध चिंडाली देहा,
जिन तुमसौ कौनौ नहि नेहा ॥२४८॥

ह्वै चिडाली तुव गुन भायो,
अगनिभूति कौ सवद सुहायौ।
नागश्री नामा द्विज पुत्री,
भई धर्म रुचि अति हि पवित्री ॥२४९॥

सूरमित्र के सुनि जिन वैना,
तुम ध्याये त्रिभुवन पति जैना।
तुम परसाद षोडशम सुर्गा,
तिन पायो प्रभु बहु सुख दुर्गा ॥२५०॥

फुनि सुकुमारी सेठ ह्वै स्वामी,
तुमकौ ध्याय भयो बहु नामी।
अति उपसर्ग जीति वह ध्यानी,
गयो जु सरवारथसिद्धि ज्ञानी ॥२५१॥

इक भव धरि वह तो मैं मिलिहैं,
तेरो दास न जग मैं रुलि है।
तेरे दास अनतहु उधरे,
तोकौ पाय बहुत जन उवरे ॥२५२॥

अमरपती है तेरौ दासा,
इक भव धरि पावै शिव वासा।
वसु विधि लौकातिक सुर ऋषि जे,
इक भव धरि पावै ऋषि गति जे ॥२५३॥

अहमिंद्रनि तूही धारेगौ,
नव पचानुत्तर तारैगौ ।
अमराणी जु शची है देवा,
भव अंतरि पावैं भव छेवा ॥२५४॥

दाहिण शक्रा लोक जु पाला,
तुव जपि पावैं पद जु विशाला ।
असन पान खादिमनहि तेरैं,
क्षुधा त्रिषा नहि तोहि जु घेरैं ॥२५५॥

अस्त्रादिक अर भूपन कोई,
वस्त्रादिक तेरे नहि होई ।
अदन भक्ष कौ नाम जु कहियैं,
तेरैं असन वसन नहि चहियैं ॥२५६॥

अहमेवादिक तो मैं नाही,
तू जु अहकृत रहित महाही ।
अहकार अरमान न तेरैं,
दूरि करौ लागे प्रभु मेरैं ॥२५७॥

दोहा

अहकार मय इह जगत, याकौ त्याग सुमोप ।
इह तुम्हरौ उपदेश है, उत्तम गुणगण कोप ॥२५८॥
त्यागि अहकृति जिन तुझे, ध्यायो दीन दयाल ।
तिनि पायो तू गुणमई, निर्गुण परम कृपाल ॥२५९॥
कुमर अशोक रु रोहणी, तेरे भक्त अनन्य ।
ते अशोक धरतैं कियैं, अति सुखिया अति धन्य ॥२६०॥

अरजन पूत जु अधमना, नाव अभिमना जास ।
सो तेरे परसाद तैं, पायो अमर विलास ॥२६१॥

अकलंक को निकलंक द्वै, भाई जिनमत दास ।
तिनकी तुम राखी कला, कियो बोधमत नास ॥२६२॥

कुमर अभैरुचि अभमती, भाई वहन सुजान ।
ते तुम कीनें आपुने, धरे पंथ निरवान ॥२६३॥

अद्भुत तोसौं को नहीं, जग दातार जगेस ।
मोहू दीजै मोख मग, सुनि विनती सुजिनेस ॥२६४॥

तू अनादि अनिधन प्रभु, तू अविक्त अतिविक्त ।
अहमिंद्रनि कर अर्च्य तू, तू अतिंद्र जग तिक्त ॥२६५॥*

तू अमूर्त दर्शी प्रभू, अर अगाध भवपार ।
अतिगाहन तू गहन हर, मोहू पार उतार ॥२६६॥

तू अलक्ष लखिया विभू, तू अगम्य गम को जु ।
जे अगम्य गम काज ना, अब होलक तिन कौ जु ॥२६७॥

जे अभक्ष भक्षक जना, तिनकौं निंदाकार ।
जे अतत्व रोचक नरा, तिनकौ नाहि उधार ॥२६८॥

अहो अहिंस्य स्वरूप जौ, परम अहिंसा कार ।
सदा अहिंसक देव जौ, करै सकल उपगार ॥२६९॥

अहो रात्रि मुनिवर जपै, जाकौं ते निज रूप ।
पावै अल्प जु काल मे, वह मुनि पति जग भूप ॥२७०॥

अह्नि विषै भोजन करै, पिवहि नरजनो नीर ।
अहिन विषै मैथुन तजै, तुव मत रत गृहि धीर ॥२७१॥

---

* प्रति मे २६६ सख्या नही है, पर हमने क्रमश सख्या दी है । इसी कारण आगे ३०० की सख्या मे एक छद कम रह गया है ।

अह्नि दिवस कौ नाम है, तू ही जिनवर अह्नि।
कर्म काठ जाल न परो, जो इक दीसै वह्नि ॥२७२॥

छंद वेसरी

[1] तत्व अनेहा अविहित स्वामी,
अचल अखडित अखलित धामी।
अगणित द्रव्य अरूपी जोई,
अचर अमूरति अमर जु होई ॥२७३॥

अतुल अदेशी एक प्रदेशी,
प्रचुरातम जड रूप अलेशी।
अणु भरिताखिल लोक निवासी,
काल द्रव्य जो अकल अभासी ॥२७४॥

समवरती जो है जु असखा,
वर्तन लक्षन अलख अकखा।
द्रव्य सुगुण पर्याय समूहा,
वह जु अनामी सर्व जु दूहा ॥२७५॥

काल चक्र [2] परणति है ताकी,
पर्यय रूप कदापि न थाकी।
तामैं हौ भरमत हौं नाथा,
दीनानाथ गहौ मुझ हाथा ॥२७६॥

---

१ अनेहा कहता काल [मूल प्रति की टीका]

२ व्यवहार परणति काल की समय घडी प्रहर दिन रात्रि इत्यादि छै अर निश्चै परणति षटगुणी हानि वृद्धि छै [मूल प्रति की टीका]

कालचक्र तै मोहि उवारे,
अपनौ वासदेहु गुण भारे।
तो विनु काल न किहिन जीते,
कालनाथ तू काल अतीते ।।२७७।।

[1] अणु खधा नहि तो मैं कोऊ,
चेतन तू जु अमूरति होऊ ।।२७८।।

अणु द्रव्य खधा पर्याया,
फरसादिक गुण वीस बताया।
ते गुण मो तै टारि जु स्वामी,
निज गुण दै व्यारयौ अभिरामी ।।२७९।।
केवलदर्शन केवलज्ञाना,
केवलवीरज सौख्य प्रधाना ।
[2] इनहि आदि दै अमित जुदै हौ,
अपनौं करि अब्नै पुर लैहो ।।२८०।।
अणु कालाणू अर पुगलाणु,
दुहु कौ ज्ञायक तू जु प्रमाणु ।
मिलन शक्ति तै रहित जु एका,
दूजी मिलत जु शक्ति अनेका ।।२८१।।
अमर तूहि शिव तोतै होवै,
अमरासुर नर तुव मुख जोवे।
देव सकल कहिवे के अमरा,
अमर सही तू कवहू न मरा ।।२८२।।

---

१ इस छन्द की सख्या का चरण १ पक्ति का ही है।

२ प्रति मे पुन सख्या १ से शुरू की गई है, पर हमने इन छन्दो की सख्या लगातार क्रमश॰ ही रखी है, जवकि कई स्थलो पर सख्या मे ऐसा अवरोध पाया है गया। लगता है प्रतिलिपकार ने पुन इनको सुधारा नही है।

अनत सु अधिकाधिक्य तुही जो,
अनत सुदिन करते जसही जो ।
अनत निशाकर जीत नियता,
अनत होकर रस्मि जयता ॥२८३॥

अतत विवर्जित ईश अकेला,
असुधि वितर्जित धीश अचेला ।
वस्तु अशुद्ध न तो मैं पइए,
केवल शुद्ध रूप तू गइए ॥२८४॥

नाहि अनातम भाव जु तोमैं,
हरहु अनातम भाव जु मो मैं ।
तो विनु आतम भाव न लहिये,
तजे अनातम तोहि जु गहिये ॥२८५॥

अस्ति करता अस्ति धरता,
तू अस्तित्व स्वरूप अनता ।
तू अनाप्त भावनि तै न्यारा,
तोहि अनाप्त न पावहि प्यारा ॥२८६॥

अस्ति जु काय पच है स्वामी,
तिनकौ भासक तू जु अनामी ॥
अस्ति निरूपा अस्ति अधारा,
अस्तिर नास्ति स्वरूप अपारा ॥२८७॥

अस्ति नास्तिकौ प्रगट जु ईशा,
अस्ति नास्ति धर है जगदीशा ।
अमित प्रदेशी गुण जु अनता,
गुण पर्याय स्वभाव धरता ॥२८८॥

अखिल प्रदेशी सिद्धि स्वरूपा,
अतिसय थूल असाध्य अनूपा ।
तू अप्राकृत देह जु स्वामी,
तु जु अवाध्य अराध्य अरामी ॥२८९॥

तू जु अभक्त सुभक्त न काकौ,
तू सु प्रभु तारक भगता कौ ।
तू जु अनाकृति आकृति रहिता,
अकृत [1] अकृति बोध जु सहिता ॥२९०॥

तू जु अरुधा अचर अचपा,
बोहथ भवकी तू जु अझपा ।
अखिलातम अकुलातम स्वामो,
अकलातम अमलातम नामी ॥२९१॥

अचलातम अजडातम भूपा,
अमितातम अमितीस अनूपा ।
अगती [2] गती दायक तू ईशा,
असित भाव वर्जित जगदीसा ॥२९२॥

अन्न औषधी शास्त्र जु अभया,
ए चउ दान कहै तू विभया ।
अन्न पान निरदूषरण लैकै,
तोहि जु ध्यावै निज मन दैकै ॥२९३॥

ते सता पावे तत तेरा,
तू निरदूषरण भूषरण मेरा ।
अन्न वीरण अर जलहि जु छाराग,
इह तेरौ मत है जु प्रवारण ॥२९४॥

---

१ अकर्तृम छै १ अकपट छै १ [मूल टीका]

२ अगति गति मोक्ष कौ नाम छै जहा सौ फेरि गति नही ।

अन्न जला विनु और जिकेही,
जिह्वा स्वाद जु होइ तिकेही ।
ते नही स्वादे तेरे भक्ता,
अन्न वारि ले तो महि रत्ता ॥२९५॥

अणु भोजन ले तोहि जु ध्यावे,
सर्व स्वाद जे दूरि चहावे ।
ते निज स्वाद लहै निज भक्ता,
जिन रस चाखि जु विषय निरक्ता ॥२९६॥

छंद पाधरी

अरविंद चक्षु अरविंद पाय,
अरविंद हस्त अति गंध काय ।
अरविंद वदन जगजीत देव,
मधुकर मुनि सुर नर असुर भेव ॥२९७॥

अतिनदानंद अनंद देव,
अति अकथ अपूरव असम टेव ।
अतिनाथ जु देव अनत नाम,
अतिसाथ जु एक अनत धाम ॥२९८॥

अतिहाथ अछेव अवेव वेव,
अणुमति अमती किम योज्ञ सेव ।
अतिहित जु अनत अनत ज्ञान,
अतिमित जु अनंतानत मान ॥२९९॥×

× ३०० पद्य पूर्ण होने मे हमारे क्रम मे १ सख्या कम पडती है । वह पद्य सख्या मूल प्रति मे २६६ स वाली नही है । इस प्रकार हमने अपने क्रम मे अवरोध नही किया है ।

अति अतुल अनतानत रूप,
अति अमल अलिप्त जु लोक भूप।
मति श्रुति अवधी अर तुरिय ज्ञान,
धारी मुनिहू नहि सकहि गान ॥३००॥
अनुमति की कौंन जु वात देव,
इक नाम अधार जु देव देव।
इह विनति जु धारहु दीनवधु,
लेहो निज पुरि अर हरहु वध ॥३०१॥

छंद भुजंग प्रयात

अनर्तद्धि सिद्धि तुही देव देवा,
अचिर्तद्धि वृद्धि तुही नत भेवा।
अमेयर्द्धि पूर असख्येय स्वामी,
अनदित्व भाव तुही सर्वजामी ॥३०२॥
सर्वस्य अग्रो तुही अग्रनाथा,
तुही अग्रिमो अग्रजाता असाथा।
तुही अग्र अग्रेश्वरो ईशराया,
तुही पर्म तत्व अरूपी अकाया ॥३०३॥
अलेषो अभेषो अलेशो अशेशो,
अहेयो अमेयो अदेहो अदेसौ।
अडको अटको अनको अबको,
असको अरको अकपो अपको ॥३०४॥
अगाधो अवाधो अनगो अभगो,
अनामो अकामो अरगो असगो।
अपापो अपुन्यो अनेको अछेपो,
अनाथो अजोगो अभोगो अलेपो ॥३०५॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सोरठा

[illegible] ।
[illegible] ।।
[illegible]

छप्पय छंद

अतिनामी अभिराम तूं हु अतिकाम अनंता ।
अतिधामी अनिरुद्ध तूं हु अतिशुद्ध अनंता ।।
अतिभांनो अतिनाम तूं हु अतिपुड सुरूड़ ।
अतिलड़ो अवदात तूं हु अतिरंग अपूड़ा ।।
अत्युदार अनगार तूं अत्युचार वागदेव है ।
अत्युनाम अतिचण तूं हु अनंत अछेव है ।।३१०।।

---

१ अनीतो महतां जिहको कोइ धनी नहीं, आप ही धनी है ।

अतितातो अतित्रात तू जु अतिवीर प्रवीरा।
अतिपातो अतिसार तू जु अतिचार अनीरा।।
अतिधीरो अतिमित्र तू जु अतिस्वामि अनादी।
अतिरूपो अतिभूप तू जु अतिपूत अवादी।।
अधिकारी अतिरम्य तू अति सु पुन्य अवधूत है।
अभिचारो अतिशूर तू अति चूर जु अतिभूत है।।३११।।

अतिपति तू अति ऊंच तू जु अतिसौच अनदा।
अतिपूरण अतिबुद्धि तू जु अतिदूर अफदा।।
तू अमरामर देव ज्योति मय तेरो रूपा।
सर्वज्योति जितदेव तू जु अतिछत्ति जिनभूपा।।
तो सौ तू ही देव हैं और न देव कदापि कौ।
तू पूरण परमात्मा भगवानो जु उदापि कौ।।३१२।।

तू जु अहिसा शक्त त्यक्त अदया सव तूही।
तू अनृत परिहार करण सव गुण जु समूही।।
सव परि तू जु दयाल नाहि कर मनि परि जैना।
अमृत तुल्य महान नाथ तुव अदभुत वैना।।
अदत प्रत्यक्त जु तू सही अब्रह्म तिक्त सुब्रह्म तू।
अबध अबाध अकिंचनो परमेश्वर पर ब्रह्म तू।।३१३।।

अपरद्रव्य कौ त्याग वस्तु तैं तेरे स्वामी।
अनृतमाया जाल तासु कौ लेशन कामी।।
अमला कमला पासि पासि रूपा नहि कमला।
वहिरगा ने दूर तू जु अतर लछि विमला।।
तू श्री व्यक्त अभीत है, अलभ अभाव अगृद्धि तू।
अबध निरूपो गुण मई, ऋद्धि वृद्धि धर सिद्धि तू।।३१४।।

तू जु अरोर अरोग तू जु श्रीयुक्त अनता।
तू श्रीवान जिनेस रहित अवला अरहता।।

अनुभूती जो लछि ओर को लछि जु नाही।
तू अनुभूति स्वरूप वह जु तोही कै माही ।
व्रतरूपो समधार तू अक्रिय भाव वितीत है।
क्रिया रहित तू अक्रियी कूटस्था जगजीत है ।।३१५।।

तू अघ छेदक देव तू जु है अतत विहडी।
असत विहडक तू जु पूज अभिनद अखडी ।।
अति ब्रह्मेश्वर ईश धीश तू है जु अरूपी।
परगट रूप दयाल एक तू ही जु अनूपी ।।
अति यतिभूपो अतिशयी अतिशय रूप अनूप है।
अतिगति रूपो अतिधृती अतिचद्र जु अतिभूप है ।।३१६।।

अरति वितीते तू जु पूज तू अनय वितीता।
तू जु अपुण्य वितीत पुण्य पापनि तै वीता ।।
रहित अनीति सुनीति तत्वनि नीत जु तूही।
तू अपराध वितीत जीत तू कर्म समूही ।।
सदा जु अरीति अनीति ते अधरम ते न्यारो तू ही।
तू जु अनाशामय जिती अमतविजीत कहै सही। ३१७।।

अमति कुमति नहि सगि, सगि तेरै निज बोधा।
अगति उधारक देव तू जु निजरत अति सोधा ।।
अतिक्रम वितिक्रम नाहि नाहि तेरै अति चारा।
अणाचार को लेश नाहि तेरै जु लगारा ।।
तू अति चारु मनोज्ञ है अनुचरगण तेरै नही।
अनुक्रम क्रम नहि पाइए, नाहि अनारज तो मही ।।३१८।।

अशुभ वितीतसु तू जु पूज तू असुधि विजीता।
मोहतणी जु अनीक एक तै ही सब जीता ।।
तेरै नाहि अनीकनत गुण ते जु अनीका।
नीका ते जु दयाल नाहि को तिन समनीका ।।

कहै अनीक जु फोज कौ नीक अनीक जु गणनिकी।
तू अनीकधर गुणमई आशा पूरहि मुनिनि की ॥३१९॥

सप्त अनीक जु धार इन्द्र है तेरो दासा।
षट् सेनाधर चक्रिदास कौ होय जु दासा॥
अवर सकल नृप च्यारि धारही सेना स्वामी।
तू सबको पति ईश एक वड भूप अनामी॥
तो समसेना तो कनै, अवर ठोर दीखै नही।
तू अनीकपति एकलौ अमित अनीक जु तोमही ॥३२०॥

तू जु अलीक न होय तोहि नहि लहहि अलीका।
अव्रत त्यक्त दयाल तू जु है नाथ सुनीका॥
अतिशयवत अनत तू जु जिन अति मुनिनाथा।
अनुचित वीत अभीत एक तू अमित जु साथा॥
अतिरित भूपो अतिव्रती अतिविरतो अवनीप तू।
अकरम देव अतिहितू एक एव जगदीप तू ॥३२१॥

अतिसय सागरनाथ सकल अन्याय अतीता।
तू जु अमत्रि अमत्र मत्रमय तू जु अजीता॥
नाहि अमात्य[1] जु कोइ होय तेरै दरवारा।
दुर्गकोट को नाहि आप दीषै इक भारा॥
तो सौ रावल तू सही अजड अकर चिनमय प्रभू।
एक रावलौ रावरौ और नाहि रावलक भू ॥३२२॥

अभिजित जतिपति तू जु पूज अति नगन स्वरूपा।
अतिशर्म्मातम देव तू जु अतिशय वडभूपा॥
अतिशय तत्र जु एक अवर नहि तो विनु अतिशय।
तू अतिभूति विशालनाथ तू रहित सकल भय॥

१ अमात्य कहता परधान। मूल प्रति की टीका।

अविहित मिथ्यामत सर्वे विहित शिवागम सार तू ।
जिन आगम भासक विभो अस्ति नास्ति नयधार तू ॥३२३॥

तू अतिभूमि क्षमा जु क्षातिधर एक तुही जो ।
तू अप तुल्य[1] दयाल पापमल नाशक ही जो ॥
तपति हरण अति अमल जीव सम तू जग जीवन ।
अनल[2] समो भगवान दहन कर कर्म महावन ॥
अनिल[3]समो विनु सग तू महावली हुत भुज सखा ।
वात वलय आधार जो लोक सकल दायक सुखा ॥३२४॥

तू अभतुल्य[4] अलिप्त तू जु अभमान अमानो ।
नभ है तेरे माहि तू जु नभ माहि वषानो ॥
अनुपम मानो तू जु पूज तू अचलपती जित ।
अकल समानो नाथ अकुल सम तू जु जगत हित ॥
नाहि किसी सौ पूज तू, अखिल सरीसौ हे प्रभू ।
ज्ञेयाकार अनत जो ज्ञान भाव तेरै विभू ॥३२५॥

अर्कसमो अतिभास मोह तिमर जु कौ हता ।
ममता रजनी मेटि वोध दिवस सु प्रगटता ॥
भव्य कमल प्रतिफुल्ल कारण जो पथ चलावै ।
विषै विनोद मिटाय नादि सूते जु जगावै ॥
जीव जु चकवो मति प्रिया विषम विरह तिनकौ हरै ।
अभवि उलूका नहि लखै, अर्क अमित द्युति तू धरै ॥३२६॥

अति जु अनत प्रताप ताप नहि तेरै सवही ।
मिथ्या भवजु राहु तोहि बेठै नहि कबही ॥

---

१ जल तुल्य निर्मल शीतल छै १ अप कहजे जीव कहजे जल का नाम छै
२ अनल अगनि कौ नाम छै । [मूल प्रति की टीका]
३ अनिल पौन को नाम छै । ,,
४ अभ कहता आकाश । ,,

वाकौ नाव जु मित्र तू जु है साचौ मित्रा।
अर्क नही तो तुल्य तू जु अति रश्मि विचित्रा।।
अह्नि करण अवगम मई, अहो अहोकर अरुण तू।
अजड भाव कर देव है, सेत न स्याम न अरुण तू।।३२७।।

असु प्राणनि कौ नाम तू जु[1] असुभृत् गणनाथा।
अतुल प्रमाण जु ईश, असम सम तू जु अनाथा।।
अगणित चदर सूर नाहि नख द्युति सम तेरे।
अभमानो अभिमान तू जु हरि साहिब मेरे।।
अवधिन अबिधिन तो विषै, अतिविधि मूल जु तू जिना।
अतिगति ध्यान निदान तू, अतुलित शमकर तू दिना।।३२८।।

सोरठा

अति अविगति तू देव, गति गति कौ ज्ञायक प्रभू।
सुखदायक है सेव, अन्य न चाहै अनत प्रभू।।३२९।।

छप्पय

जो जु अविद्या कद तासु कौ है जु निकदा।
अनूपम काय सु तू जु पूजि तू अखिल अनदा।।
अति सुगम कहै तू जु देव तू अभव विडारी।
अभख भषक जे जीव तोहि पावै न उधारी।।
अगम गगक जे पापिया तोहि न पामै नाथ जी।
अगम गमक फुनि जोगिया तजहि न तेरौ साथ जी।।३३०।।

---

१ असुभृत कहता प्राणी जीव त्याका गण समूह त्याको नाथ छै।

[मूल प्रति की टीका]

तू अविज्ञेय अछेय नाहि परमादसु तो मैं।
तू अप्रमत्त जिनिद नित्य निवसै प्रभु मोमैं॥
मैं परमादी मूढ नाहि लखीयो पद तेरौ।
अविषय अतिशय रूप तू जु हरि तिमिर जु मेरौ॥
जा करि तोहि लखो प्रभू, वहै दृष्टि दै साइया।
नाम अपार जु जासु के सो तू जगत गुसाइया॥३३१॥

अतिठामो अतिग्राम तू जु अतिधाम अनामा।
अतिहित मंत सु सत नाहि तेरै घन धामा॥
अस्वादिक चतुरग सेन तजि तोहि नृपाजै।
ध्यावै तन मन लाय होहि प्रभु पति विटपाजे॥
अष्टम धर लहि सासती सिद्ध भाव पावहि तिके।
सर्व त्याग तोहि जु भजे, ह्वै तो सम जिन जन जिके॥३३२॥

तू जू अगोचर नाथ एक गोचर केवल मे।
तू जु अनालस भाव नित्य निवसै देवल मैं॥
अलकार नहि कोय होय तेरै न अभूषन।
भूख न प्यास न कोय नाहि को वसन न दूषन॥
तू देवलमैं सिद्धलोक मैं है सही।
घटि घटि अतर साइया वसै अनाशक्तो तुही॥३३३॥

सोरठा

अज्ञानादिक भाव नाहि जुतु तो मैं पाइए।
ज्ञानमूल जगराव, तू अनत भाव जु धरै॥३३४॥

तू जु अदर्शन नाहि, सदा सुदर्शन है प्रभू।
दरशन तेरै माहि, केवल एक अनत धी॥३३५॥

छंद वेसरी

अति तू भूषण अति निरदूषन,
अतिहि तृप्त प्रभु प्यास न भूषन।
अति नीरैं प्रभु मानहु दूरन,
अति जड चूरन अति सुख पूरन ॥३३६॥

+अति जग पारग अति शिव मारग,
अति सु उधारक धर जिन मारग* ॥३३७॥

अति भू मोचक अतिगुण रोचक,
अति दुखरोधक अतनु असोचक।
अति भू दायक, अतिगुण लायक,
अतिमुनि नायक अतिरस भायक ॥३३८॥

अतिक्षम क्षमकर अतियम यमधर,
अतिशम दमकर अतिजप तपवर।
अति भू क्षमपर अति यतनाकर,
अति ×उपरमकर अति समताधर ॥३३९॥

अति भू पोषक अतनु विसोषक,
अतिजन मोषक अतिहित घोषक।
अवगुण टारक समकित कारक,
अतनु प्रभारक अमन प्रचारक ॥३४०॥

अतिनर अतिभर अतिकर,
अतिवर अतिपर अतिचर अतितर।
अतिचिर अतिथिर अतिगिर, अतिगुर,
अतिधर अतिहर अतिहरि जिनवर ॥३४१॥

+ शिव मारग कहता-मोक्ष मारग, कल्याण मारग, [मूल प्रति की टीका]

* यह पद्य दो पंक्तियों का है। × उपरम कहतां वैराग्य। ,,

अतिसुख सागर अतिगुण आगर,
अतिनर नागर अतिजग जागर।
अति सु उजागर प्रभुरतनाकर,
सुर नर चाकर तू जिन ठाकुर ॥३४२॥

अतिभव ज्ञायक अनुभव दायक,
अतियुग चायक अतिसुर पायक।
अतिभव नाशक अभय प्रकाशक,
अतिगति भासक अभव विकासक ॥३४३॥

अतिमुनि कारक अतिमुनि तारक,
अतिमुनि धारक अतिमुनि पारक।
अति आर्याकर अति श्रावकधर,
अति समकित धर समकित धरकर ॥३४४॥

अतिभव भयहर अतिशिव सुखकर,
अति परमेश्वर अति भूतेसुर।
अति सुग हर गति अति जु त्रिजगपति,
अतिछति अतिजति अतिमिति अतिगति ॥३४५॥

सोरठा

तू अनुकूल सदैव, प्रतिकूलो नहि क्वापि।
दूजे ह्वैं तोसौ दैव, अनुकूला ते भव तिरै ॥३४६॥
अवग्रह ईहा आदि, भेद जिके मतिज्ञान के।
तू भाषै जु अनादि, तीन सतक अर तीस छह ॥३४७॥
अमन अतिद्री तू जु, इद्री और अनिंद्रिया।
तो महि नाही पूज, नाम अनिंद्री मन तणौं ॥३४८॥

अजर अजन्मा देव, तू जु अकर्मा राजई।
दै भव भव निज सेव, तू सु अभर्म्मा है प्रभु ।।३४९।।

तू जु अमर्मा देव, कर्म ठौर तेरै नही।
तू सव मर्म सुवेव, तू जु अचर्म्मा चर्म्म विनु ।।३५०।।

तू जु अश्रम्मा नाथ, श्रम खेद जु तो मैं नही।
श्रमहर सुख तुव साथ, तू जु अवर्मा वर्म विनु ।।३५१।।

वर्म जु वगतर नाम, मर्म विना वगतर किसै।
तेरे आवै काम, तू जु स्वशर्मा राम है ।।३५२।।

सबकौ रक्षक नाथ, तातै सवको वर्म तू।
मरमी तू वडहाथ, मर्म न छेदै कोय कौ ।।३५३।।

सवैया तेईसा

तू जु अमातृ अपितृक देव सदा जु अपुत्रक है जु अलौकिक।
तू जु अबधु अबधननाथ अवाधक एक महाजु अचौकिक ।।
तू जु असाधक साध्य स्वरूप अदंभिक ईश जिनेश अरौपिक।
तू जु अराधक तार अराध्य अनघ अखध असध अगौपिक ।।३५४।।

तू जु अबधक अदक नाहि, अनिदित नदित है जु अरजित।
तू जु अनिंगित इगित नाहि, अनकित नाथ सदाजु अनजित ।।
तू जु असकित है जु अवकित, देव अलघित नित्य अगजित।
तू जु अचभिक है जु अमदित, ईस अखडित सर्व अघजित ।।३५५।।

तू जु अनिंदक पूज अवंदक, नित्य अफदक है जु अवदक।
तू जु अखडक वोध अमदक, पाप निकदक है जु अछदक ।।
तू जु अहडक है जु अदडक नाथ अछडक नित्य अकटक।
पु स न नारि सुरो नवि मानव, ढोर न नारक तू जु अपढक ।।३५६।।

तू जु अडकित है जु अचपित देव अझपित नित्य अलपित ।
तू जु अदड्ति है जु अकिंचित नाथ अवचित बोध विज्ञ भित ।।
तू जु अकृषित है जु असखित ईश अविचित राय अकपित ।
तू जु अभैवृत स्वामि अखैहित एक अजैवित धीश निशकित ।।३५७।।

तू जु अलु टक तात अबचक है जु अभडक नित्य अभजक ।
देव अचितक ईश अनतक नाथ अरजक भूप अषडक ।।
पूज अभजित स्वामि असगित है जु महाधिप एक असघक ।
सघ उधारक आप अकारक पार उतारक सूत्र अलधक ।।३५८।।

दोष अमडित है गुण मजित नित्य असचित ईश अरजन ।
नाथ अटकित तात अरगित स्वामि अजजित आप निरजन ।।
नाहि विकार विभाव जु जामहि एक अनेक स्वरूप अकिंचन ।
नाहि लप्पो कछु जाय अनूपम द्वैत अद्वैत स्वभाव अभजन ।।३५९।।

छंद अरिल्ल

लप्पो जाय नहि नाथ, तू जु अलपित सही ।
अलप वहुत नहि तू जु तू जु द्वै है वही ।।
अत्युज्जल तू देव, अभिक्षमी है विभौ ।
अत्युत्कर जगदीस, अतीयमी है प्रभो ।।३६०।।

अतितेजस अतिसीत अतिदमी अतिगुरु ।
अति ठाकुर अतिजीत, अतिसमी अति ध्रुरू ।।
अतिसाहिव अधिकार, उपरमी तू सही ।
अति सागर विधि रूप, अति जती है तुही ।।३६१।।

अतिलायक अणगार, अणगारौ तू नही ।
तुही आगरौ देव, गुणनिकौ है सही ।।
अतिनागर निज रूप, गुणागर साईया ।
अतिजोगी जगजीत, अलेष गुसाइया ।।३६२।।

अति जागर तू देव, उजागर ज्ञान को।
सोवै नाहि कदापि प्रभू है ध्यान को ।।
अटल भाव धर एक अचल भाव जु सदा।
अमल भाव जगदीस, मलिन नाही कदा ।।३६३।।

तू जु अनग विभाव, टार कोई सहै।
तु जु असग स्वभाव सुधारक धीश है ।।
तू जु अचित्य प्रभाव प्रभू है सासता।
तू जु अहिंस स्वरूप नाहि को नासिता ।।३६४।।

तू जु अशुद्ध विभाव नाशनो ईश है।
सदा अभेद स्वभाव भासनो धीस है।
नाहि अभव्य स्वभाव, भव्य भाव जु नही।
तू शुद्धत स्वभाव परिणामिक सही ।।३६५।।

चौपई

तू हि अलधि भाव भूषो जु, तू हि अपावन जन दूषो जु।
तू जु अमूरत भाव सुपषो, तू जु अधूरत भावा सषो ।।३६६।।

तू जु अगोध भाव दडोजु, तू जु अनित्य भाव षडोजु।
तू अजडत्व विकासी देव, तू अचलत्व प्रकास अभेव ।।३६७।।

तू जु अचित्य भाव करि भरो, तू जु अलक्ष भाव हैं वरो।
तू जु अलोक भाव कौ जान, तू अवलोकन कर गुणवान ।।३६८।।

अखिल भाव भावक तू नाथ लोकाकास प्रमाण अनाथ।
तू जु अमोहत्वादि प्रधान, अस्तित्वादिक गुणह-निधान ।।३६९।।

तू जु अलोभत्वादि अधार, तू जु अधमगति तारनहार।
तू जु अधोगति हारी हरो, तू अरिचक्र विदारी अरो ।।३७०।।

तू जु अशुभ गणटारक ईश, तू जु अशीलें हीलक धीश।
तू अदयत्व विघाटक देव, अकर रोग वर्जित अतिभेव ।।३७१।।

अखिल भोग डारक जोगीस, अखिल जोग टारक भोगीस।
मन वच काय तणे जे जोग, तिन तें रहित अमित सुख भोग ।।३७२।।

अखिल व्रत उपदेशक गुरो, अणुव्रत उपदेशकहू धुरो ।
अखिल भूति दर्शिक भगवान, निखिल भूति त्यागिक धनवान ।।३७३।।

अतुल भाव फरसी मुनि भेस, अचल भाव दरसी जगतेश ।
अमल भाव सरसीरुह सूर, सदा जु अविचल भाव सुपूर ।।३७४।।

अटल सु देवो अमल जु काय, अकल स्वज्योती अतुल जु राय ।
अजड स्वरूपी विमल प्रभाव, अकर अकारक अकरण राव ।।३७५।।

अकरम और असपर दान, परदर विनु कौले सनमान ।
तू निज अपादान जगदीस, अधिकरणो भगवत अधीश ।।३७६।।

पर षट्कारक तौ मैं नाहि, निज षटकारक तेरै माहि ।
तू कर्त्ता कर्म्मा निज क्रिया, सप्रदान तू है विनु त्रिया ।।३७७।।

तू निज शक्ति अपादानो जु, तू आधारो अधिकरणो जु ।
अकरदाय तू अपर जु नाथ, अमलनाथ तू श्री जगनाथ ।।३७८।।

अमर छाय तू नहि मुरझाय, अमित छाय तू है जु अछाय ।
अमर ध्येय तू अमित प्रभाव, असमकाय तू रहित विभाव ।।३७९।।

अतुल देव देवनि के देव, तेरी तुलना कोई न देव ।
अखिल भाय तू अनत जु नाथ, जगत राय तू मुनिगण साथ ।।३८०।।

अखिल मात तू अखिल जु त्रात, अखिल तात जू अखिल जु पात ।
असम धीर तू अखिल जु गात, तू जु अरूपी देव अजात ।।३८१।।

छंद त्रोटक

तू ही जु अनुद्धत देव अर,
तू हि जु अनुज्झित भावचिर ।
तू ही अनया सो ईश पर,
तू ही अद्वितीयो धीरधुर ।।३८२।।

तू ही सु अनाकाशो जु वर,
तू ही जु अवैर करो विचर ।

तू ही जु अनावासो विहर,
आवास वितीतो नाथ पुर ॥३८३॥
तू ही जु अनुत्कठां विथर,
तू ही जु अनाभासो अजर।
ईशो जु अनाविल है अपर
धीशो जु अनाद्रित है अकर ॥३८४॥
देवो जु अनाकुल भाव थिर,
कर्म्मामय भैषज रूपसुर।
नाथो जु अनाशक्तात्म गुर,
पूज्यो मु अनातम विभावहर ॥३८५॥
तू ही जु अवाधित सूत्रकर,
तू ही जु असाधितसाध्यतर।
तू ही जु अनुद्वेगो अजुर,
तू ही जु अनौपम्यो अदुर ॥३८६॥
अक्षय गुणरासी पति नगर,
अत्ययनासी जिनपति सुगर।
तेरी अवधारण योज्ञगिरा,
तू ही जु अपूरव रूप घिरा॥
सर्वे जु अगोचर भाव जिके,
तू ही गोचर कर नाथ तिके ॥३८७॥
पावै जु अनालस साध तुम,
गावैं जु अनागस सघ तुम।
तू ही जु अदूषित देवप्रभू,
तू ही जु अक्षोभित लोकविभू ॥
तू ही अतिभासी धीश जिना,
तू ही अतिभारी ईश दिना।
तू ही अतिभारी मान जयो,
तू ही जु अचूको ज्ञान मयो ॥३८८॥
तू ही जु अविभचारी सुमुनी,
तू ही अधिचारी नाथ दुनी।
स्वामी जु अभूलो एक तुही,
भूलो सब जग जन औठ सही ॥३९०॥

छंद त्रिभंगी

जब लग्गि अतिंद्रिय बोध निरिंद्रिय,
इंद्रिय निंद्रिय रहित जिना।
जीवो नहि पावत तोहि सुतावत,
अखिलन पावत रूप दिना ॥
तू ही जु अवाच्यो मुनिहि जु जाच्यो,
कितहु न राच्यो सर्वगुरु।
तू अखिल सुवाच्यो नाथ अजाच्यो,
निजरस राच्यो देवधुरु ॥३९१॥

जो साधु अतंद्रा वसहिजु कद्रा,
मत जिनचद्रा दिढजु धरै।
ते जपहि जु तोही,
ह्वै निरमोही छाडि सबोही ध्यान करै ॥
तू है अनुभूती रूप विभूती,
नांहि प्रसूती क्वपि धरै।
अतिरिक्त विभावो शुद्ध स्वभावो,
अमित प्रभावो कालहरै ॥३९२॥

तू है अकलक को ईशचिदंक,
को नित्य अपको देवहरी।
तू असमजु नाथो है अति साथो,
अति वडहाथो रहित अरी ॥
तू ही अपरा पर है जु मुधाहर,
पूज सुधाकर लोकपती।
प्रभुजी अतिपात्रो है अति छात्रो,
ज्ञानहि मात्रो शुद्ध जती ॥३९३॥

तू अति भूतेस्वर है जु महेश्वर,
देव जिनेश्वर अतुल गुणो ।
तू अनत विधानो नाथ अमानो,
अतिगति दानो तत्व गुणो ॥
तू ही जु अरूपी अनत जु रूपी,
परम अनूपी बोधकरो ।
तू पात्र जु रहितो पात्र विमहितो,
निजरस सहितो कर्महरो ॥३९४॥

तू है अतिचारी जिन अविचारी,
अतिगति भारी धर्मपरो ।
है जू अविलीनो नाथ अदीनो,
नांहि अधीनो सिद्ध वरो ॥
देवो अति चेता मुक्ति सुनेता,
है जु प्रणेता चित्तहरो ।
अति ही मदहारी साधु सुधारी,
अमृतधारी मृत्य हरो ॥३९५॥

तू अति शम धारी अगरवतारी,
अति भवहारी शिव जु वरो ।
तू है अतिपारी अति अविकारी,
भव्य उधारी जिन विथरो ॥
तू अतिरित माया अतिरित काया,
अतिरित जाया क्षेत्र धरो ।
तू है अतिक्षेत्री सर्व सुक्षेत्री,
मोह विजेत्री जगत गुरो ॥३९६॥

तू प्रभु अवधूतो अतिहि जु पूतो,
है अभूतो भूत महा ।

तू है अतिकामो पुनि जु अकामो,
राम विरामो नाम लहा ।
अतिकर्म जु नाशा अति जु अनाशा,
रहित जु आसा सतधरो ।
जीवनि कौ पालक दोष जु टालक,
काम अहारक सर्व सुरो ॥३९७॥

दोहा

तू जु अनातको प्रभू, है जु अनावे सोहु ।
पूजि अनादेशो तुही, व्यापि रह्यो जगि जोहु ॥३९८॥
तेरौ निर्माता नहीं, रचिता जग मै कोय ।
अनिर्मातृ भगवान तू, अनिर्वाच्य को होय ॥३९९॥
अति भूतीश्वर असम तू, कर पात्रा जु महत ।
तोहि जपै निज मात्र तूं, विनु गात्रो भगवत ॥४००॥
अतिजेता अतिभूप तू, अतिधर्मी अतिधर्म ।
अति जु भर्म रहितो तुही, अति शर्म्मी विनु कर्म्म ॥४०१॥

कवित्त

तू अतिकर्म जु टारक स्वामी,
शुभकर्मा नहि अशुभ जु कोय ।
अतिपुण्यो शुद्धत्व मात्र है,
तोसो देव जु तूही होय ॥

तू अनघेशनाथ अतिछात्रो,
अतिरिक्तो छात्रनितै सोय ।
तू अलषेशनाथ अति गात्रो,
अत्यतो अत्यर्थं न दोय ॥४०२॥

तू अतिनाथ अतित जु पात्रो,
अति सुहितू अत्यत जु भ्रात ।
अतिभृत्या तेरै जिनस्वामी,
अतिचेतन तू अमित सुतात ॥
अति जु अनत भेदधर तू ही,
आप अभेदो है अनिपात ।
तू सामान्य विशेषातम है,
एकानेक जु भेद अजात ॥४०३॥

जो अतिक्राति विश्राति दयाला,
अरिहता अतिशात मुनीश ।
सुरनर मुनिवर खग तिरकौ मन,
हरै न चौरो अति जगदीश ॥
साच झूठ जे जगत प्रपचा,
जानै सब अररहित जु रीस ।
जीव रसिक जो नासक कर्मा,
निरग्रथो अति कमलाधीश ॥४०४॥

इह अदभूत गति देखहु तापै,
सो अध्यात्म धारसु सार ।
अध्यातमि कौ तारक देव,
असुधारिनि कौ है प्रतिपार ॥

अश्व जु स्पदन हस्ति सुपाय,
कदेन हार सबकौ दातार ।
सब सेना ते रहित जु स्वामी,
सेनाधर सैवे दरबार ॥४०५॥

अतिसै जगके दासन मागै,
दै अतिशय चउतीस जु मोहि ।
अष्ट जु प्रातिहारहू देहो,
केवल दै विनऊ कहा तोहि ॥
देहु अनतचतुष्टय निश्चै,
तू अतिशय तन चिदघन होहि ।
अतिशय प्रातिहार नहि देतो,
अनत चतुष्टय दे प्रभु सोहि ॥४०६॥

तू जु अजाण जान तू करई,
निज सपति दै श्री भगवान ।
अभ विन पावै तेरौ पुर जो,
तू भवितार कहै अति जान ॥
तू जु अभीरु भीरू न पावै,
अभिध्येयो तू है अभिधान ।
अहमेवादिक तो मैं नाही,
तू अभिधाता अनुपम भान ॥४०७॥

तू अतिध्येय सु तू अतिज्ञेयो,
अप्रमेय तू है अतिभेय ।
अदभुत सार जु तू शिव सारो,
अतिशय सागर है जु अहेय ॥

तो सौ अतिशय वरण जु तूही,
और न दीसै जग मैं ज्ञेय।
मेरी इह विनती सुनि देवा,
देहु अमै पद निज मैं नेय ।।४०८।।

दोहा

अति थारौ आधार तू, अनत वसै जगदेव।
अदभुत अध्यातम विमल, तु ही प्रकाम अछेव ।।४०६।।

त्रिभंगी छंद

अथ अतिप्यास की ढाल—

अतिमतिकारा अतिश्रुतिसारा,
अवधि अधारा अतिधारा।
है अतिसुखसारा अमन प्रचारा,
अवगम*-वारा धर प्यारा ।।
है अति विचरइया अति विहरइया,
अति विथरइया अतिसारा।
है लक्षण गारा अतिशय कारा,
अतिसमवारा अतिप्यारा ।।४१०।।

अति ही वित भरिया अतिचित धरिया,
अतिगति हरिया अतिहारा।
है अत्युत्च्चडा अति सुखपिडा,
अगति विहुडा अतिप्यारा ।।

---

* अवगम कहता ज्ञान

प्रभु अतिगति कहिया अतिरति रहिया,
अति गणधरिया अतिसारा ।
है अतिगुण धुरिया अतिभव तरिया,
अतियम हरिया अतिप्यारा ॥४११॥

अरति जु हरिया रंग सुकरिया,
संघ उधरिया अतिकारा ।
गुण संग न तजिया सग जु तजिया,
मुनिगण भजिया क्षम वारा ॥
जिन अतिगति पिंडा आप अपिंडा,
अव्रतछडा अतिफारा ।
है अतनु सु दडा व्रत नहि खडा,
उपर मयडा जनप्यारा ॥४१२॥

है अनघ अघारा अमग प्रहारा,
अगम अपारा अघटारा ।
है तथ्य सु धारा अवितथ घारा,
अविधि विडारा अतिप्यारा ॥
अति परगुण रहिता अति निज सहिता,
सुरनर महिता अतिपारा ।
है अतिरस रसिया, अतिगुण लसिया,
अवगम वसिया अतिप्यारा ॥४१३॥

अति अतिथि अधारा वितथ विदारा,
पथ्य सुधारा अतिसारा ।
है अतत विडारा अव्रत डारा,
अतिव्रत वारा अतिप्यारा ॥

अकलित अविरूपा अचलित भूपा,
अतुल अनूपा अतिवारा ।
है अनुभव कारा अतिभव हारा,
अकथ अपारा जिन प्यारा ॥४१४॥

अति अतिशय मंडा अनुशय छंडा,
सौस्य करंडा अविकारा ।
है अनुभव पिंडा अतिशय खंडा,
अतिगति खंडा अतिप्यारा ॥

है अपगति खंडा अविगत पिंडा,
अतिहित मंडा अविधारा ।
है अति अघदंडा अति जु प्रचंडा,
कर्मविहंडा अतिप्यारा ॥४१५॥

है अविरति हारा विरति विहारा,
अतनु प्रहारा अणगारा ।
है भूति विथारा अखलित धारा,
अप्रमतवारा अतिप्यारा ॥

है अमित विथारा सार सुसारा,
अति जगपारा अतिचारा ।
है अतिक्रम टारा मल जु विडारा,
अदरस हारा अतिप्यारा ॥४१६॥

है अकर अकारा अजर जरारा,
अमर करारा अविचारा ।
है अतिगुण गारा अठमद डारा,
अविनयटारा अति प्यारा ॥

है अतिसुख वारा अकुलित डारा,
अतिशम धारा अतिगारा ।

अठदश जु हजारा शील प्रकारा,
अनतीचारा घर प्यारा ॥४१७॥

है अति तिक्षारो अतिक्षिम धारी,
अलख जगारो अतिभारो ।
है क्षरण क्षरण धारा आप सम्हारा,
ज्ञान अपारा घर प्यारा ॥
है अतिमद मारा अमद सुधारा,
अतिसै वारा जगतारा ।
है अतिसंवेगी नाथ अवेगी,
आपुन एगो अतिभारा ॥४१८॥
है गति अति धारा रहित जु भारा,
अति निज लारा परहारा ।
है अति जस भारा अति गति प्यारा,
कृपरण विडारा जगभारा ॥
है अकृपरण धारा त्याग सुधारा,
शक्ति अपारा तप धारा ॥४१९॥

है अतितप वारा अतप पसारा,
अतितप कारा अरणगारा ॥
है तप ज्वर हारा तप जप प्यारा,
अति तप चारा अतिप्यारा ।
है अतितप चडा अतप सुदडा,
शक्ति अखडा अति धारा ॥
है नहि असमाधा साधु समाधा,
नित्य अवाधा हर प्यारा ॥४२०॥

है त्याग अखडा तप जु प्रचडा,
आप प्रचडा व्रतकारा ।

दस भेद जु वारा साधु उधारा,
वह अविकारा उरहारा ॥
अति वैयाव्रत्ता कहइ सुव्रत्ता,
रहइ निरत्ता हरिहारा ।
है अकपट गारा कपट प्रहारा,
विश्व विहारा अघहारा ॥४२१॥

है अतिभव हता अति अरिहता,
प्रभु अरहताक्षर वारा ।
अति अनुभवकारा परिगह डारा,
सर्व अधारा गुण गारा ।
है आरिज तारा भगत उधारा,
अति आचारा जग प्यारा ॥
है अनुभव वारा वह अति प्यारा,
अगमि प्रचारा अभिचारा ॥४२२॥

है अतिश्रुति धारा वहुश्रुत प्यारा,
अति आधारा गणतारा ।
है अवितथ वारा अतत विडारा,
अमत जुहारा अतिधारा ॥
है प्रवचनसारा अवचन वारा,
अति श्रुतिपारा धर तारा ।
ए अवसि जु करणा निति प्रति चरणा,

कहइ अवरणा मुनि प्यारा ॥४२३॥
है वह अति प्यारा मुनि जु उधारा,
अवसि प्रचारा धरतारा ।
है अब्रह्म धूका सीलनि कूपा,
रत्न प्ररूपा रजहारा ॥

है अपथ विडारा मारग सारा,
अप्रतिहारा हरि प्यारा ।
है अमद सुकरिया शक्ति सुभरिया,
अतिक्षम धरिया व्रतधारा ॥४२४॥

है वत्सल भावा रहित विभावा,
वह जिन रावा हर प्यारा।
प्रभु अनुभव दाया अतिशय काया,
अतिशमि भाया अतिवारा ॥
है अतिहित भारा अतिधृति धारा,
अनुभव वारा अति प्यारा।
हे अति सति पारा असत प्रहारा,
अतिमल टारा अतिसारा ॥४२५॥

है भवजल तारा अतिमल कारा,
अनुभव वारा अति प्यारा।
है अति सुविचारा अशुचि निवारा,
अधरम डारा भव-डारा ॥
है अमत प्रहारा अगति प्रहारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ।
है अभियम धारा सयम पारा,
इद्रिय टारा व्रत गारा ॥४२६॥

है रक्ति प्रहारा भोगत जारा,
अनुभव वारा अति प्यारा।
है अगम अपारा अकरम चारा,
अकरण कारा अगिवारा ॥

है अवरण धारा अमरण कारा,
धर्म अधारा धन धारा ।

है धर्म अकिंचन पाप निकंचन,
दोष न रंचन धृति धारा ॥४२७॥

है अतिछवि वारा अति अधिकारा,
ब्रह्म विहारा अविकारा ।
है विश्व वियारा विश्व अधारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ॥
है अति भवकूला अति रस भूला,
अनुभव मूला अजगारा ।
है अतिशय भूपा अनुभव रूपा,
अति गुणवारा अति प्यारा ॥४२८॥

है अतिघन नामा अति धनधामा,
अति अभिरामा अतिकारा ।
है मुनिमन हारा अति दुखटारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ॥
है अतिहित धारा अहित प्रहारा,
दोऊ टारा जिन प्यारा ।
है देव अरागा वीतसुरागा,
अतिवड भागा जग प्यारा ॥४२९॥

——

सवैया ३१

असि मसि कृषि और वानिज को लेस कोऊ,
नाहि तेरै पुर मैं न शिल्पि पशु पालना ।
पठन न पाठन है शिष्य गुर भेद नांहि
स्वामि और सेवक को भेद न निहालना ॥

तू तो जिन एक रूप दोय रूप भाव तेरौ ।
तेरौ पुर शुद्ध रूप जहा वस कालना ।
मोह नाहि द्रोह नाहि नाहि जु विभाव कोऊ ।
जहा तू विराजै देव सवै भ्रम जालना ॥४३०॥

असि धारी तू जु नाहि, खग्ग नाहि तेरै हाथ
खग्ग धारा सम जिन, मारग प्रकाश तू ।
शस्त्र वस्त्र नाहि तेरै, अस्त्रकौ न नाम कोऊ
दूषन न भूषन, जो भूख को विनाश तू ।
अस्पादिक भेद जे सु जीविका उपाय नाथ
कर्म भूमि, लागत जो आदि ही विभास तू ।
असुधारी प्राणिगण पावैं मोष तोहि जपि
मोक्ष कौ जु दाता एक दीखै स्व विलाश तू ॥४३१॥

अरुण प्रकास होय ताके पहली जु नाथ,
उठि भव्य जीव तेरौ नाम उर मैं धरै ।
मध्यकाल सायकाल अरध निसाजु माहि,
तोही सौं लगाय चित्त काम क्रोध कौ हरै ।
अनडन वावणतू, अनडन तोसौं और,
सुर नर मुनिजन तो ही क्यो जप्यौ करै ।
तूही एक ज्ञान रूप चेतना निधान देव ।
तो ही कौ जु ध्याय साधु वेगि भौ-दधी तरै ॥४३२॥

सोरठा

मेरे टारि जु देव, अनिरक्षा अनिगुप्तमय ।
अकस्मात दै सेव, अमरण अमृत देहु मुझ ॥४३३॥
तू जु अकार स्वरूप, सर्वाक्षर मय देव तू ।
ब्रह्मरूप जग भूप, दौलति करण जु तू सही ॥४३४॥

अस्मिन् भवदधि माहि, रागादिक जे क्षार जल ।
तो विनु दूजो नाहि, अमी देन हारै प्रभु ।।४३५।।

अमी जु अमृत नाम, तू जु अमी और सु नहीं ।
अमी साधवो राम, तोहि त्यागि ओर न जपै ।।४३६।।

अर्थ अमी को एह, विद्यमान कौ नाम है ।।
अमी सुधा हु कहेह, तो सौ नाहि अमी जु को ।।४३७।।

अवग्रह् ईहा और, फुनि अवाय जु धारणा ।
मतिज्ञान के दौर, तीन शतक छत्तीस जे ।।४३८।।

तिनकौ भाषक एक, केवल रूपी देव तू ।
तेरो इह जु विवेक, जड चेतन न्यारे करै ।।४३९।।

तू हि अनुत्सेको जु, उत्सेको गर्व जु सही ।
तू गर्वारि जिनो जु, मानी तोहि न पावही ।।४४०।।

नाम रहित कौ ठीक, कहै अपेत जु ग्र थ मैं ।
तू जु अपेत विलीक, सत्य उपेतो तू सही ।।४४१।।

श्रीपाल चरित्र

रचनाकाल —स० १८२२ फागुण सुदी ११

रचना स्थान —जयपुर (राजस्थान)

अथ श्रीपाल चरित्र भाषा लिख्यते

दोहा

तीर्थङ्कर चोवीस जिन, धर्म राज के ईस।
गुण अनन्त मंडित प्रभु, नमत सक्र सत सीस ।।१।।

सकल विघन हर सर्म कर, सिद्धचक्र अतिसार।
ताकूं वंदु भाव सूं, छोडि जगत भ्रमजाल ।।२।।

चौपई

वंदु त्रिविध गुरु गुण खान, राग रहित ज्ञानी अधिकान।
सप्तम गुण ठाणे मुनि गये, चढि के खिपक श्रेणी सिध भये ।।३।।

श्री जिन कमल थकी धुनि खिरी, गणधर देव प्रगट विसतरी।
तीन जगत कूं अति सुखकार, सारद वंदु भवदधि तार ।।४।।

श्री जिन श्रुत गुरु नमि पाय, सिद्धचक्र नमिहूं हित लाय।
जा परसाद श्रीपाल नरेस, कहूं चरित्र महासुभ भेष ।।५।।

जंबू भरत आरज उर आन, मगध देस स्वरथल सम जान।
राजग्रही तामे पुर सही, श्रेणीक भूप सम्यकधर कही ।।६।।

नारि चेलणा ता घर सती, सम्यक आदि गुणाकर जुती।
ताके अभयकुंवर सुत नाम, सो अतिरूप बुद्धि को धाम ।।७।।

ऐसे राज करे नरराय, इक दिन सभा ठये सुख पाय।
एते आयो इक वनपाल, करी वीनती अति गुणमाल ।।८।।

भो नृप भाग तिहारे सही, वर्धमान जिन आये कही।
समोसरण विपुलाचल आय, तिष्ठे हरि सुर जै जै लाय ।।९।।

इम सुणि राय महासुख लेय, सिंघपीठ ते उतर्‌यो जाय।
सात पैंड ता ओडी जाय, अपनो सीस नमायो राय ।।१०।।

पट भूषरण माली कू दीये, अष्ट द्रव्य अपने कर लीये ।
पुर मे आनन्द भेरी दिवाय, नगर लोक अरु बधु मिलवाय ।।११।।

बहु सबद उछाह जय लाय, पहुचे समोसरन मे आय ।
तीन प्रदख्यरगा दे नर ईस, गये माहि निज नायो सीस ।।१२।।

अष्ट दरब ते पूजे राय, फिर बहु भक्ति करी अधिकाय ।
गोतमादि गराधर कू नयो, मनख थान फिर बैठत भयो ।।१३।।

तब जिनवर की वारगी खिरी, दिव्य ध्वनि अतिसै करि भरी ।
पुन्य पाप मुनि श्रावक धर्म, तत्वादिक के भाखे मर्म ।।१४।।

देव मनख तिर्यंच बहु जान, देस देस नर की भी वानि ।
दिव्य ध्वनि अतिसै करि खिरी, भिन भिन जीव समझि चित धरी ।।१५।।

जो ससै ता जीव उर होय, ताको ज्वाव परनमे सोय ।
अधभुत रचना जिन की वानि, श्रेणिक देखि हरष अति मानि ।।१६।।

फिरि श्रेरिएक जिनकू सीस नाय, ऐसे विनती करी सुभाय ।
सीधचक्र पूजा करि सोय, को फल किन भवि पायो जोय ।।१७।।

ताकी कथा सुनन को चाव, भाखो देव दया रस भाव ।
तब जिन ध्वनि विन अक्षर खिरी, अर्थ गभीर सकल रस भरी ।।१८।।

सुरिण गोतम गराधर मुनि ईस, भाखे कथन नवो निज सीस ।
उर थिर आन निसुनो सब कथा, भाखत गरणी भई विधि यथा ।।१९।।

जबू दीप नाभि सम मेर, ताकी दक्षरण दिसा भ्रतहेर ।
तामें षट खड पच अनार्ज, आरज एक तहा सुख कार्ज ।।२०।।

मालव देस उजेरणी ग्राम, तहा जिनवर के अति सुभ धाम ।
भोजन तहा मुनी नित करे, धर्म ध्यान जुत जन अनुसरे ।।२१।।

सब जिन भक्त वारगी जिन भने, खान पान धन आदिक घने ।
परस परे सब ही जिन हिते, पुर कटूब सुखी गुरग किते ।।२२।।

पुर मे दीन नरा नहि कोय, सब ही जीव पुन्याधिप सोय ।
सब जन कोमल मज्जन भाय, मानो भोग भूमि जन आय ।।२३।।

इत्यादिक परजा सब सुखी, को विध कोय जीव नही दुखी।
ऐसो नग्र उजेणी धाम, प्रजापाल राय को नाम ।।२४।।
नारी सौभागसुन्दरि जान, कन्या दोय भई गुणखान।
स्वरसुन्दरि जेठी को नाम, मेणासुन्दरी गुण की धाम ।।२५।।
रूप जेसो सुर कन्या एव, साहस बुधी धर्म नित सेव।
दोऊ सुता बु ··सुखकार, तब भणनें कू मेली सार ।।२६।।
जोसी सिवसर्म इक द्रुज जानि, कन्या भणे वडी इस थान।
स्व प्रतिवेद भणी वहु सही, मिथ्या आगम पढि मद भई ।।२७।।
मेणासुदरि छोटी सुता, महा वडभागीरु गुणजुता ।
येक दिन जिन वदन कू गई, त्रिभवन तिलक चैताले सई ।।२८।।
तहा जिन पूजे हरप वढाय, फिरि वदे जिन धर्म मुनिराय।
नय निज सीस ठई मुनि पास, धर्म सुण्यो सब सुख की रास ।।२९।।
लये अणूव्रत कन्या सही, फिरि मुनि ते इम वीनती ठई।
भौ प्रभु धर्म जिनेस्वर सार, मोहि पढावो सुख करतार ।।३०।।
मुनि ढिग कन्या पढे सुभाय, जिन मन रहसि जतीवत वाय।
प्रथमानु आदिक चव जोग, कन्या भणी महा सुख भोग ।।३१।।
धर्म अधर्म रूप लखि लियो, जान्यो तत्व भेद जिन चयो।
देव धर्म गुरु दिढता लाय, सम्यक् जुत अणुव्रत धराय ।।३२।।
या जग सग उच्च ते सही, क्या क्या गुण उपजे नही कही।
नीच सगतें दूषण कोय, कोन कोन उपजे नही सोय ।।३३।।
या विधि कन्या दोऊ सार, नाना कला पढी सुखकार।
इक दिन बडी सुता कू सही, वछित वर जाचो नृप कही ।।३४।।
कन्या तब भाखो सुनि तात, अहिछत नग्र राय सुभ गात।
वैरदामन नाम है सही तासूं व्याह करू इम कही ।।३५।।
तब राजा बहु ठानि उछाह, कियो बडी कन्या को ब्याह।
मेणासुदरी इक दिन सही, पूजे जिन गदोदक लही ।।३६।।

तात पास लाई तब सुता, गधोदक सिर लायो पिता।
धारी सनेह सुता सु कही, मागो वर मनवंछित कही ॥३७॥
तब यह कन्या सील की खानि, तात थकी इम वचन जु ठानि।
अहो तात गारी किम देय, मन वंछित वर वेस्या लेय ॥३८॥
अथवा नारि कुसीली होय, सो वंछित वर मागे जोय।
व्रत शील कुल ऊंची नार, सो वर कबहू न जाचे धार ॥३९॥
मात पिता ताकू परणाय, सोही वर यह नीति कहाय।
पीछे सुभ अरु असुभ सु जोय, कर्म उदैमाहै सो होय ॥४०॥
सुख दुख होय भाग ते सही, ताकू मेट सके नही कोइ।
ताते पिता भला तुम होय, ताही कू परणावो जोय ॥४१॥
तात वचन सुन मन कोपियो, मेरो वचन सुता खंडियो।
थाप्यो कर्म आपनो जानि, सो अब देहु महा दुख थान ॥४२॥
महानिद कोढी धनहीन, जानि दलिद्री सुरती दीन।
ऐसो वर लखि व्याहू सही, राखी मन काहू नहि कही ॥४३॥
इक दिन राय गयो वन थान, क्रीडा करत फिरत हित मान।
ताही वन श्रीपाल नरेस, आ तिवमे पलटचो तन भेष ॥४४॥
महा कोढ तीके तन माहि, लार सात सै सेवक थाहि।
सोभी सर्व कोढ करि सही, वास दुर्गंध धार तन कही ॥४५॥
छत्र चमर सिंघासण लार, राज त्रजु ज वन्यो सब सार।
ये तन वास दुरगध अपार (महान), फैल रही सब वन के थान ॥४६॥
ऐसे श्रीपाल लखे राय, प्रजापाल जु हरष उपाय।
मंत्रिन सू राजा इम कही, यह मैणासुन्दरि वर सही ॥४७॥
याकू राखो जागा बनाय, तब मंत्री वहु मनै कराय।
राय न मानी काहू बात, कीनो हठ मूरख हरषात ॥४८॥
राय हुकम तो वन मे जानि, जागा वणाई लखि सुभ थानि।
राय जाय कन्या सू कही, तो वर कोढी आन्यो सही ॥४९॥

कन्या कही सुनो मो पिता, सुभ अरु असुभ कर्म ते हुता।
जो जो सुख होनो सो होय, ताकू मेट सकै नहि कोय ॥५०॥

ऐसे धीर वीर वचन दियो, सव जन सुनि के अचरज लयो।
सव जन कन्या की थुति करे, कन्या धन्य धन्य सव उचरे ॥५१॥

कोढी पति पायो है सही, तो भी मन चिंता न लही
अंतेपुर सव ही नर नारि, हा हा मुख ते वचन उचारि ॥५२॥

सव मिलि विनती करवाहि, भो नृप कोढी कू न विवाहि।
मैणासुन्दरि रूप जिहाज, कोढी कू न देहि महाराज ॥५३॥

राय हठी मानी नहि कोय, मंत्री फिर वचन भाखी सोय।
कोढी कू न कन्या दे राय, तू बुधिवान देखि मन लाय ॥५४॥

मूरख राय तबै इम कही, भो मंत्री यह नृप है सही।
छत्र चमर सिंघासन जोय, राज चहन देखत है सोय ॥५५॥

यह वर जोग्या सुता कू सही, मैं परणाऊ निस्चै कही।
वरज्यो सति कछु समझ्यो नाहि, इम कहि सब के वचन नसाय ॥५६॥

आय विवाह तणी विधि करी, कन्या रूप दसा अति घरी।
वर जुत आय पिता के पास, नमस्कार कीनो गुण रास ॥५७॥

तब नृप मैणासुन्दरी जोय, रूप थकी रति सी अब लोय।
देख्यो वर कोढि तनहीन, मन पछतावो पति लखि कीन ॥५८॥

आप निंद्यो आपन कु सही, मैं मति हीण यहु कहा वही।
क्रोध थकी मन नाहि विचार, कोढी कहा कहा वर नार ॥५९॥

जानि पूछि मैं कूप मझार, डारि दई कन्या गुण सार।
मो सो हठी नही सठ कोय, फिरि मन राजा निश्चै जोय ॥६०॥

कन्या कही सत्य सो बात, कर्म करे सो होय विख्यात।
मै तो निमत मात्र करतार, कारज होय कर्म अनुसार ॥६१॥

पुन्य पाप मो जीव के होय, ताकूं मेट सकै नहि कोय।
यह अब मो मन निश्चै भयो, इम लखि राय सोच तजि दियो ॥६२॥

प्रजापाल धारि मन तोप, निज उर को छाड्यो सब दोष ।
वनथलि महल उतग बनाय, मडित कनक रतन जडवाय ।।६३।।
तहा रहै श्रीपाल नरेस, मैणासुन्दरि नारि सुभेस ।
दासी दास नगर बहु दये, ढोल्यो महल और घर ढये ।।६४।।
तिन मे सब कोढी थिति करे, पूरव कर्म किये फल भरे ।
अब वह मेणासुन्दरि नारि, भक्ति करे पति की चित धारि ।।६५।।

अतिम पाठ—

मैणा सुन्दरि अर्जिका, तजी समाधि ले काय ।
छेदि नारि के लिंग कूं, सुक्र स्वर्ग हरिथाय ।।७४५।।
तीन ज्ञान राजत सदा, महा रिद्ध जुत थान ।
आयु पर्यंत सुख भोगि के, चय नर ह्वै सिव जान ।।७४६।।

चोपई

और अर्जिका थी बहु सोय, जे सब स्वर्गथान मे जोय ।
कोउ छेदि लिंग स्वर जान, देवी कू ष उपजी आन ।।७४७।।
प्रथम स्वर्ग षोडषलो सही, देवी देव अर्जिका भई ।
या विधि श्रीपाल नर राय, धर्म प्रभाव थकी सुखपाय ।।७४८।।
सुर नर गति सुख भोगि अपार, फेरि सकल दुख कीने छारि ।
सुर नर खग पूजित पद होय, सिद्ध सथान पहूँचे सोय ।।७४९।।

सोरठा

ऐसो जानि हित मान, भानि प्रमाद दसा सही ।
अष्टानिक विधि जानि, शक्ति सधा करनो सही ।।७५०।।
जो सम दृष्टी होय नदीश्वर व्रत कू करै ।
सो सुरनर खग होय, शिव थानक सुख सू लहै ।।७५१।।

दोहा

यह चरित्र श्रीपाल को, पूरन भयो सुजान ।
याकू लखि धरम उर विषै, निश दिन राखि सचान ।।७५२।।

धर्म सकल सुखदाय है, ताते भवि उर आन ।
पाप बुद्धि दुखदा सही, छाडन की बुद्धि ठान ।।७५३।।

सवत अष्टादश शत जान, ऊपर बीस दोय फिर आन ।
फागुरा सुदि इग्यार निस माहि, कियो समापत उर हुलसाहि ।।७५४।।

दोहा

सोमसेन अनुसार ले दौलतराम सुखदाय ।
यह भाषा पूरण करी सकल सघ सुखदाय ।।७५५।।

इति श्रीपाल चरित्र सपूर्ण । लिखता पडित पन्नालालजी की परतभनग्र परतापगढ मध्ये । धान मढी मे श्री ऋषभदेवजी के मदिर श्री रिखभनाथ चैताले श्रीरस्तु कल्याणमस्तु सभवतु । वार दीतवार ने संवत १६२१ पोस सुदी पचमी ।।

पद्म-पुराण-भाषा

रचनाकाल —सं० १८२३ माघ सुदी ६

रचना स्थान —जयपुर (राजस्थान)

मगलाचरण —

दोहा

चिदानद चैतन्य के, गुण अनन्त उरधार।
भाषा पद्मपुराण की, भाषूं श्रुति अनुसार ॥१॥

पच परमपद पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर वानि।
नमि जिन प्रतिमा जिनभवन, जिन मारग उर आनि ॥२॥

ऋषभ अजित सभव प्रणमि, नमि अभिनन्दनदेव।
सुमति जु पद्म सुपार्श्व नमि, करि चन्दाप्रभु सेव ॥३॥

पुष्पदत शीतल प्रणमि, श्रीश्रेयास को ध्याय।
वासुपूज्य विमलेश नमि, नमि अनतके पाय ॥४॥

धर्म शाति जिन कुन्थु नमि, और मल्लि यश गाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि नमि, नमि पारसके पाय ॥५॥

वर्द्धमान वरवीर नमि, सुरगुरुवर मुनि वद।
सकल जिनद मुनिद नमि, जैनधम अभिनन्द ॥६॥

निर्वाणादि अतीत जिन, नमो नाथ चौवीस।
महापद्म परमुख प्रभू, चौवीसो जगदीश ॥७॥

होंगे तिनको वदिकर, द्वादशाग उरलाय।
सीमधर आदिक नमूं, दश दूने जिनराय ॥८॥

विरहमान भगवान ये, क्षेत्र विदेह मझारि।
पूजें जिनको सुरपती, नागपती निरधार ॥९॥

द्वीप अढाईके विषै, भये जिनेन्द्र अनत।
होंगे केवलज्ञानमय, नाथ अनन्तानन्त ॥१०॥

सवको वदन कर सदा, गणधर मुनिवर धाय।
केवलि श्रुतिकेवलि नमू, आचारज उवझाय ॥११॥

वदू शुद्ध स्वभावको, धर सिद्धनको ध्यान।
सतनको परणामकर, नमि दृग व्रत निज ज्ञान ।।१३।।

शिवपुर दायक सुगुरु नमि, सिद्धलोक यश गाय ।
केवलदर्शन ज्ञानको, पूजू मन वच काय ।।१३।।

यथाख्यात चारित्र अरु, क्षपकश्रेणि गुण ध्याय ।
धर्म शुक्ल निज ध्यान को, वदू भाव लगाय ।।१४।।

उपशम वेदक क्षायिका, सम्यग्दर्शन सार।
कर वदन समभावको, पूजू पचाचार ।।१५।।

मूलोत्तर गुण मुनिनके, पच महाव्रत आदि ।
पच समिति और गुप्तत्रय, ये शिवमूल अनादि ।।१६।।

अनित्य आदिक भावना, सेऊ चित्त लगाय ।
अध्यातम आगम नमू, शाति भाव उरलाय ।।१७।।

अनुप्रेक्षा द्वादश महा, चितवे श्रीजिनराय ।
तिनकी स्तुति करि भावसो, षोडशकारण ध्याय ।।१८।।

दशलक्षणमय धर्मकी, धर सरधा मनमाहि ।
जीवदया सत शील तप, जिनकर पाप नसाहि ।।१९।।

तीर्थंकर भगवान के, पूजू पच कल्याण ।
और केवलनिको नमू, केवल अरु निर्वाण ।।२०।।

श्रीजिन तीरथ क्षेत्र नमि, प्रणमि उभय विधि धर्म ।
युतिकर चहुँ विधि सघकी, तजकर मिथ्या भर्म ।।२१।।

वदू गौतम स्वामिके, चरण कमल सुखदाय ।
वदू धर्म मुनीन्द्रको, जम्बूकेवलि ध्याय ।।२२।।

भद्रबाहुको कर प्रणमि, भद्रभाव उरलाय ।
वदि समाधि सुतत्त्वको, ज्ञानतने गुण गाय ।।२३।।

ग्रथो का स्मरण

महा धवल अरु जयधवल, तथा धवल जिनग्रन्थ।
वदू तन मन वचन कर, जे शिवपुरके पथ ॥२४॥
षट्पाहुड नाटक जु त्रय, तत्वारथ सूत्रादि।
तिनको वदू भाव कर, हरै दोष रागादि ॥२५॥
गोमटसार अगाधि श्रुत, लब्धिसार जगसार।
क्षपणसार भवतार है, योगसार रसधार ॥२६॥
ज्ञानार्णव है ज्ञानमय, नमू ध्यान का मूल।
पद्मनदि पच्चीसिका, करे कर्म उन्मूल ॥२७॥
यत्नाचार विचार नमि, नमू श्रावकाचार।
द्रव्यसग्रह नयचक्र फुनि, नमू शाति रसधार ॥२८॥
आदिपुराणादिक सबै, जैन पुराण बखान।
वदू मन वच काय कर, दायक पद निर्वाण ॥२८॥
तत्वसार आराधना-, सार महारस धार।
परमातम परकाशको, पूजू वारम्वार ॥३०॥

पूर्वाचार्यों का स्मरण —

वदू विशाखाचार्यवर, अनुभव के गुण गाय।
कुन्दकुन्द पद धोक दे, कहू कथा सुखदाय ॥३१॥
कुमुदचद्र अकलक नमि, नेमिचद्र गुण ध्याय।
पात्रकेशरी को प्रणमि, समतभद्र यशगाय ॥३१॥
अमृतचद्र यतिचद्र को, उमास्वामि को वद।
पूज्यपाद को कर प्रणमि, पूजादिक अभिनद ॥३३॥
ब्रह्मचर्यव्रत वदिके, दानादिक उर लाय।
श्रीयोगीन्द्र मुनीन्द्रको, वदू मन वच काय ॥३४॥
वदू मुनि शुभचंद्रको, देवसेनको पूज।
करि वदन जिनसेन को, जिनके सम नहि दूज ॥३५॥

पद्मपुराण निधान को, हाथ जोडि सिरनाय।
ताकी भाषा वचनिका, भाषू सब सुखदाय ।।३६।।

पद्म नाम वलभद्रका, रामचन्द्र वलभद्र।
भये आठवे धार नर, धारक श्री जिनमुद्र ।।३७।।

ता पीछे मुनिसुव्रतके, प्रगटे अति गुणधाम।
सुरनरवदित धर्ममय, दशरथ के सुत राम ।।३८।।

शिवगामी नामी महा, ज्ञानी करुणावत।
न्यायवत वलवत अति, कर्म हरण जयवत ।।३९।।

जिनके लक्ष्मण वीर हरि, महाबली गुणवत।
भ्रातभक्त अनुरक्त अति, जैनधर्म यशवत ।।४०।।

चन्द्र सूर्य से वीर ये, हरै सदा परपीर।
कथा तिनोकी शुभ महा, भाषी गौतम धीर ।।४१।।

सुनी सबै श्रेणिक नृपति, धर सरधा मन माहिं।
सो भाषी रविषेणने, यामे सशय नाहि ।।४२।।

महासती सीता शुभा, रामचद्र की नारि।
भरत शत्रुघ्न अनुज है, यही बात उर धारि ।।४३।।

तद्भव शिवगामी भरत, अरु लव-अकुश पूत।
मुक्त भये मुनिवरत धरि, नमै तिने पुरहुत ।।४४।।
रामचन्द्रको करि प्रणमि, नमि रविषेण ऋषीश।
रामकथा भापू यथा, नमि जिन श्रुति मुनिईश ।।४५।।

[अजना और पवनजय कुमार का मिलाप]

अथानतर[1] पवनजयकुमार ने अजनासुन्दरी को परण कर ऐसी तजी जो कवहू वात न वूझै, सो वह सुन्दरी पति के असभाषणतै अर कृपादृष्टि कर न

१ षोडस पर्व।

देखवेतै परम दु ख करती भई। रात्रि मे भी निद्रा न लेय, निरतर अश्रुपात ही झरा करै, शरीर मलिन होय गया, पतिसो अति स्नेह, धनी का नाम अति सुहावै, पवन जावै सो भी अति प्रिय लागै, पति का रूप तो विवाह की वेदी मे अवलोकन किया हुता ताका मन मे ध्यान करवो करै अर निश्चल लोचन सर्व चेष्टा रहित बैठी रहै। अतरग ध्यान में पति का रूप निरूपण करि वाह्य भी दर्शन किया चाहै सो न होय। तदि शोककरि बैठी रहै, चित्रपटविषै पति का चित्राम् लिखने का उद्यम करै, तदि हाथ काप करि कलम गिर पड़ै, दुर्बल होय गया है समस्त अग जाका, ढीले होय कर गिर पडे हैं आभूषण जाके, दीर्घ उष्ण जे उच्छ्वासनिकरि मुरझाय गए हैं कपोल जाके, अग मे वस्त्र के भी भार करि खेद को धरती सती, अपने अशुभ कर्मो को निदती, माता-पितानि को वारवार याद करती सती, शून्य भया है हृदय जाका, दु ख कर क्षीण शरीर, मूर्च्छा आय जाय, चेष्टा रहित होय जाय, अश्रुपात करि रुक गया है कठ जाका, दु ख कर निकसै हैं वचन जाके, विह्वल भई सती दैव कहिए पूर्वोपार्जित कर्म ताहि उलाहना देय चन्द्रमा की किरण हू करि जाको अति दाह उपजै अर मदिर विषै गमन करती मूर्च्छा खाय गिर पड़ै अर विकल्प की मारी ऐसा विचार करि अपने मन ही मे पति सो वतलावै कि हे नाथ! तिहारे मनोज्ञ अग मेरे हृदय मे निरतर तिष्ठै हैं, मोहि आताप क्यो करै हैं अर मैं आपका कछु अपराध नही किया, नि कारण मेरे पर कोप क्यो करो, अव प्रसन्न होवो, मैं तिहारी भक्त हूँ, मेरे चित्त के विषाद को हरो। जैसैं अतरग दर्शन देवो हो, तैसैं वहिरग देवो। यह मैं हाथ जोड विनती करू हूँ। जैसैं सूर्य विना दिन की शोभा नाही अर चन्द्रमा विना रात्रि की शोभा नाही अर दया क्षमा शील सतोषादि गुण विना विद्या शोभै नाही, तैसे तिहारी कृपा विना मेरी शोभा नाही, या भाति चित्तविषै वसै जो पतिताहि उलाहना देय। अर बडे मोतियो समान नेत्रनितै आसुवनि की बू द झरै, महा कोमल सेज पर अनेक सामग्री सखीजन करै परन्तु याहि कछु न सुहावै, चक्रारूढ समान मन मे उपज्या है वियोग मे भ्रम जाको, स्नानादि संस्कार रहित कभी भी केश समारै गू थै नाही, केश भी रूखे पड गये, सर्व क्रिया मे जड मानो पृथ्वी का ही रूप होय रही है। अर निरतर आँसुवनि के प्रवाहतै मानो जलरूप ही होय रही है। हृदय के दाह के योगतैं मानो अग्निरूप ही होय रही है। अर निश्चलचित्त के योगतैं मानो वायुरूप ही होय रही है अर शून्यता के योगतै मानो गगनरूप ही होय रही है। मोह के योगतै आच्छादित होय रह्या है ज्ञान जाका, भूमि पर डार दिए है सव अग जानै, वैठ न सकै अर तिष्ठै तो उठ न सकै अर उठै तो देही को थाम न सकै सो सखीजन का हाथ पकडि विहार करै सो पग डिग

जाय अर चतुर जे सखीजन तिनसो बोलने की इच्छा करै परतु बोल न सकै अर हसनी कबूतरी आदि गृह पक्षी तिनसो क्रीडा किया चाहै पर कर न सकै। यह विचारी सबो से न्यारी बैठी रहै, पति मे लग रहा है मन अर नेत्र जाका, नि कारण पतितै अपमान पाया सो एक दिन एक वरस बराबर जाय। यह याकी अवस्था देखि सकल परिवार व्याकुल भया सब ही चितवते भए कि ऐता दु ख याहि विना कारण क्यो भया है। यह कोई पूर्वोपार्जित पाप कर्म का उदय है। पिछले जन्म मे यानै काहूके सुख विषै अतराय किया है, सो याकै भी सुख का अतराय भया। वायुकुमार तो निमित्तमात्र है। यह बरी भोरी निर्दोष याहि परणाकरि क्यो तजी, ऐसी दुलहन सहित देवनि समान भोग क्यो न करै। यानै पिता के घर कभी रचमात्र हू दु ख न देख्या सो यह कर्मानुभव कर दु ख के भारको प्राप्त भई। याकी सखीजन विचारै हैं कि क्या उपाय करैं, हम भाग्यरहित हमारे यत्न-साध्य यह कार्य नाही, कोई अशुभकर्म की चाल है, अब ऐसा दिन कब होयगा, वह शुभ मुहूर्त शुभ वेला कब होयगी जो वह प्रीतम या प्रिया को समीप लेय बैठेगा अर कृपा दृष्टि कर देखेगा, मिष्ट वचन बोलेगा, यह सब के अभिलाषा लग रही है।

अथानतर राजा वरुण ताकै रावणसो विरोध पडया, वरुण महा गर्ववान रावण की सेवा न करै, सो रावण ने दूत भेज्या। दूत जाय वरुगसो कहता भया। दूत धनी की शक्ति कर महाकाति को धरै है। अहो विद्याधराधिपते वरुण! सर्व का स्वामी जो रावण तानै यह आज्ञा करी है जो आप मोहि प्रणाम करो अथवा युद्ध की तैयारी करो। तब वरुण ने हँसकर कही, हो दूत! कौन है रावण, कहाँ रहै है जो मोहि दबावै है। सो मैं इद्र नाही हूँ जो वृथा गर्वित लोकनिंद्य हुता, मैं वैश्रवण नाही, यम नाही, मैं सहस्ररश्मि नाही, मैं मरुत नाही रावण के देवाधिष्ठित रत्नोकरि महा गर्व उपज्या है, वाकी सामर्थ्य है तो आवो, मैं वाहि गर्वरहित करूगा अर तेरी मृत्यु नजीक है जो हमसो ऐसी वात कहै है। तब दूत जायकर रावणसो सर्व वृतात कहता भया। रावण ने कोप कर समुद्र-तुल्य सेना सहित जाय वरुण का नगर घेर्या अर यह प्रतिज्ञा करी जो मैं याहि देवाधिष्ठित रत्न विना ही वश करूगा, मारू अथवा बाधू।

तब वरुण के पुत्र राजीव पुण्डरीकादिक क्रोधायमान होय रावण के कटकपर आए। रावणकी सेना के अर इनके बडा युद्ध भया, परस्पर शस्त्रनि के समूह छेद डारे! हाथी हाथियो से, घोडे घोडो से, भट

भटोसे महायुद्ध करते भए। वडे-वडे सामत डमि टसिकरि लाल नेत्र है जिनके वे महाभयानक शब्द करते भए। वडी देर तक सग्राम भया। सो वरुण की सेना रावरण की सेनासौं कछुइक पीछे हटी। तव अपनी सेना को हटी देख वरुण राक्षसनिकी सेनापर आप चल करि आया, कालग्नि-समान भयानक। तव रावण दुर्निवार वरुण को रणभूमि विषै सन्मुख आवता देखकर आप युद्ध करने को उद्यमी भया। वरुणकै अर रावणकै आपस विषै युद्ध होने लगा अर वरुणके पुत्र खरदूषणसो युद्ध करते भए। कैसे हैं वरुणके पुत्र ? महाभटोके प्रलय करनहारे अर अनेक माते हाथियो के कु भस्थल विदारनहारे। सो रावण, क्रोधकरि दीप्त है मन जाका, महाक्रूर जो भृकुटि तिनकरि भयानक है मुख जाका, कुटिल हैं केश जाके, जव लगि धनुष के वाण तान वरुणपर चलावै तव लग वरुणके पुत्रो ने रावण के बहनेऊ खरदूषण को पकड लिया।

तव रावण मन मे विचारी जो हम वरुणसो युद्ध करै अर खरदूषण का मरण होय तो उचित नाही, तातै सग्राम मनै किया। जे बुद्धिमान हैं ते मत्रविषै चूकै नाही। तव मत्रियोंने मत्रकर सव देशोके राजा बुलाए। शीघ्रगामी पुरुष भेजे। सवनिको लिखा, वडी सेना-सहित शीघ्र ही आवो। अर राजा प्रह्लाद पर भी पत्र लेय मनुष्य आया सो राजा प्रह्लाद ने स्वामीकी भक्तिकरि रावणके सेवकनिका वहुत सन्मान किया अर उठकर वहुत आदरसो पत्र माथे चढाया अर वाच्या। सो पत्रविषै या भाति लिखा था कि पातालपुर के समीप कल्याण रूप स्थानक मैं तिष्ठता महाक्षेमरूप विद्याधरोके अधिपतियोका पति सुमालीका पुत्र जो रत्नश्रवा, ताका पुत्र राक्षसवशरूप आकाशविषै चद्रमा ऐसा जो रावण सो आदित्यनगर के राजा प्रह्लादको आज्ञा करै है। कैसा है प्रह्लाद ? कल्याणरूप है, न्यायका वेत्ता है, देश-काल-विधान का ज्ञायक है, हमारा वहुत वल्लभ है। प्रथम तो तिहारे शरीरकी कुशल पूछै है, वहुरि यह समाचार है कि हम को सर्व खेचर भूचर प्रणाम करै हैं, हाथोकी अगुली तिनके नखकी ज्योतिकर ज्योतिरूप किए हैं निज शिरके केश जिनने, अर एक अति दुर्बुद्धि वरुण पाताल नगरमे निवास करै है सो आज्ञातैं परान्मुख होय लडनेको उद्यमी भया है। हृदयको व्यथाकारी विद्याधरो के समूहकरि युक्त है। समुद्र के मध्य द्वीपको पायकर वह दुरात्मा गर्वको प्राप्त भया है, सो हम ताके ऊपर चढकर आए हैं, बडा युद्ध भया। वरुण के पुत्रो ने खरदूषण को जीवता पकड्या है

सो मन्त्रियो ने मन्त्र करि खरदूषणके मरणकी शकातै युद्ध रोक दिया, तातै खरदूषण को छुडावना अर वरुण को जीतना सो तुम अवश्य शीघ्र आइयो, ढील मत करियो। तुम सरिखे पुरुष कर्तव्यमे न चूकै, अब सब विचार तिहारे आयवे पर है। यद्यपि सूर्य तेजके पुज है तथापि अरुण सरिखा सारथी चाहिए। तब राजा प्रह्लाद पत्रके समाचार जानि मन्त्रियोसो मन्त्र कर रावणके समीप चलनेको उद्यमी भया। तब प्रह्लाद को चलता सुनकर पवनजयकुमार ने हाथ जोडि गोडनितै धरती स्पर्श नमस्कार विनती करी। हे नाथ! मुझ पुत्रके होते सते तुमको गमनयुक्त नाही, पिता जो पुत्र को पालै है सो पुत्रका यही धर्म है कि पिताकी सेवा करै तो जानिए पुत्र भया ही नाही। तातै आप कूच न करै, मोहि आज्ञा करै। तब पिता कहते भये, हे पुत्र! तुम कुमार हो, अब तक तुमने कोई युद्ध देख्या नाही, तातै तुम यहा रहो, मैं जाऊ गा। तब पवनजयकुमार कनकाचल के तट समान जो वक्षस्थल ताहि ऊचाकर तेज के धरणहारे वचन कहता भया—हे तात! मेरी शक्ति का लक्षण तुमने देख्या नाही, जगत के दाहवेमे अग्नि के स्फुलिंगे का क्या वीर्य परखना। तुम्हारी आज्ञारूप आशिषाकर पवित्र भया है मस्तक मेरा, ऐसा जो मैं इन्द्रको भी जीतनेको समर्थ हू, यामे सदेह नाही। ऐसा कहकर पिताको नमस्कार कर महा हर्ष सयुक्त उठकरि स्नान भोजनादि शरीरकी क्रिया करी अर आदरसहित जे कुल मे वृद्ध हैं तिन्होने असीस दीना। भाव सहित अरहत सिद्ध को नमस्कारकरि परम काति को धरता सता महा मगलरूप पितासो विदा होवेको आया सो पिताने अर माताने मगल के भयतै आसू न काढे, आशीर्वाद दिया। हे पुत्र! तेरी विजय होय, छाती सो लगाय मस्तक चूम्या।

पवनजयकुमार श्री भगवान का ध्यान धर माता पिता को प्रणाम करि जे परिवार के लोग पायनि पडे तिनको वहुत धैर्य बधाय सबसो अति स्नेह कर विदा भए। पहले अपना दाहिना पाव आगै धर चले। फुरकै है दाहिनी भुजा जिनकी अर पूर्ण कलश जिनके मुख पर लाल पल्लव तिनपर प्रथम ही दृष्टि पडी। अर थभसो लगी हुई द्वारै खडी जो अजना सुन्दरी आसुवनिकरि भीज रहे हैं नेत्र जाके, ताबूलादिरहित धूसरे होय रहे है अधर जाके, मानो थभाविषै उकेरी पुतली ही है। कुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पडी सो क्षणमात्रविषै दृष्टि सकोच कोपकरि बोले। हे दुरीक्षणे कहिए दुखकारी है दर्शन जाका, या स्थानकतै जावो, तेरी दृष्टि उल्कापात समान है, सो मैं सहार न सकू। अहो वडे कुलकी पुत्री कुलवती! तिनमे यह ढीठपणा कि मनै किए भी निर्लज्ज ऊभी रहे। ये पतिके अतिक्रूर वचन सुने तौ भी याहि अति प्रिय लागै जैसै

घने दिन के तिसाए पपैये को मेघ की बूंद प्यारी लागै, सो पति के वचन मनकरि अमृत समान पीवती भई, हाथ जोडि चरणारविंद की ओर दृष्टि धरि गदगद वाणीकर डिगते डिगते वचन नीठि नीठि कहती भई—हे नाथ! जब तुम यहां विराजते हुते, तबहूँ मैं वियोगिनी ही हुती, परन्तु आप निकट है सो आशाकरि प्राण कष्टतैं टिक रहे हैं, अब आप दूर पधारैं हैं मैं कैसे जीऊंगी। मैं तिहारे वचनरूप अमृत के आस्वादनेकी अति आतुर, तुम परदेश को गमन करते समय स्नेहतैं दयालु चित्त होयकर वस्ती के पशु पक्षियों को भी दिलासा करी, मनुष्यों की तो कहां बात? सबको अमृत समान वचन कहे, मेरा चित्त तिहारे चरणारविंद विषै है, मैं तिहारी अप्राप्तिकर अति दुखी, औरनिकी श्रीमुखतैं एती दिलासा करी, मेरी औरनिके मुखतैंही दिलासा कराई होती। जब मोहि आपने तजी तब जगत में शरण नाहीं, मरण ही है। तब कुमार ने मुख सकोचकर कोपसों कही, मर। तब यह सती खेद-खिन्न होय धरती पर गिर पडी। पवनकुमार यासों कुमयाही विषै चाले। बडी ऋद्धि सहित हाथी पर असवार होय सामंतो सहित पयान किया। पहले ही दिनविषै मानसरोवर जाय डेरे भए, पुष्ट हैं वाहन जिनके, सो विद्याधरिनी की सेना देवों की सेना समान आकाशतैं उतरती सती अति शोभायमान भासती भई। कैसी है सेना? नाना प्रकार के जे वाहन अर शस्त्र तेई हैं आभूषण जाके। अपने २ वाहनों के यथायोग्य यत्न कराए, स्नान कराए, खानपान का यत्न कराया।

अथानंतर विद्या के प्रभावतैं मनोहर एक बहुखणा महल बनाया, चौडा और ऊंचा सो आप मित्र सहित महल ऊपर विराजे? संग्राम का उपज्या है अति हर्ष जिनके, झरोखनि की जाली के छिद्रकरि सरोवर के तट के वृक्षनिको देखते हुते, शीतल मंद सुगंध पवनकरि वृक्ष मंद मंद हालते हुते अर सरोवरविषै लहर उठती हुती, सरोवर के जीव कछुवा, मीन, मगर अर अनेक प्रकार के जलचर गर्व के धरणहारे तिनकी भुजानिकरि किलोल होय रही हैं। उज्जवल स्फटिकमणि समान निर्मल जल है जामे नाना प्रकार के कमल फूल रहे है, हंस, कारंड, क्रौंच, सारस इत्यादि पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं जिनके सुनने तैं मन अर कर्ण हर्ष पावैं अर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। तहां एक चकवी, चकवे विना अकेली वियोगरूप अग्नितैं तप्तायमान अति आकुल, नाना प्रकार चेष्टा की करणहारी, अस्ताचल की ओर सूर्य गया सो वा तरफ लग रहे हैं नेत्र जाके अर कमलिनी के पत्रनिके छिद्रो विषै बारबार देखै है, पाखनिकौ हलावती उठै है अर पडै है।

अर मृणाल कहिए कमल की नाल का तार ताका स्वाद विष-समान देखै है, अपना प्रतिबिम्ब जलविषै देखकरि जानै है कि यह मेरा प्रीतम है,

सो ताहि बुलावै है सो प्रतिबिंब कहा आवै। तदि अप्राप्तितै परम शोक को प्राप्त भई है। कटक आय उतर्या है सो नाना देशनिके मनुष्यो के शब्द अर हाथी घोडा आदि नाना प्रकार के पशुवनि के शब्द सुनकर अपने वल्लभ चकवा की आशा कर भ्रमै है चित्त, जाका, अश्रुपात सहित हैं लोचन जाके, तट के वृक्ष पर चढि चढिकरि दशो दिशा की ओर देखै है, प्रीतम को न देखकरि अति शीघ्र ही भूमिपर आय पडै है, पाख हलाय कमलिनी की जो रज शरीर के लागी है सो दूर करै है सो पवनकुमार ने घनीबेर तक दृष्टि धारि चकवी की दशा देखी, दयाकर भीज गया है चित्त जाका, चित्त मे ऐसा विचारै है कि प्रीतम के वियोग करि यह शोक रूप अग्निविषै बलै है।

यह मनोज्ञ मानसरोवर अर चद्रमा की चादनी चदन-समान शीतल सो या वियोगिनी चकवी को दावानल समान है, पति विना याको कोमल पल्लव भी खड्ग समान भासै है। चन्द्रमा की किरण भी वज्र के समान भासै है, स्वर्ग हू नरकरूप होय आचरै है। ऐसा चितवनकर याका मन प्रिया विषै गया। अर या मानसरोवर पर ही विवाह भया हुता सो वे विवाह के स्थानक दृष्टि मे पडे सो याको अति शोक के कारण भए, मर्म के भेदनहारे दु सह करौंत समान लागे। चित्तविषै विचारता भया—हाय! हाय! मैं क्रूरचित्त पापी, वह निर्दोष वृथा तजी, एक रात्रि का वियोग चकवी न सहार सकै तो बाईस-वर्ष का वियोग वह महासुन्दरी कैसै सहारै? कटुक वचन वाकी सखीने कहे हुते, वाने तो न कहे हुते, मैं पराए दोषकरि काहे को ताका परित्याग किया। धिक्कार है मो सारिखे मूर्ख को, जो विना विचारे काम करै।

ऐसे निष्कपट प्राणी को विना कारण दु ख अवस्था करी, मैं पापचित्त हूँ, वज्र समान है हृदय मेरा जो मैंने एते वर्ष ऐसी प्राणवल्लभा को वियोग दिया, अब क्या करू, पितासो विदा होयकर घरतै निकस्या हू, कैसै पाछा जाऊ, बडा सकट पड्या, जो मैं वासो मिले विना सग्राम मे जाऊ तो वह जीवै नाही अर वाके अभाव भये मेरा भी अभाव होगया जगत विषै जीतव्य समान कोई पदार्थ नाही तातै सर्व सदेह का निवारणहारा मेरा परम मित्र प्रहस्त विद्यमान है वाहि सर्वभेद पूछू। वह सर्वप्रीति की रीति मे प्रवीण है। जे विचार कर कार्य करै हैं, ते प्राणी सुख पावै हैं ऐसा पवनकुमार को विचार उपज्या सो प्रहस्त मित्र ताके सुखविषै सुखी दुखविषै दुखी याको चितावान देख पूछता भया कि हे मित्र! तुम रावण की मदद करने को वरुण सारिखे योधासो लडने को जावो हो, सो अति प्रसन्नता चाहिये तब कार्य की सिद्धि होय। आज तिहारा वदन रूप कमल क्यो मुरझाया दीखै है, लज्जा को

तजकरि मोहि कहो, तुमको चितावान देखकर मेरे व्याकुल भाव भया है। तब पवनजय ने कहा—हे मित्र ! यह वार्ता काहू सो कहनी नाही। परन्तु तुम मेरे सर्व रहस्य के भाजन हो तोसू अतर नाही। यह वात कहते परम लज्जा उपजै है। तब प्रहस्त कहते भये जो तिहारे चित्त विषै होय सो कहो, जो तुम आज्ञा करो सो वात और कोई न जानेगा, जैसै ताते लोहे पर पडी जलकी बूद विलाय जाय, प्रकट न दीखै, तैसै मोहि कही बात प्रकट न होय।

तब पवनकुमार बोले—हे मित्र ! सुनो—मैं कदापि अजना-सुन्दरीसो प्रीति न करी सो अब मेरा मन अति व्याकुल है, मेरी क्रूरता देखो ऐते वर्ष परणे भए सो अब तक वियोग रह्या, निष्कारण अप्रीति भई, सदा वह शोककी भरी रही। अश्रुपात झरते रहे अर चलते समय द्वारे खडी विरह रूप दाहसो मुरझा गया है मुख रूप कमल जाका, सर्व लावण्य सपदारहित मैंने देखी, अब ताके दीर्घ नेत्र नीलकमल समान मेरे हृदयको वाणवत् भेदै हैं, तातै ऐसा उपायकर जाकरि मेरा वासो मिलाप होय। हे सज्जन ! जो मिलाप न होयगा तो हम दोनो का ही मरण होयगा। तब प्रहस्त क्षणएक विचारकरि बोले-तुम माता पितासो आज्ञा माग शत्रु के जीतवे को निकसे हो, तातै पीछे चलना उचित नाही अर अब तक कदापि अजना-सुन्दरी याद करी नाही अर यहा बुलावै तो लज्जा उपजै है तातै गोप्य चलना अर गोप्य ही आवना, वहा रहना नाही। उनका अवलोकन कर सुख सभापण करि आनद रूप शीघ्र ही आवना। तब आपका चित्त निश्चल होयगा। परम उत्साहरूप चलना, शत्रु के जीतने का निश्चय किया सो यही उपाय है। तब मुद्गर नामा सेनापति को कटक रक्षा सौंपकरि मेरुकी वदनाका मिसकरि प्रहस्त मित्र सहित गुप्त ही सुगधादि सामग्री लेय करि आकाशके मार्गसो चाले। सूर्य भी अस्त होय गया अर साझका प्रकाश भी गया, निशा प्रगट भई अजनासुन्दरी के महल पर जाय पहुचे। पवन कुमार तो बाहिर खडे रहे, प्रहस्त खबर देनेको भीतर गए, दीपक का मद प्रकाश था, अजना कहती भई कौन है ? वसतमाला निकट ही सोती हुती, सो जगाई, वह सब वातोविषै निपुण उठकर अजनाका भय निवारण करत भई। प्रहस्तने नमस्कारकरि जब पवनजय के आगमनका वृतान्त कह्या तब सुन्दरी प्राणनाथ का समागम स्वप्न समान जान्या, प्रहस्त को गद्गद वाणीकरि कहती भई हे प्रहस्त ! मैं पुण्यहीन पतिकी कृपाकरि वर्जित, मेरे ऐसा ही पाप कर्मका उदय आया, तू हमसो कहा हसै है, पतिसो जिसका निरादर होय वाकी कौन अवज्ञा न करै ? मैं अभागिनी दुःख अवस्थाको प्राप्त भई, कहातै सुख अवस्था होय। तब प्रहस्त ने हाथ जोडि नमस्कारकरि

विनती करी–हे कल्याणरूपिणि ! हे पतिव्रते ! हमारा अपराध क्षमा करो, अब सब अशुभ कर्म गए। तिहारे प्रेमरूप गुण का प्रेर्या तेरा प्राणनाथ आया। तेरेसे अति प्रसन्न भया तिनकी प्रसन्नताकरि कहा कहा आनद न होय, जैसे चद्रमाके योगकरि रात्रिकी अति मनोज्ञता होय।

तब अजनासुदरी क्षण एक नीची होय रही अर वसतमाला प्रहस्तसो कही—हे भद्रे ! मेघ बरसै जब ही भला, तातै प्राणनाथ इनके महल पधारे सो इनका बडा भाग्य अर हमारा पुण्यरूप वृक्ष फल्या। यह बात होय रही हुती ताही समय आनदके अश्रुपातकरि व्याप्त होय गए हैं नेत्र जिनके सो कुमार पधारे ही, मानो करुणारूप सखी ही प्रीतमको प्रियाके डिग ले आई। तब भय-भीत हिरणी के नेत्र-समान सुन्दर हैं नेत्र जाके ऐसी प्रिया पतिको देख सन्मुख जाय हाथ जोडि सीस निवाय पायनि पडी। तब प्राण वल्लभने अपने करतै सीस उठाय खडी करी। अमृत समान वचन कहे कि हे देवी ! क्लेश का सकल खेद निवृत होवै। सुन्दरी हाथ जोडि पतिके निकट खडी हुती। पति ने अपने करतै कर पकडकरि सेजपर विठाई, तब नमस्कार कर प्रहस्त तो वाहिर गए अर वसतमाला हू अपने स्थान जाय बैठी। पवनजय कुमारने अपने अज्ञानतै लज्जावान होय सुदरीसो वारवार कुशल पूछी अर कही हे प्रिये ! मैंने अशुभ कर्म के उदयतै जो तिहारा वृथा निरादर किया सो क्षमा करो। तब सुन्दरी नीचा मुखकरि मद मद वचन कहती भई, हे नाथ ! आपने पराभव कुछ न किया, कर्मका ऐसा ही उदय हुआ।

अब आपने कृपा करी, अति स्नेह जताया सो मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध भए। आपके ध्यानकर सयुक्त मेरा हृदय सो आप सदा हृदय ही विषै विराजते, आपका अनादरहू आदर समान भास्या। या भाति अजना सुन्दरी ने कह्या तब पवनजयकुमार हाथ जोड कहते भए कि हे प्राणप्रिये ! मैं वृथा अपराध किया। पराए दोषतै तुमको दोष दिया सो तुम सब अपराध हमारा विस्मरण करो। मैं अपना अपराध क्षमावने निमित्त तिहारे पायनि परूँ हूं, तुम हम सो अति प्रसन्न होवो, ऐसा कहकर पवनजयकुमारने अधिक स्नेह जनाया तब अजना सुन्दरी पति का ऐसा स्नेह देखकरि बहुत प्रसन्न भई। अर पति को प्रियवचन कहती भई, हे नाथ ! मै अति प्रसन्न भई, हम तिहारे चरणारविंदकी रज है हमारा इतना विनय तुमको उचित नाही ऐसा कहकर सुखसो सेज पर विराजमान किए, प्राणनाथ की कृपाकरि प्रिया का मन अति प्रसन्न भया अर शरीर अतिकातिको धरता भया, दोनो परस्पर अतिस्नेहके भरे एक चित्त भए। सुखरूप जागृति रहे, निद्रा न लीनी। पिछले पहर अल्प निद्रा आई, प्रभात का

समय होय आया तव यह पतिव्रता सेजसो उतर पति के पाय पलोटने लगी, रात्रि व्यतीत भई, सो सुखमे जानी नाही। प्रात समय चन्द्रमा की किरण फीकी पड गई। कुमार आनद के भार मे भर गए अर स्वामी की आज्ञा भूल गए, तव मित्र प्रहस्त ने, कुमार के हितविषै है चित्त जाका, ऊचा शब्द कर वसतमाला को जगाकर भीतर पठाई अर मद मद आपहु सुगधित महलमे मित्र के समीप गए। अर कहते भए, हे सुन्दर! उठो, अव कहा सोवो हो? चन्द्रमा भी तिहारे मुखकी कातिकरि रहित होय गया है। यह वचन सुनकर पवनजय प्रवोध को प्राप्त भए। शिथिल है शरीर जिनका, जभाई लेते, निद्रा के आवेश करि लाल हैं नेत्र जिनके, कानोको वाए हाथ की तर्जनी अगुलीसो खुजावते, खुले हैं नेत्र जिनके, दाहिनी भुजा सकोचकरि अरिहतका नाम लेकर सेजसो उठे, प्राणप्यारी आपके जगनेतै पहिले ही सेजसो उतरकरि भूमिविषै विराजै है, लज्जाकर नम्रीभूत हैं नेत्र जाके, उठते ही प्रीतम की दृष्टि प्रियापर पडी। वहुरि प्रहस्तको देखकरि, "आवो मित्र" शब्द कहकर सेजसो उठे। प्रहस्त ने मित्रसो रात्रि की कुशल पूछी, निकट वैठे, मित्र नीतिशास्त्रके वेत्ता कुमारसो कहते भए कि हे मित्र! अव उठो, प्रियाजी का सन्मान वहुरि आयकर करियो, कोई न जानै या भाति कटक मे जाय पहूँचै अन्यथा लज्जा है। रथनूपुरका धनी किन्नरगीत नगर का धनी रावण के निकट गया चाहै है सो तिहारी ओर देखै है। जो वे आगै आवैं तो हम मिलकर चलैं। अर रावण निरतर मत्रियोतै पूछै है जो पवनजयकुमारके डेरे कहा हैं अर कब आवेंगे, तातै अव आप शीघ्र ही रावण के निकट पधारो। प्रियाजीसो विदा मागो, तुमको पिता की अर रावण की आज्ञा अवश्य करनी है। कुशल क्षेमसो कार्यकर शिताव ही आवेंगे तव प्राणप्रियासो अधिक प्रीति करियो।

तव पवनजय ने कही, हे मित्र! ऐसे ही करना। ऐसा कहकर मित्रको तो वाहिर पठाया अर आप प्राणवल्लभासो अतिस्नेहकर उरसो लगाय कहते भए हे प्रिये! अव हम जाय हैं, तुम उद्वेग मत करियो, थोडे ही दिनोमे स्वामी का कामकर हम आवेंगे, तुम आनदसो रहियो। तव अजनासुन्दरी हाथ जोडकर कहती भई, हे महाराजकुमार! मेरा ऋतुसमय है सो गर्भ मोहि अवश्य रहेगा। अर अवतक आपकी कृपा नाही हुती, यह सर्व जानै हैं सो माता पितासो मेरे कल्याण के निमित्त गर्भका वृत्तात कह जावो। तुम दीर्घदर्शी सव प्राणियोमे प्रसिद्ध हो। ऐसे जव प्रियाने कह्या तव प्राणवल्लभाको कहते भए। हे प्यारी! मैं माता पितासो विदा होय निकस्या सो अव उनके निकट जाना वनै नाही, लज्जा उपजै है। लोक मेरी चेष्टा जान हसैंगे, तातै जव तक तिहारा

गर्भ प्रकाश न पावै ताके पहिले ही मैं आऊ हू, तुम चित्त प्रसन्न राखो अर कोई कहै तो ये मेरे नाम की मुद्रिका राखो, हाथो के कडे राखो, तुमको सब शाति होयगी, ऐसा कहकर मुद्रिका दई अर वसतमाला को आज्ञा दई इनकी सेवा बहुत नीके करियो, आप सेजसो उठे, प्रिया विषैं लगा रहा है प्रेम जिनका, कैसी है सेज ? सयोग के योगतै विखर रहे हैं हार के मुक्तफल जहा अर पुष्पनिकी सुगध मकरदतै भ्रमै हैं भ्रमर जहा। क्षीरसागर की तरग समान अति उज्ज्वल बिछे हैं पट जहा, आप उठकर मित्र के सहित विमान पर बैठि आकाशके मार्ग चाले। अजना सुदरी ने अमगल के कारण आसू न काढ़े। हे श्रेणिक ! कदाचित् या लोकविषै उत्तम वस्तु के सयोगतै किंचित् सुख होय है सो क्षणभगुर है अर देहधारियो के पाप के उदयतै दुःख होय है, सुख-दुःख दोनो विनश्वर हैं, तातैं हर्ष विषाद न करना। हो प्राणी हो ! जीवो को निरतर सुख का देनहार दुःखरूप अधकार का दूर करणहारा जिनवर-भाषित धर्म सोई भया सूर्य ताके प्रतापकरि मोह-तिमिर हरहु।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण सस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषावचनिका विषैं पवनजय अजनाका सयोग वर्णन करने वाला सोलहवा पर्व पूर्ण भया ॥१६॥

[अंजना के गर्भ का प्रगट होना और सासू द्वारा घर से निकाला जाना]

अथानतर कैयक दिनों विषैं महेन्द्र की पुत्री जो अजना ताके गर्भ के चिन्ह प्रगट भए। कछुइक मुख पाडुवर्ण होय गया मानो हनुमान गर्भ मे आया सो तिनका यश ही प्रगट भया है। मद चाल चलने लगी जैसा मदोन्मत्त दिग्गज विचरै है, स्तन युगल अति उन्नति को प्राप्त भए, श्यामलीभूत है अग्रभाग जिनके, आलसतै बचन मद मद निसरैं, भौंहो का कप होता भया, इन लक्षणनिकरि ताहि सासू गर्भिणी जानकर पूछती भई कि तैंने यह कर्म कौनतैं किया। तब यह हाथ जोड प्रणाम कर पति के आवने का समस्त वृत्तात कहती भई तदि केतुमती सासू क्रोधायमान भई। महा निठुर वाणीरूप पाषाण कर पीडती भई अर कहा हे पापिनि ! मेरा पुत्र तेरेतैं अति विरक्त, तेरा आकार भी न देख्या चाहै, तेरे शब्द को श्रवणविषैं धारै नाही माता-पितासो विदा होयकर रणस

ग्राम को वाहिर निकस्या, वह धीर कैसे तेरे मदिरमे आवै, हे निर्लज्ज ! धिक्कार है तुझ पापनको । चद्रमाकी किरण समान उज्जवल वशको दूषण लगावनहारी, यह दोनो लोक मैं निंद्य अशुभक्रिया तैंने आचरी अर तेरी यह सखी वसतमाला याने तोहि ऐसी बुद्धि दीनी, कुलटाके पास वेश्या रहै तव काहेकी कुशल ? मुद्रिका अर कडे दिखाए तो भी ताने न मानी, अत्यत कोप किया । एक क्रूर नामा किंकर वुलाया । वह नमस्कार कर आय ठाडा भया । तव क्रोध कर केतुमतीने लाल नेत्र कर कहा, हे क्रूर ! सखी सहित याहि गाडी मे वैठाय महेद्रनगरके निकट छोड आवो । तव क्रूर केतुमती की आज्ञातैं सखी सहित अजना को गाडी मे वैठाकर महेद्रनगर की ओर ले चल्या । कैसी है अजना सुन्दरी ? अति कापै है शरीर जाका, महा पवनकर उपडी जो वेल ता समान निराश्रय, अति आकुल कातिरहित दुखरूप अग्निकर जल गया है हृदय जाका, भयकर सासूको कछु उत्तर न दिया, सखीकी ओर धरे हैं नेत्र जानैं, मनकर अपने अशुभ कर्मको वारवार निंदती अश्रुधारा नाखती, निश्चल नही है चित जाका, सो क्रूर इनको लेय चाल्या सो क्रूरकर्मविषै अति प्रवीण है । दिवसके अतमें महेंद्रनगरके समीप पहुचाय कर नमस्कार कर मधुर वचन कहता भया । हे देवी ! मैं अपनी स्वामिनी की आज्ञातैं तुमको दुख का कारण कार्य किया, सो क्षमा करहु । ऐसा कहकर सखी सहित सुन्दरीकू गाडीतैं उतार विदा होय गाडी लेय स्वामिनीपै गया । जाय विनती करी—आपकी आज्ञा प्रमाण तिनकू तहा पहुचाय आया हूँ ।

अथानतर महा उत्तम महा पतिव्रता जो अजनासुन्दरी ताहि पतिके योगतैं दुख के भारतैं पीडित देख सूर्य भी मानो चिंताकर मद होय गया अर रुदनकर अत्यत लाल होय गए हैं नेत्र जाके, ऐसी अजना सो मानो याके नेत्र की अरुणता कर पश्चिमदिशा रक्त होय गई, अधकार फैल गया, रात्रि भई, अजना के दुखतैं निकसी जो आसून की धारा तेई भए मेघ तिनकर मानो दसो दिशा श्याम होय गई अर पछी कोलाहल शब्द करते भए सो मानो अजनाके दुखतैं दुखी भए पुकारै हैं । वह अजना अपवादरूप महादुख का जो सागर तामे डूवी क्षुधादिक दुख भूल गई अत्यत भयभीत अश्रुपात नाखै, रुदन करै, सो वसतमाला सखी धैर्य वधावै, रात्री को पल्लव का साथर विछाय दिया सो याको निद्रा रच भी न आई । निरतर उष्ण अश्रुपात पडै सो मानो दाहके भयतैं निद्रा भाज गई, वसतमाला पाव दावै, खेद दूर किया, दिलासा करी, दुख के योगकर एक रात्री वर्ष वरावर वीती । प्रभात मे साथरेको तजकर नाना सकल्प विकल्पनिके सैकडानि शका करि अति विह्वल पिता के घर की

ओर चाली। सखी छाया समान सग चाली। पिता के मन्दिर के द्वार जाय पहुँची। भीतर प्रवेश करती द्वारपाल ने रोकी, दु ख के योगतै और ही रूप होय गया सो जानी न पडी। तब सखी ने सब वृतात कह्या सो जानकर शिलाकवाट नामा द्वारपाल ने एक और मनुष्य को द्वारे मेलि आप राजा के निकट जाय नमस्कार करि विनती करी। पुत्री के आगमन का वृत्तान्त कह्या।

तब राजा के निकट प्रसन्नकीर्ति नामा पुत्र बैठ्या हुता सो राजा ने पुत्र को आज्ञा करी—तुम सुम्मुख जाय उसका शीघ्र ही प्रवेश करावो तुम तो पहिले जावो और हमारी असवारी तैयार करावो, हम भी पीछेतै आवै हैं, तदि द्वारपालने हाथ जोडकर नमस्कार कर यथार्थ विनती करी। तब राजा महेद्र लजाका कारण सुनकर महा कोपवान भए। अर पुत्रको आज्ञा करी कि पापिनीकू नगरमे तै काढ देवो, जाकी वार्ता सुनकर मेरे कान मानो वज्र कर हते गए हैं। तब एक महोत्साह नामा बडा सामत, राजा का अतिवल्लभ, सो कहता भया, हे नाथ ! ऐसी आज्ञा करनी उचित नही, वसतमालासो सब ठीक पाड लेहु। सासू केतुमती अति क्रूर है अर जिनधर्मतै परान्सुख है। लौकिकसूत्र जो नास्तिकमत ताविषै प्रवीण है तातै विना विचार्या झूठा दोष लगाया। यह धर्मात्मा श्रावकके व्रतकी धरणहारी, कल्याण आचार विषै तत्पर पापिनी सासू ने निकासी है अर तुम भी निकासो तो कौनके शरणै जाय, जैसे व्याघ्रकी दृष्टितै मृगी त्रासको प्राप्त भई सती महा गहन वनका शरण लेय, तैसै यह भोली निष्कपट सासूतै शकित भई तुम्हारे शरण आई है, मानो जेठके सूर्य की किरण के सतापतै दु खित भई महावृक्षरूप जो तुम सो तिहारे आश्रय आई है। यह गरीबिनी, विह्वल है आत्मा जाका अपवादरूप जो आताप ताकर पीडित तिहारे आश्रय भी साता न पावै तो कहाँ पावै ? मानो स्वर्ग तै लक्ष्मी ही आई है। द्वारपाल ने रोकी सो अत्यत लज्जा को प्राप्त भई। विलखि करि माथा ढाकि द्वारै खडी है, आपके स्नेह कर सदा लाडली है, सो तुम दया करो यह निर्दोष है, मदिर माहि प्रवेश करावो अर केतुमती की क्रूरता पृथ्वी विषै प्रसिद्ध है। ऐसे न्याय रूप वचन महोत्साह सामत ने कहे, सो राजा कान न धरै, जैसे कमलोके पत्रनिविषै जलकी बूद न ठहरै तैसै राजा के चित्त मे यह बात न ठहरी।

राजा सामत सो कहते भए कि यह सखी वसतमाला सदा याके पास रहै अर याही के स्नेह के योगतै कदाचित् सत्य न कहै तो हमको निश्चय कैसै आवै, यातै याके शील विषै सदेह है, सो याको नगरतै निकास देहु। जब यह

बात प्रसिद्ध होयगी तो हमारे निर्मल कुल विषै कलक आवेगा । जे बडे कुलकी बालिका निर्मल हैं अर महा विनयवती उत्तम चेष्टाकी धरणहारी हैं ते पीहर सासुरै सर्वत्र स्तुति करने योग्य हैं । जे पुण्याधिकारी बडे पुरुष जन्म ही तैं निर्मल शील पालैं हैं, ब्रह्मचर्य को धारण करैं हैं अर सर्व दोष का मूल जो स्त्री तिनको अगीकर नाही करैं हैं ते धन्य हैं । ब्रह्मचर्य समान और कोई व्रत नाही अर स्त्री के अगीकार मे यह सफल नाही होय है । जो कुपूत बेटा बेटी होय अर उनके अवगुण पृथ्वी विषै प्रसिद्ध होय तो पिताका धरतीमे गड जाना होय है । सब ही कुल को लज्जा उपजै है, मेरा मन आज अति दु खित होय रह्या है, मैं यह बात पूर्व अनेक बार सुनी हुती जो यह भरतार के अप्रिय है अर वह याहि आँखतैं नाही देखै है, सो ताकरि गर्भकी उत्पत्ति कैसैं भई, तातैं यह निश्चय सेती सदोष है । जो कोई याहि मेरे राज्य मे राखेगा सो मेरा शत्रु है । ऐसे वचन कहकर राजा ने कोपकर जैसैं कोई जानैं नाही या भाति याको द्वारतैं निकाल दीनी ।

सखी सहित दु खकी भरी अजना राजाके निज वर्ग के जहा जहा आश्रय के अर्थि गई, सो आने न दीनी, कपाट दिए । जहा बाप ही क्रोधायमान होय निराकरण करै, तहा कुटुम्ब की कैसी आशा, वे तो सब राजा के अधीन हैं । ऐसा निश्चयकर सबतैं उदास हो सखीसो कहती भई । आसूवो के समूहकर भीज गया है अग जाका, हे प्रिये ! यहाँ सर्व पाषाण चित्त हैं, यहा कैसा बास ? तातै वन मे चालैं, अपमानतैं तो मरना भला । ऐसा कहकर सखी सहित वन को चाली, मानो मृगराजतैं भयभीत मृगी ही है । शीत उष्ण अर वात के खेदकरि पीडित वन मे बैठि महा रुदन करती भई । हाय हाय ! मैं मदभागिनी दु खदाई जो पूर्वोपार्जित कर्म ताकरि महाकष्टको प्राप्त भई । कौनके शरण जाऊ ? कौन मेरी रक्षा करै । मैं दुर्भाग्य सागरके मध्य कौन कर्मतैं पडी । नाथ ! मेरा अशुभ कर्मका प्रेर्‌या कहातैं आया ? काहेको गर्भ रह्या, मेरा दोनो ही ठौर निरादर भया । माता ने भी मेरी रक्षा न करी, सो वह कहा करै । अपने धनी की आज्ञाकारिणी पतिव्रतानिका यही धर्म है । अर नाथ मेरा यह वचन कह गया हुता कि तेरे गर्भकी वृद्धितैं पहिले ही मैं आऊगा सो हाय वह वचन क्यो भूले ? अर सासू ने बिना परखे मेरा त्याग क्यो किया ? जिनके शील मे सदेह होय तिनके परखने के अनेक उपाय हैं अर पिताको मैं बाल-अवस्था विषै अति लाडली हुती, निरतर गोदमें खिलावते हुते सो बिना परखे मेरा निरादर किया, इनको ऐसी बुद्धि क्यो उपजी ? अर माताने मुझे गर्भमें धारी, प्रतिपाल किया, अब एक बात भी मुखतैं न निकाली कि इसके गुण दोष का निश्चय कर लेवें ।

अर भाई जो एक माताके उदरसो उत्पन्न भया हुता, सोहू मो दुःखिनी को न राख सक्या, सब ही कठोर चित्त होय गए। जहा माता पिता भ्राता ही की यह दशा, तहां काका बाबा के दूर भाई तथा प्रधान सामत कहा करैं अथवा उन सबका कहा दोष? मेरा जो कर्मरूप वृक्ष फल्या सो अवश्य भोगना। या भाति अजना विलाप करै सो सखी भी याके लार विलाप करै। मनतै धैर्य जाता रह्या, अत्यत दीन मन होय ऊचे स्वरतै रूदन करै सो मृगी भी याकी दशा देख आसू डालवे लागी। बहुत देरतक रोनेतैं लाल होय गए हैं नेत्र जाके तब सखी वसतमाला महाविचक्षरण याहि छातीसू लगाय कहती भई-हे स्वामिनि! बहुत रोनेतैं क्या लाभ? जो कर्म तैंने उपाज्या है सो अवश्य भोगना है, सब ही जीवनिके कर्म आगैं पीछै लग रहे हैं सो कर्मके उदयविषै शोक कहा? हे देवी! जो स्वर्ग लोक के देव सैंकडो अप्सराओ के नेत्रनिकर निरतर अवलोकिए है, तेहू सुकृतके अत होते परम दुःख पावै हैं। मनमे चितए कछू और, होय जाय कछु और।

जगतके लोक उद्यम मे प्रवर्तै हैं तिनको पूर्वोपार्जित कर्मका उदय ही कारण है। जो हितकारी वस्तु आय प्राप्त भई सो अशुभकर्म के उदयतै विघटि जाय। अर जो वस्तु मनतै अगोचर है सो आय मिलै। कर्मनिकी गति विचित्र है तातै हे देवी! तू गर्भके खेदकरि पीडित है, वृथा क्लेश मत कर, तू अपना मन दृढ कर। जो तैंने पूर्व जन्म मे कर्म उपार्जे हैं तिनके फल टारे न टरैं। अर तू तो महा बुद्धिमती है तोहि कहा सिखाऊँ। जो तू न जानती होय तो मैं कहूं, ऐसा कहकर याके नेत्रनिके आसू अपने वस्त्रतै पोछे। बहुरि कहती भई-हे देवी! यह स्थानक आश्रय रहित है, तातै उठो, आगैं चालैं, या पहाड के निकट कोई गुफा होय जहा दुष्ट जीवनिका प्रवेश न होय, तेरे प्रसूतिका समय आया है सो कईएक दिन यत्नसू रहना। तब यह गर्भके भारतैं जो आकाशके मार्ग चलनेमे हू असमर्थ है तो भूमिपर सखीके सग गमन करती महा कष्टकरि पांव धरती भई। कैसी है वनी? अनेक अजगरनितै भारी, दुष्ट जीवनिके नादकरि अत्यत भयानक, अति सघन, नाना प्रकार के वृक्षनिकरि सूर्यकी किरणका भी सचार नाही, जहा सूईके अग्रभाग समान डाभकी अणी अति तीक्ष्ण, जहा ककर बहुत अर माते हाथीनिके समूह अर भीलो के समूह बहुत हैं अर वनी का नाम मातगमालिनी है, जहा मनकी भी गम्यता नाही तो तनकी कहा गम्यता? सखी आकाशमार्गतै जायवेको समर्थ अर यह गर्भ के भारकरि समर्थ नाही तातै सखी याके प्रेम के बचनसो बधी शरीरकी छाया समान लार लार चालै है। अजना वनी को अति भयानक देखकर कांपै है, दिशा भूल गई।

तव वसतमाला याको अति व्याकुल जानि हाथ पकडि कहती भई, हे स्वामिनि ! तू डरै मत, मेरे पीछे पीछे चली आवो ।

तव यह सखीके काधे हाथ मेलि चली जाय, ज्यो ज्यो डाभ की अणी चुभै त्यो त्यो अति खेदखिन्न होय, विलाप करती, देहको कष्टतै धारती, जलके नीभरने जे अति तीव्र वेग सयुक्त वहै तिनको अति कष्टतै पार उतरती, अपने जे सव स्वजन अति निर्दई तिनका नाम चितार अपने अशुभ कर्मको वारवार निंदती, वेलो को पकड भयभीत हिरणी कैसे हैं नेत्र जाके, अगविपै पसेव को धरती, काटो से वस्त्र लगि जाय मो छुडावती, लहूतै लाल होय गए हैं चरण जाके, शोकरूप अग्निके दाहकरि श्याम ताको धरती, पत्र भी हालै तो त्रासको प्राप्त होती, चलायमान है शरीर जाका, वारवार विश्राम लेती, ताहि सखी निरतर प्रिय वाक्य कर धैर्य वधावै, सो धीर धीरे अजना पहाडोकी तलहटी आई, तहा आसू भर करि वैठ गई । सखीसो कहती भई अव मुझमे एक पग धरने की शक्ति नाही, यहा ही रहूँगी, मरण होय तो होय । तव सखी अत्यत प्रेमकी भरी महा प्रवीण मनोहर वचननिकरि याकौं शाति उपजाय नमस्कार-करि कहती भई—हे देवी ! यह गुफा नजदीक ही है, कृपाकर इहातै उठकर वहा सुखसो तिष्ठो, यहा क्रूर जीव विचरै हैं, तोको गर्भकी रक्षा करनी है, तातै हठ मतिकर ।

ऐसा कह्या तव वह आताप की भरी सखी के वचनकरि अर सघन वनके भयकरि चलवेको उठी, तव सखी हस्तावलवन देयकर याको विपमभूमितै निकासकर गुफाके द्वारपर लेय गई । विना विचारे गुफामे वैठने का भय होय सो ये दोनो वाहिर खडी विपम पापाण के उलघवे कर उपज्या है खेद जिनको तातै वैठ गई । तहा दृष्टि धर देख्या । कैसी है दृष्टि ? श्याम श्वेत आरक्त कमल समान प्रभाको धरै से एक पवित्र शिलापर विराजे चारणमुनि देखे । पल्यकासन धरे अनेक ऋद्धि सयुक्त निश्चल हैं श्वासोच्छ्वास जिनके, नासिकाके अग्र भागपर धरी है सरल दृष्टि जिनने, शरीर स्तभ समान निश्चल है, गोदपर धर्‌या को वामा हाथ ताके ऊपर दाहिना हाथ, समुद्र समान गभीर, अनेक उपमा सहित विराजमान आतमस्वरूप का जो यथार्थ स्वभाव जैसा निजशासन-विषैं गाया है तैसा ध्यान करते, समस्त परिग्रह रहित पवन जैसैं असगी, आकाश जैसैं निर्मल, मानो पहाडके शिखर ही हैं सो इन दोनो ने देखे । कैसे है वे साधु ? महापराक्रम के धारी, महाशात ज्योतिरूप है शरीर जिनका । ये दोनो मुनि के समीप गई । सर्व दु ख विस्मरण भया । तीन प्रदक्षिण देय हाथ

जोडि नमस्कार किया, मुनि परम बांधव पाए, फूल गए है नेत्र जिनके, जा समय जो प्राप्ति होनी होय सो ये दोनो हाथ जोड विनती करती भई मुनिके चरणारविंदकी ओर धरे हैं अश्रुपातरहित स्थिर नेत्र जिनने। हे भगवान्! हे कल्याणरूप हे उत्तम चेष्टा के धरणहारे। तिहारे शरीरमे कुशल है। कैसा है तिहारा देह? सर्व तपव्रत आदि साधनेका मूलकारण है। हे गुणनि के सागर! ऊपरा ऊपर तपकी है वृद्धि जिनके, हे महाक्षमावान! शातभावके धारी! मन इन्द्रियोंके जीतनहारे! तिहारा जो विहार है सो जीवनिके कल्याणनिमित्त है, तुम सारिखे पुरुष सकल पुरुषनिको कुशलके कारण हैं सो तिहारी कुशल कहा पूछनी परतु यह पूछने का आचार हैं तातैं पूछी है, ऐसा कहि विनयतैं नम्रीभूत भया है शरीर जिनका सो चुप हो रही अर मुनि के दर्शनतैं सर्व भय रहित भई।

अथानंतर मुनि अमृततुल्य परमशाति के वचन कहते भये—हे कल्याणरूपिणि! हे पुत्री! हमारे कर्मानुसार सब कुशल है। ये सर्वही जीव अपने कर्मोंका फल भोगवै हैं। देखो कर्मनिकी विचित्रता, यह राजा महेंद्र की पुत्री अपराध रहित कुटुम्बके लोगनिने काढी है। सो मुनि बडे ज्ञानी, विना कहे सब वृतात के जाननहारे तिनको नमस्कार कर वसतमाला पूछती भई—हे नाथ! कौन कारणतैं भरतार यासो बहुत दिन उदास रहे? बहुरि कौन कारण अनुरागी भए अर यह महासुखयोग्य वन विषै कौन कारणतैं दु खको प्राप्त भई? मदभागी कौन याके गर्भ मे आया जाकरि याको जीवने कासश भया। तदि स्वामी अमितिगति तीन ज्ञान के धारक सर्व वृत्तात यथार्थ कहते भए। यही महा पुरुषो की वृत्ति है जो पराया उपकार करै। मुनि वसतमाला सो कहै हैं—हे पुत्री! याके गर्भविषै उत्तम बालक आया है, सो प्रथम तो ताके भव सुनि। बहुरि जो पूर्व भव मे पापका आचरण किया, जा कारणतैं यह अजना ऐसे दु खको प्राप्त भई, सो सुन।

× × × × ×

[राम लक्ष्मण का वन गमन और भरत का राज्याभिषेक]

अथानतर राम लक्ष्मण क्षण एक निद्रा कर अर्धरात्रि के समय जब मनुष्य सोय रहे, लोकनिका शब्द मिट गया अर अधकार फैल गया ता समय भगवानकू नमस्कार कर बखतर पहिर धनुष बाण लेय सीताकू बीच मे लेकर चाले, घर-घर दीपकनिका उद्योत होय रहा है, कामीजन अनेक चेष्टा करै हैं।

३२वा पर्व

ये दोऊ भाई महाप्रवीण नगरके द्वारकी खिडकीकी ओरसे निकसि दक्षिण दिशा का पथ लिया। रात्रि के अन्त मे दौडकर सामत लोक आय मिले। राघव के सग चलने की है अभिलाषा जिनके, दूरतै राम लक्ष्मणकू देख महा विनय के भरे असवारी छोड प्यादे आए, चरणारविंदको नमस्कारकरि निकट आय वचनालाप करते भए। बहुत सेना आई अर जानकी की बहुत प्रशसा करते भए जो याके प्रसादतै हम राम लक्ष्मणको आय मिले, यह न होती तो ये धीरे धीरे न चलते अर हम कैसे पहुचते ? ये दोऊ भाई पवन-समान शीघ्रगामी हैं अर यह सीता महासती हमारी माता है, या समान प्रशसा योग्य पृथ्वी विषैं और नाही। ये दोऊ भाई नरोत्तम सीताकी चाल प्रमाण मद मद दो कोस चाले।

खेतनिविषैं नाना प्रकारके अन्न हरे होय रहे है अर सरोवरनिमे कमल फूल रहे है अर वृक्ष महारमणीक दीखैं है। अनेक ग्राम नगरादि मे ठौर ठौर भोजनादि सामग्री करि लोक पूजै हैं। अर बडे बडे राजा बडी फौजसे आय मिले जैसैं वर्षा कालम गगा जमुना के प्रवाह विषै अनेक नदियनिके प्रवाह आय मिलैं। कैइक सामत मार्ग के खेद करि इनका निश्चय जान आज्ञा पाय पीछे गए। अर कैइक लज्जाकर, कैइक भयकर, कैइक भक्ति कर लार प्यादे चले जाय हैं सो राम लक्ष्मण क्रीडा करते परियात्रा नामा अटवी विषैं पहूँचे। कैसी है अटवी ! नाहर अर हाथीनिके समूहनिकर भरी, महा भयानक वृक्षनिकर रात्रि समान अधकार की भरी, जाके मध्य नदी है ताके तट आए, जहा भीलनिका निवास है, नाना प्रकारके मिष्ट फल है। आप तहा तिष्ट कर कैएक राजनिको विदा किया अर कैएक पीछे न फिरे, राम ने बहुत कहा तो भी सग ही चाले सो सकल नदीको महा भयानक देखते भए। कैसी है नदी ? पर्वतनिसो निकसती महानील है जल जाका, प्रचड है लहर जामे, महा शब्दायमान अनेक जे ग्राह मगर तिनकर भरी दोऊ ढाहा विदारती, कल्लोलनिके भयकर उडे हैं तीरके पक्षी जहा, ऐसी नदीको देखकर सकल सामत त्रासकर कपायमान होय राम लक्ष्मणकू कहते भए कि हे नाथ ! कृपाकर हमे भी पार उतारहु। हम सेवक भक्तिवत हमसे प्रसन्न होवो। हे माता जानकी लक्ष्मणसे कहो जो हमकू पार उतारैं या भाति आसू डारते अनेक नरपति नाना चेष्टा के करणहारे नदी विषैं पडने लगे। तब राम बोले, अहो अब तुम पाछे फिरो।

यह वन महा भयानक है हमारा तुम्हारा यहा लग ही सग हुता, पिताने भरतकू सबका स्वामी किया है सो तुम भक्तिकर तिनकू सेवहु। तब वे कहते भए, हे नाथ ! हमारे स्वामी तुम ही हो, महादयावान हो, हमपर प्रसन्न

होवो, हमको मत छोडहु, तुम विना यह प्रजा निराश्रय भई, आकुलतारूप कहो कौनकी शरण जाय ? तुम समान और कौन है ? व्याघ्र सिंह अर गजेंद्र सर्पादिकका भरा भयानक जो यह वन तामे तुम्हारे संग रहेंगे। तुम बिन हमारे स्वर्ग हू सुखकारी नाही। तुम कही पाछे जावो सो चित्त फिरै नाही, कैसे जाहिं ? यह चित्त सब इंद्रियनिका अधिपति याहीतैं कहिएहैं जो यह अद्भुत वस्तु मे अनुराग करै। हमारे भोगनिकर घरकर तथा स्त्री कुटुम्बादिकर कहा ? तुम नररत्न हो, तुमको छोड कहा जाहिं ? हे प्रभो! तुमने बालक्रीडा विषै हमसो कबहू वचना न करी, अब अत्यंत निठुरताकू धारो हो। हमारा अपराध कहो। तिहारे चरण रज कर परम वृद्धिकू प्राप्त भए, तुम तो भृत्य-वत्सल हो। अहो माता जानकी! अहो लक्ष्मण धीर! हम शीश नवाय हाथ जोड विनती करै, नाथकू हम पर प्रसन्न करहु। ये वचन सबनिने कहे, तब सीता अर लक्ष्मण रामके चरणनिकी ओर निरख रहे। तब राम बोले-जाहु, यही उत्तर है। सुखसो रहियो, ऐसा कहकर दोनो वीर नदी के विषै प्रवेश करते भए।

श्रीराम सीता का कर गह सुखसे नदीमे लेगए जैसै कमलिनीको दिग्गज ले जाय। वह असराल नदी राम लक्ष्मणके प्रभावकर नाभि-प्रमाण वहने लगी, दोऊ भाई जलविहार विषै प्रवीण क्रीडा करते चले गए। राम के हाथ गहे ऐसी शोभै मानो साक्षात लक्ष्मी ही कमलदल मे तिष्ठी है राम लक्ष्मण क्षणमात्र विषै नदी पार भए वृक्षनिके आश्रय आय गए। तब लोकनिकी दृष्टितैं अगोचर भए। तब कई एक तो विलाप करते आसू डारते घरनिकू गए अर कई एक राम लक्ष्मण की ओर धरी है दृष्टि जिनने सो काष्ठ से होय रहे अर कई एक मूर्च्छा खाय धरतीपर पडे अर कई एक ज्ञान को प्राप्त होय जिनदीक्षा-को उद्यम भए, परस्पर कहते भए-जो धिक्कार है या असार संसार को अर धिक्कार इन क्षणभंगुर भोगनिको! ये काले नाग के फण समान भयानक हैं। ऐसे शूरवीरनिकी यह अवस्था तो हमारी कहा बात ? या शरीरको धिक्कार! जो पानीके बुदबुदा समान निस्सार, जरा मरण इष्टवियोग अनिष्टसंयोग इत्यादि कष्ट का भाजन है। धन्य हैं वे महापुरुष भाग्यवत उत्तम चेष्टाके धारक! जे मरकट (वन्दर) की भौंह समान लक्ष्मी को चंचल जान तजिकर दीक्षा धरते भए। या भांति अनेक राजा विरक्त होय दीक्षा को सन्मुख भए। तिनने एक पहाडीकी तलहटी मे सुन्दर वन देख्या, अनेक वृक्षनिकर मंडित महासघन, नानाप्रकार के पुष्पनिकर शोभित, जहा सुगंध के लोलुपी भ्रमर गुंजार करै हैं तहा महापवित्र स्थानक मे तिष्ठते ध्यानाध्ययनविषै तीन महातप

के धारक साधु देखे। तिनको नमस्कार कर वे राजा जिननाथ का जो चैत्यालय तहां गए। ता समय पहाडनिके शिखर विषै अथवा रमणीक वन विषै अथवा नदीनके तट विषै अथवा नगर ग्रामदिक विषै जिन मंदिर हुते तहां नमस्कार करि एक समुद्र समान गम्भीर मुनिनके गुरु सत्यकेतु आचार्य तिनके निकट गए, नमस्कार कर महाशांत रस के भरे आचार्य से वीनती करते भए—हे नाथ! हमको संसार समुद्रतैं पार उतारहु। तब मुनि कही—तुमको भव-पार उतारन-हारी भगवती दीक्षा है सो अंगीकार करहु। मुनि की यह आज्ञा पाय ये परम हर्षकूं प्राप्त भए।

राजा विदग्धविजय मेरुक्रूर संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर शत्रुदमन अर विनोद कटक, सत्यकठोर, प्रियवर्धन इत्यादि निर्ग्रंथ होते भए, तिनका गज तुरंग रथादि सकल साज सेवक लोकनि ने जाय करि उनके पुत्रादिकनिकूं सौंप्या, तब वे बहुत चिंतावान भए। बहुरि समझकर नाना प्रकार के नियम धारते भए। कैयक सम्यग्दर्शन कूं अंगीकार कर संतोषकूं प्राप्त भए, कैयक निर्मल जिनेश्वरदेव का धर्म श्रवणकरि पापतैं पराङ्मुख भए। बहुत सामंत राम लक्ष्मणकी वार्ता सुन साधु भए, कैयक श्रावक के अणुव्रत धारते भए। बहुत रानी आर्यिका भई, बहुत श्राविका भई, कैयक सुभट राम का सर्व वृत्तांत भरत दशरथ पर जाकर कहते भए सो सुनकर दशरथ अर भरत कछूयक खेदकूं प्राप्त भए।

अथानंतर राजा दशरथ भरतको राज्याभिषेक कर, कछुयक जो राम के वियोग कर व्याकुल भया हुता हृदय सो समता लाय, विलाप करता जो अंत:पुर ताहि प्रतिबोधि नगरतैं वनकूं गए। सर्वभूतहित स्वामी को प्रणामकरि बहुत नृपनि सहित जिनदीक्षा आदरी। एकाकी विहारी जिनकल्पी भए। परम शुक्ल-ध्यान की है अभिलाषा जिनके तथापि पुत्र के शोक कर कबहूं कछु इक कलुषता उपज आवै सो एक दिन ये विचक्षण विचारते भए कि संसार के दु:ख का मूल जगतका स्नेह है, इसे धिक्कार हो! या करि कर्म बंधै हैं। मैं अनन्त जन्म धरे तिनविषैं गर्भ-जन्म के अनेक माता-पिता भाई पुत्र कहां गए? अनेक वार मैं देवलोकके भोग भोगे। अर अनेक वार नरक के दु:ख भोगे, तिर्यंच गति विषै मेरा शरीर अनेक वार इन जीवनिमें भख्या, इनका मैं भख्या, नाना रूप ये योनियां तिन विषै मैं बहुत दु:ख भोगे। अर बहुतवार रुदनके शब्द सुने। अर बहुत वार वीणाबांसुरी आदि वादित्रों के नाद सुने, गीतसुने, नृत्य देखे देवलोकविषै मनोहर अप्सरानिके भोग भोगे। अनेक वार मेरा शरीर नरकविषै

कुल्हाडनिकर काटा गया । अर अनेक वार मनुष्यगतिविषै महासुगन्ध महावीर्य करणहारा षट्रस सयुक्त अन्न आहार किया । अर अनेक वार नरकविषें गला हुआ सीसा अर तावा नारकियोने मार मार मुझे प्याया । अर अनेक वार सुर नर गतिविषैं मनके हरणहारे सुन्दर रूप देखे अर सुन्दर रूप धारे । अर अनेक बार नरक विषै महा कुरूप धारे । अर नाना प्रकार के त्रास देखे । कैयक वार राजपद देवपदविषै नाना प्रकारके सुगन्ध सू घे तिनपर भ्रमर गु जर करैं । अर कैयक वार नरककी महा दुर्गन्ध सूंघी । अर अनेक वार मनुष्य तथा देवगति-विषै महालीला की धरणहारी, वस्त्राभरण मडित, मन की चोरनहारी जे नारी तिनसो आलिगन किया । अर बहुत वार नरकविषै कूटशाल्मलि वृक्ष तिनके तीक्ष्ण कटक अर प्रज्वलिती लोह की पुतलीनि से स्पर्श किया ? या ससार विषै कर्मनिके सयोगतै मैं कहा कहा न सू घा, कहा कहा न सुना, कहा कहा न भखा । अर पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय विषैं ऐसा देह नाही जो मैं न धरा । तीनलोकविषै ऐसा जीव नाही जासू मेरे अनेक नाते न भए, ये पुत्र मेरे कई वार पिता भए, माता भए, शत्रु भए । ऐसा स्थानक नाही, जहा मैं न उपजा, न मूआ ।

ये देह भोगादिक अनित्य, या जगतविषै कोई शरण नाही । यह चतुर्गति-रूप ससार दु खका निवास है, मैं सदा अकेला हूँ । ये षट्द्रव्य परस्पर सब ही भिन्न हैं, यह काय अशुचि, मैं पवित्र, ये मिथ्यात्वादि अव्रतादि कर्म आस्रव के कारण है, सम्यक्त व्रत सयमादि सवर के कारण हैं । तपकर निर्जरा होय है । यह लोक नानरूप मेरे स्वरूपतै भिन्न, या जगत विषै आत्मज्ञान दुर्लभ है अर वस्तु का जो स्वभाव सोई धर्म तथा जीव धर्म सो मैं महाभाग्यतै पाया । धन्य ये मुनि जिनके उपदेशतै मोक्षमार्ग पाया सो अब पुत्रनिकी कहा चिंता ? ऐसा विचार कर दशरथ मुनि निर्मोह दशाकूं प्राप्त भए । जिन देशो मे पहिले हाथी चढे, चमर ढुरते, छत्र फिरते हुते अर महारण सग्राम विषै उद्धत वैरि-निकू जीते हेतु तिन देशनिविषै निर्ग्रन्थ दशा धरे, बाईस परीषह जीतते, शाति-भाव सयुक्त विहार करते भए ।

अर कौशल्या तथा सुमित्रा पति के वैरागी भए अर पुत्रनिके विदेश गए महा शोकवती भई, निरतर अश्रुपात डारैं, तिनके दु खकू देख भरत राज्य विभूति को विष समान मानता भया । अर केकई तिनकू दु खी देख, उपजी है करुणा जाके, पुत्रको कहती भई कि हे पुत्र ! तू राज्य पाया, बडे बडे राजा सेवा करै हैं परन्तु राम लक्ष्मण विना यह राज्य शोभै नाही सो वे दोऊ भाई

महाविनयवान उन विना कहा राज्य अर कहा सुख अर कहा देश की शोभा अर कहा तेरी धर्मज्ञता ? वे दोऊ कुमार अर वह सीता राजपुत्री सदा सुख के भोगनहारे पाषाणादिककर पूरित जे मार्ग ताविषै वाहन विना कैसै आवेंगे ? अर तिन गुण-समुद्रनिकी ये दोनो माता निरन्तर रुदन करै हैं सो मरणकू प्राप्त होयगी, तातै तुम शीघ्रगामी तुरग पर चढ शितावी जावो, उनको ले आवो, तिन सहित महासुखसो चिरकाल राज करियो अर मैं भी तेरे पीछे ही उनके पास आऊ हू । यह माता की आज्ञा सुन वहुत प्रसन्न होय ताकी प्रशसा कर अति आतुर भरत हजार अश्वसहित राम के निकट चला । अर जे रामके समीप वापिस आए हुते तिनकू सग ले चला आप तेज तुरग पर चढा, उतावली चालसे वन विषै आया । वह नदी अमराल वहती हुती सो तामे वृक्षनिके लठे गेर, वेडे बाघ क्षणमात्र मे सेना सहित पार उतरे, मार्ग विषै नर नारिनसो पूछते जाय जो तुम राम लक्ष्मण कही देखे ? वे कहै हैं, यहाँते निकट ही हैं । सो भरत एकाग्रचित्त चले गए । सघन वनमे एक सरोवर के तट पर दोऊ भाई सीता सहित वैठे देखे, समीप हैं धनुष बाण जिनके । सीताके साथ ते दोऊ भाई घने दिवसविषै आए । अर भरत छह दिनमे आया । रामकू दूरते देख भरत तुरगतै उतर पाय पियादा जाय राम के पायनि पर मूर्च्छित होय गया तव राम सचेत किया । भरत हाथ जोड सिर नवाय रामसू वीनती करता भया ।

हे नाथ ! राज्य देयवेकर मेरी कहा विडम्बना करी । तुम सर्व न्याय-मार्गके जाननहारे, महा प्रवीण मेरे या राज्यकरि कहा प्रयोजन ? तुम विना जीवेकर कहा प्रयोजन ? तुम महा उत्तम चेष्टाके धरणहारे मेरे प्राणनिके आधार हो । उठो, अपने नगर चलै । हे प्रभो ! मो पर कृपा करहु, राज्य तुम करहु, राज्य योग्य तुम ही हो, मोहि सुखकी अवस्था देहु । मै तिहारे सिर पर छत्र फेरता खडा रहूँगा अर शत्रुघ्न चमर ढोलेगा अर लक्ष्मण मत्रीपद धारेगा । मेरी माता पश्चातापरूप अग्निकर जरै है अर तिहारी माता अर लक्ष्मण की माता महाशोक करै है, यह बात भरत करै हैं ताही समय शीघ्र रथपर चढी अनेक सामतनिसहित महाशोककी भरी केकई आई अर राम लक्ष्मणकू उरसू लगाय बहुत रुदन करती भई । राम ने धैर्य बधाया ।

तव केकई कहती भई—हे पुत्र ! उठो, अयोध्या चलो, राज्य करहु, तुम विन मेरे सकल पुर वन के समान है । अर तुम महा वुद्धिमान हो, भरतकू सिखाय लेहु । बहुरि हम स्त्रीजन नष्ट वुद्धि है, मेरा अपराध क्षमा करहु । तव राम कहते भए—हे मात ! तुम वातनि विषैं प्रवीण हो, तुम कहा न

जानो हो कि क्षत्रियन का नियम है जो वचन न चूकैं, जो कार्य विचार्‌या ताहि और भांति न करैं। हमारे तात ने जो वचन कह्या सो हमकूं अर तुमकूं निवाहना, या वात विषैं भारत की अकीर्ति न होयगी। बहुरि भरतसूं कहा कि हे भाई! तू चिंता मत करै, तू अनाचारतैं शकै है सो पिता की आज्ञा अर हमारी आज्ञा पालवेतैं अनाचार नाही। ऐसा कहकर वनविषैं सब राजनिके समीप भरत का श्रीराम ने राज्याभिषेक किया अर केकईकूं प्रणाम कर बहुत स्तुति कर वारम्वार सभाषण कर भरतकूं उरसूं लगाय बहुत दिलासा करी, नीठितैं विदा किया। केकई अर भरत राम लक्ष्मण सीता के समीपतैं पाछे नगरकूं चाले, भरत राम की आज्ञा प्रमाण प्रजा का पिता समान हुआ। राज्यविषैं सर्व प्रजाकूं सुख, कोई अनाचार नाही, ऐसा निःकंटक राज्य तौहू भरत का क्षणमात्र राग नाही। तीनो काल श्री अरनाथ की वंदना करै है अर मुनिन के मुखतैं धर्म श्रवण करै, द्युति भट्टारक नामा जे मुनि, अनेक मुनि करैं हैं सेवा जिनकी, तिनके निकट भरत ने यह नियम लिया कि राम के दर्शन मात्रतैं ही मुनिव्रत धारूंगा। तब मुनि कहते भए कि— हे भव्य! कमल सारिखे है नेत्र जिनके, ऐसे राम जौ लग न आवैं तौ लग तुम गृहस्थ के व्रत धारहु। जे महात्मा निर्ग्रन्थ है तिनका आचरण अति विषम है सो पहिले श्रावक के व्रत पालने तासूं यति का धर्म सुखसूं सधै। जब वृद्ध अवस्था आवेगी तब तप करेंगे, यह वार्ता कहते हुवे अनेक जडबुद्धि मरणकूं प्राप्त भए। महा अमोलक रत्न समान यति का धर्म, जाकी महिमा कहने विषैं न आवै ताहि जे धारैं हैं तिनकी उपमा कौन की देहि। यति के धर्मतैं उतरता श्रवक का धर्म है जे प्रमाद रहित करैं हैं ते धन्य हैं।

यह अणुव्रत हू प्रबोध का दाता है। जैसैं रत्नद्वीप विषैं कोऊ मनुष्य गया अर वह जो रत्न लेय सोई देशांतर विषैं दुर्लभ है तैसे जिनधर्म नियमरूप रत्ननिका द्वीप है, ता विषैं जो नियम लेय सोई महाफल का दाता है। जो अहिंसारूप रत्नकूं अंगीकारकर जिनवरकूं भक्तिकर अरचैं सो सुर नरके सुख भोग मोक्षकूं प्राप्त होय। अर जो सत्यव्रतका धारण मिथ्यात्व का परिहारकर भावरूप पुष्पनिकी माला कर जिनेश्वरकूं पूजैं हैं, ताकी कीर्ति पृथ्वी विषैं विस्तरै है अर आज्ञा कोई लोप न सकै। अर जो परधन का त्यागी जिनेंद्रकूं उरविषैं धारैं वारवार जिनेंद्रकूं नमस्कार करै, वह नव निधि चौदह रत्न का स्वामी होय अक्षयनिधि पावै। अर जो जिनराज का मार्ग अंगीकार कर परनारी का त्याग करै सो सबके नेत्रनिकूं आनंदकारी मोक्ष-लक्ष्मी का वर होय। अर जो परिग्रह का प्रमाणकर संतोष धर जिनपतिका ध्यान करै सो

लोकपूजित अनंत महिमाकू पावै। अर आहार दान के पुण्य कर महासुखी होय, ताकी सब सेवा करै। अर अभयदान कर निर्भय पद पावै, सर्व उपद्रवतैं रहित होय। अर ज्ञानदान कर केवलज्ञानी होय सर्वज्ञपद पावै। अर औषधि-दान के प्रभाव कर रोगरहित निर्भयपद पावै। अर जो रात्रिकू आहार का त्याग करै सो एक वर्ष विषै छह महीना उपवास का फल पावै, यद्यपि गृहस्थपद के आरंभ विषै प्रवर्तै है तौ हू शुभ गति के सुख पावै।

जो त्रिकाल जिनदेव की वंदना करै ताके भाव निर्मल होय, सर्व पापका नाश करै। अर जो निर्मल भाव रूप पहुपनिकर जिननाथकू पूजै सो लोकविषै पूजनीक होय। अर जो भोगी पुरुष कमलादि जल के पुष्प तथा केतकी मालती आदि पृथ्वी के सुगंध पुष्पनिकर भगवानकू अरचै सो पुष्पक विमानकू पाय यथेष्ट क्रीडा करै। अर जो जिनराज पर अगर चंदनादि धूप खेवै सो सुगंध शरीर का धारक होय। अर जो गृहस्थी जिनमंदिर विषै विवेकसहित दीपोद्योत करै सो देवलोक विषै प्रभाव संयुक्त शरीर पावै। अर जो जिनभवन विषै छत्र चमर झालरी पताका दर्पणादि मंगलद्रव्य चढावै अर जिनमंदिरकू शोभित करै सो आश्चर्यकारी विभूति पावै। अर जो जल-चंदनादितैं जिनपूजा करै सो देवनिका स्वामी होय, महानिर्मल सुगंधमय शरीर जे देवांगना तिनका वल्लभ होय। अर जो नीरकर जिनेंद्र का अभिषेक करै सो देवनिकर मनुष्यनितैं सेवनीक चक्रवर्ती होय, जाका राज्यभिषेक देव विद्याधर करै। अर जो दुग्धकरि अरहंत का अभिषेक करै सो क्षीरसागर के जलसमान उज्जवल विमान विषै परम कांति धारक देव होय बहुरि मनुष्य होय मोक्ष पावै। अर जो दधिकर सर्वज्ञ वीतरागका अभिषेक करै सो दधि समान उज्जवल यशकू पायकर भवोदधिकू तरै। अर जो घृतकर जिननाथ का अभिषेक करै सो स्वर्ग विमान मे महा बलवान देव होय परंपराय अनंत वीर्य कू धरै। अर जो ईख-रसकर जिननाथ का अभिषेक करै सो अमृत का आहारी सुरेश्वर होय नरेश्वर पद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर पद पावै। अभिषेक के प्रभावकर अनेक भव्य जीव देव अर इन्द्रनिकरि अभिषेक पद पावते भए, तिनकी कथा पुराणनि मे प्रसिद्ध है। जो भक्ति कर जिनमंदिर विषै मयूरपिच्छादिककर बुहारी देय सो पापरूप रजतैं रहित होय परम विभूति अर आरोग्यता पावै।

अर जो गीत नृत्य वादित्रादिकर जिनमंदिर विषै उत्सव करै सो स्वर्ग विषै परम उत्साहकू पावै अर जो जिनेश्वर के चैत्यालय करावै सो ताके पुण्य की महिमा कौन कह सकै, सुर मंदिर के सुख भोग परंपराय अविनाशी धाम

पावैं। अर जो जिनेंद्र की प्रतिमा विधि पूर्वक करावै सो सुर नर के सुख भोग परम पद पावैं। व्रत विधान तप दान इत्यादि शुभ चेष्टनिकरि प्राणी जे पुण्य उपार्जे हैं सो समस्त कार्य जिनबिंब कराने के तुल्य नाही। जो जिनबिंब करावै सो परपराय पुरुषाकार सिद्ध पद पावै। अर जो भव्य जिनमदिर के शिखर चढ़ावै सो इद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिक सुख भोग लोक के शिखर पहुँचै। अर जो जीर्ण जिनमदिरनिकी मरम्मत करावै सो कर्मरूप अजीर्णकू हर निर्भय निरोग पद पावैं। अर जो नवीन चैत्यालय कराय जिनबिंब पधराय प्रतिष्ठा करै सो तीन लोक विषै प्रतिष्ठा पावैं। अर जो सिद्धक्षेत्रादि तीर्थनिकी यात्रा करैं सो मनुष्य जन्म सफल करैं। अर जो जिनप्रतिमा के दर्शन का चितवन करै ताहि एक उपवास का फल होय, अर दर्शनको उद्यम का अभिलाषी होय सो बेलाका फल पावैं। अर जो चैत्यालय जायवे का आरभ करै, ताहि तेला का फल होय। अर गमन किए चौला का फल होय। अर कछुएक आगे गए पच उपवासका फल होय, आधी दूर गए पक्षोपवास का फल होय अर चैत्यालय के दर्शन तें मासोपमास का फल होय। अर भाव भक्ति कर महास्तुति किए अनत फलकी प्राप्ति होय। जिनेद्रकी भक्ति समान और उत्तम नाही। अर जो जिनसूत्र लिखवाय ताका व्याख्यान करै करावै, पढै पढ़ावै, सुनै सुनावै, शास्त्रनिकी तथा पडितनिकी भक्ति करैं, वे सर्वाग के पाठी होय केवल पद पावैं। जो चतुर्विध सघ की सेवा करै सो चतुर्गति के दुख हर पचमगति पावै। मुनि कहै हैं—हे भरत! जिनेन्द्र की भक्ति अर कर्म क्षय होय भए अक्षयपद पावैं। ये वचन मुनिके सुन राजा भरत प्रणामकर श्रावक का व्रत अगीकार किया। भरत वहुश्रुत अतिधर्मज्ञ महाविनयवान श्रद्धावान चतुर्विध सघकू भक्ति कर अर दुखित जीवनिकू दयाभाव कर दान देता भया। सम्यग्दर्शन रत्न कू उर विषै धारता अर महासुन्दर श्रावक के व्रत विषै तत्पर न्यायसहित राज्य करता भया।

भरत गुणनिका समुद्र ताका प्रताप अर अनुराग समस्त पृथ्वी विषैं विस्तरता भया। ताके देवागना समान राणी तिन विषै असक्त न भया, जल मे कमल की न्याई अलिप्त रहा। जाके चित्त मे निरतर यह चिता वरते कि कव यति के व्रत धरू, निर्ग्रन्थ हुआ पृथिवीविषैं विचरू। धन्य हैं वे धीर पुरुष जे सर्व परिग्रह का त्याग कर तप के बल कर समस्त कर्मनिक भस्मकर सारभूत जो निर्वाण का सुख सो पावैं हैं। मैं पापी ससार विषै मग्न प्रत्यक्ष देखू हूँ जो यह समस्त ससार का चरित्र क्षणभगुर है। जो प्रभात देखिये सो मध्याह्नविषै नाही। मैं मूढ होय रहा हू। जे रक विषया-

भिलाषी ससार मे राचैं हैं तो खोटी मृत्यु मरै हैं, सर्प व्याघ्र गज जल अग्नि शस्त्र विद्युत्पात शूलारोपण असाध्य रोग इत्यादि कुरीतितैं शरीर तजेंगे। यह प्राणी अनेक सहस्रो दु ख का भोगनहारा ससारविषै भ्रमण करै है। बडा आश्चर्य है कि यह अल्प आयु मे प्रमादी होय रहा है। जैसैं कोई मदोन्मत्त क्षीरसमुद्र के तट सूता तरगो के समूह से न डरै तैसैं मैं मोहकर उत्पन्न भव-भ्रमण से नाही डरू हूँ, निर्भय होय रहा हूँ। हाय हाय! मैं हिंसा आरम्भादि अनेक जे पाप तिनकर लिप्त राज्य कर कौनसे घोर नरक मे जाऊँगा? कैसा है नरक, बाण खड्ग चक्र के आकार तीक्ष्ण पत्र हैं जिनके ऐसे शाल्मलीवृक्ष जहा हैं अथवा अनेक प्रकार तिर्यञ्चगति ता विषै जाऊँगा। देखो जिनशास्त्र सारिखा महा ज्ञानरूप शास्त्र ताहूको पाय करि मेरा मन पापयुक्त होय रह्या है। निस्पृह होकर यति का धर्म नाही धारै है सो न जानिए कौन गति जाना है। ऐसी कर्मनिकी नाशनहारी जो धर्मरूप चिंता ताकू निरतर प्राप्त हुवा जो राजा भरत सो जैनपुराणादि ग्रन्थनिके श्रवण विषै आसक्त है, सदैव साधुनकी कथाविषै अनुरागी रात्रि दिन धर्म मे उद्यमी होता भया।

इति श्रीरविषेणाचार्य विचरित महापद्मपुराण सस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै दशरथ का वैराग्य, राम का विदेश गमन अर भरत का राज्य वर्णन करने वाला बत्तीसवा पर्व पूर्ण भया ॥३२॥

———

हरिवंश-पुराण

-

रचनाकाल —सवत् १८२९ चैत्र सुदी पूर्णिमा

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

अथ ग्रन्थ की उत्पत्ति

अथानन्तर—मैं हरिवश नाम जो पुराण महा मनोहर उसे प्रकट करता हूँ, कैसा है यह पुराण ससार विषे कल्पवृक्ष समान उत्कृष्ट है। कैसा है कल्पवृक्ष औंडी है जड जिसकी और कैसा है यह पुराण अति अगाध है। जड जिसकी महादृढ है। जिसकी जड जिनशासन है। और कल्पवृक्ष और पुराण दोनो पृथ्वी विषे प्रसिद्ध हैं और कल्पवृक्ष तो बहुशाखा कहिये अनेक शाखा उन कर शोभित है और यह पुराण बहुशाखा कहिये अनेक कथा उन कर शोभित है। और कल्पवृक्ष विस्तीर्ण फलका दाता है और यह पुराण महा-पवित्र पुण्य फल का दाता है और आप पवित्र है और कल्पवृक्ष भी पवित्र है। यह हरिवश पुराण श्रीनेमिनाथके चरित कर महा निर्मल है ॥५१॥ जैसे द्युमणि कहिये सूर्य उसकी ज्योति कर प्रकाशे पदार्थ तिनको दीपक तथा मणि तथा खद्योत कहिये (पटवीजना) तथा विजुली यह लघु वस्तु भी अपनी शक्ति प्रमाण यथायोग्य प्रकाश करे हैं ॥५२॥ तैसे वडे पुरुष केवली श्रुतकेवली उनकर प्रकाशित जो यह पुराण उसके प्रकाशि विषे अपनी शक्ति प्रमाण हम सारिखे अल्प बुद्धि भी प्रवर्ते है, जैसे सूर्य के प्रकाशे पदार्थो को कहा दीपादिक न प्रकाशें तैसे केवली श्रुतकेवलीके भाषे पुराण को कहा हम सारिखेन प्ररूपें अपनी शक्ति अनुसार निरूपण करें ॥५३॥ द्रव्य प्रछन्न १ क्षेत्रप्रछन्न २ कालप्रछन्न ३ भावप्रछन्न ४। द्रव्यप्रछन्न कहिये कालाणु ॥१॥ और क्षेत्र-प्रछन्न कहिये, आलोकाकाश २ और कालप्रछन्न कहिये अनागत काल ३ और भाव प्रछन्न कहिये, अर्थ पर्यायरूप पट्गुणी हानिवृद्धि ४ ऐसे जे अगम्य पदार्थ आचार्यरूप जो सूर्य उन्होने किया है प्रकाश जिनका उनको सकुमारता कर युक्त जो यह मन सो स्थूल पदार्थो को कैसे लोक वाह्यदृष्टि करने से देखे तैसे देखे हैं। द्रव्य क्षेत्रादिक के भेदो से पाच प्रकार के भेद हैं जिसका ऐसा यह आगम पुराण पुरुषो का भाषा होने से प्रमाण है ॥५५॥ इस ग्रथ के मूल कर्ता आप श्री तीर्थंकर देव और उत्तर ग्रन्थ कर्ता गौतम नामा गणधरदेव और उत्तरोत्तर ग्रथकर्ता अनेक आचार्य वे सब ही सर्वज्ञदेव के अनुसार कथन करण हारे हमको प्रमाण हैं ॥५७॥ उन केवली और पाच चतुर्दश पूर्वके धारी श्रुत केवली और ग्यारह अङ्ग दश पूर्वके पाठी ग्यारह और एकादश अङ्ग के धारक पाच और एक आचारागके धारक चार और यह पाच प्रकार के मुनि पञ्चम काल के आदि विषे होते भए तिनमे श्री वर्द्धमान के पीछे तीन केवली भए। इन्द्रभूत कहिये गौतम और सुधर्माचार्य और जम्बू स्वामी अतिम केवली भए। यह तीन तो केवली भए और विष्णु १, नन्दिमित्र २,

अपराजित ३, गोवर्द्धन ४, भद्रबाहु ५, ये पाच चतुर्दश पूर्वके धारक श्रुत-केवली भए। और विशाखाचार्य १, प्रोष्टलक्ष २, त्रिय ३, जय ४, नाग ५, सिद्धार्थ ६, धृतिषेण ७, विजय ८, बुद्धिल ९, गगदेव १०, धर्मसेन ११, ये ग्यारह अ ग और दश पूर्वके पाठी भए ॥६३॥ और नक्षत्र १ यश पाल २, पाण्डु ३, ध्रुवसेन ४, और कम्पाचार्य्य ५ ये पाँच मुनि ग्यारह अ ग के पाठी भए ॥६४॥ और सुभद्र १, यशोभद्र २, यशोबाहु ३, लोहा-चार्य ४, ये चार मुनि एक आचाराग के धारक भये ॥६५॥ ये पूर्वाचार्य और भी जो आचार्य उनकर विस्तार यह एक देश आगम उसका एक देश व्याख्यान करिये है ॥६६॥ यह हरिवश पुराण अपूर्ण कहिये आश्चर्यकारी अर्थ थकी तो बहुत है शब्द थकी अल्प है इसमे शास्त्र के विस्तार के भय कर अल्परूप सारवस्तु का सग्रह करिए है ॥६७॥ मन वचन कायकी शुद्धता को धारें जे भव्य जीव सदा जैन सूत्र का अभ्यास करें उनको वक्तापने कर और श्रोतापने कर यह पुराण का अर्थ कल्याण का कर्ता होय है। बाह्य और आभ्यन्तर के भेद कर जो तप की विधि है सो दो प्रकार की है उस विषे स्वाध्याय नामा परम तप है क्योकि जो यह स्वाध्याय नामा तप है सो अज्ञा-नता को निवारे है ॥६९॥ इससे परम पुरुषार्थ का करण हारा यह पुराण का अर्थ इस देश काल के जानन हारे पण्डित उन कर व्याख्यान करणे योग्य है। और जो मत्सर भाव रहित श्रद्धावान पुरुष हैं उन कर सुनने योग्य है मत्सर कहिये द्वेषक व्याख्यान करणे योग्य जो भाव सो सत्पुरुषो को त्याज्य है ॥७०॥

आगे इस पुराण विषे आठ बडे अधिकार हैं सो अनुक्रम से कहेगे इन विषे प्रथम ही त्रैलोक्यका कथन ॥ १ ॥ और राजाओ के वश की उत्पत्ति ॥ २ ॥ और हरिवश का निरूपण ॥ ३ ॥ और वसुदेव का चरित्र ॥४॥ और नेमिनाथका चरित्र ॥ ५ ॥ और यादवो का द्वारिका विषे निवास ॥६॥ और नारायण प्रतिनारायण के युद्ध का वर्णन ॥ ७ ॥ और नेमिनाथ के निर्वाण का निरूपण ॥ ८ ॥ यह आठ महा अधिकार पूर्वाचार्यों ने सूत्रो के अनुसार प्ररूपे सो यह अवातर अधिकारो कर शोभित है ॥७३॥ सग्रह कर विभाग कर वस्तु के विस्तार कर इस जिनशासन विषे उपदेश होय हैं इस-लिये अधिकारो के विभाग कहिए हैं ॥७४॥ प्रथम ही वर्द्धमान जिनेश्वर का धर्म तीर्थ प्रवर्तन। फिर गणधरादिक गणो की सख्या। फिर राजगृह विषे आगमन। और गौतम स्वामी से राजा श्रेणिक का प्रश्न। और क्षेत्र कहिए त्रैलोक्य। और काल कहिए षट्काल तिनका निरूपण। फिर कुलकरोकी

उत्पत्ति और ऋषभजी की उत्पत्ति और क्षत्रियादिक के वंश का वर्णन । फिर हरिवंश की उत्पत्ति । और हरिवंश विषे मुनिसुव्रतनाथ की उत्पत्ति ।।७७।। फिर दक्षप्रजापतिका चरित्र । फिर राजा वसु का वृतांत । फिर अंधकवृष्टि का दीक्षा । और समुद्रविजय का राज । और वसुदेव का सौभाग्य वर्णन और उपाय कर वसुदेव का घर से विदेश को निकसना ।।६६।। और वसुदेव के राणी सीमा और विजयसेना का लाभ फिर वनगज का वश करणा और विद्याधर की पुत्री स्यामा का संयोग ।।८०।। फिर वसुदेव को अंगारक विद्याधर का ले उडना और चम्पापुरी विषे डारना और गंधर्वसेना का लाभ विष्णु कुमार मुनि का चरित्र फिर चारुदत्त सेठी की कथा और उसको मुनि का दर्शन और वसुदेव के नीलयशाराणी का लाभ और सोमश्री का लाभ ।।८२।। और देवकी की उत्पत्ति का कथन, और राजा सौदास का कथन । और वसुदेव के कपिला राजकन्या का लाभ और पद्मावती का लाभ और राणी चारुहासिनी और रत्नवती की प्राप्ति और राजा सोमदत्त की पुत्री वेगवती का संगम और मदनवेगा का लाभ बालचन्द्रका अवलोकन तथा प्रियंगुसुन्दरी का लाभ, और गंधमती का समागम, प्रभावती की प्राप्ति और रोहिणी का स्वयंवर, उसके स्वयंवर विषे संग्राम और संग्राम विषे वसुदेव की जीत, और समुद्रविजयादिक बडे भाइयो से मिलाप ।।८६।। और बलभद्र की उत्पत्ति कंस का व्याख्यान और जरासिंधु की आज्ञा से राजा सिंहरथ का बंधन ।।८७।। और कंस को जरासिंध की पुत्री जीवंजशाका लाभ और राज्य की प्राप्ति उग्रसेन पिता का बंधन फिर वसुदेव से देवकी का विवाह ।।८८।। भिर कंस का बडा भाई जो अतिमुक्त उसके आदेश कर कंस की आकुलता का होना जो देवकी के पुत्र कर मेरा मरण है फिर वसुदेव सो प्रार्थना करना जो देवकी की प्रसूति हमारे घर होय ।।८६।। सो वसुदेव प्रमाण करी फिर वसुदेव का अतिमुक्त मुनि से प्रश्न, और देवकी अष्ट पुत्रो के पूर्वभव का श्रवन और पाप का नाश करण हारा श्री नेमिनाथ के चरित्र का श्रवण ।।६०।। फिर श्रीकृष्ण की उत्पत्ति और गोकुल विषे बाल लीला और बलदेव के उपदेश से सभा शास्त्रो का ग्रहण ।।६१।। फिर वसुदेव के धनुष रत्न का आरोपण और यमुना विषे नागकुमार का जीतना फिर हाथी को जीतना और चाणूरमल्ल का निपात, और कंस का विध्वंस ।।६२।। और उग्रसेन को राज और हरि का सत्यभामासो पाणिग्रहण और तासे अधिक प्रीति ।।६३।। और जीवजशा का जरासंध पै जाना और विलाप करना जरासंध का यादवो पर रोष होना और बडी सेना भेजना रण विषे काल यवन का पराभव अपराजित का हरि के हाथ कर रण विषें मरण । और यादवो को परम हर्ष का उप-

जना और किसी का भय नहीं ॥९५॥ फिर शिवदेवी के नेमिनाथ की उत्पत्ति जब गर्भ मे आये तब षोडश स्वप्न का देखना और पति से स्वप्न का फल पूछना, पति कही तुम्हारे श्रीनेमिनाथ पुत्र होवेंगे ॥९६॥ फिर भगवान का जन्म और सुमेरु विषे जन्माभिषेक फिर बाल क्रीडा और जिनराज का प्रताप और जरासंध का यादवो पर आक्रमण, और यादवो का समुद्र की ओर गमन ॥९७॥ और मार्ग मे देवताओ ने जो माया दिखाई उसकर जरासन्ध पीछे फिरना फिर श्री कृष्ण का समुद्र के तीर दाभ की सेज पर तिष्ठ तेला करना ॥९८॥ और इन्द्र के वचन से गौतम नामा देवकर समुद्र का सङ्कोचना और कुवेर कर के द्वारिकापुरी का क्षणमात्र मे रचना फिर रुक्मणि का विवाह और सत्य भामा के देदीप्यमान भानुकुमार का जन्म और रुक्मणी के प्रद्युम्न का जन्म और पूर्वला वैरी जो धूमकेतु उस कर प्रद्युम्न का हरण ॥१००॥ विजयार्द्ध विषे प्रद्युम्न की स्थिति काल संवर विद्याधर के मंदिर मे और कृष्ण और रुक्मणी को प्रद्युम्न का खेद का निवारण प्रद्युम्न को षोडश लाभ की प्राप्ति और प्रज्ञप्ती और विद्या की प्राप्ति ॥१॥ और प्रद्युम्न का काल संवर से संग्राम, और नारद के आग्रह कर माता पिता के निकट आगम और संबूकुमार की उत्पत्ति और प्रद्युम्न की बालक्रीडा और पिता का पिता जो वसुदेव उसने प्रद्युम्न से प्रश्न किया ॥ २ ॥ और प्रद्युम्न ने अपने परिभ्रमण का सकल व्याख्यान किया । फिर यादवो के सकल कुमारो का वर्णन, फिर यादवो की वार्ता के सुनने से जरासन्ध का कोप और यादवों के निकट दूत पठावना उसके आगमन से यादवो की सभा विषे क्षोभ और दोनो सेनाओ का निकसना । और विजयार्द्ध विषे वसुदेव का आगमन, विद्याधरो का क्षोभ, वसुदेव का पराक्रम ॥४॥ और अक्षोहिणी का प्रमाण और रथी अतिरथी अर्द्धरथी जे राजा महासर्थ तिनका कथन ।५। और जरासंध ने चक्रव्यूह रची, उसके भेदिवे अर्थ कृष्ण के कटक विषे गरुड व्यूह की रचना और कृष्ण के गरुडवाहिनी विद्या की प्राप्ति और बलिदेव को सिंहवाहनी विद्या की प्राप्ति और नेमिनाथ के द्विमात भाई रथनेमि और कृष्ण के भाई अनावृष्टि और अर्जुन इन चक्रव्यूह भेद्या, और कृष्ण की सेना विषे मुख्य पांडव । और जरासन्ध की सेना विषे मुख्य धृतराष्ट्र के पुत्र जो कौरव उनमे परस्पर महायुद्ध फिर कृष्ण जरासन्ध का महायुद्ध ॥८॥ उस समय कृष्ण के हाथो मे चक्र का आवना और जरासन्ध का वध, वसुदेव की विजय सो वसुदेव को विजयार्द्ध विषे विद्याधारी प्रगट भई और कृष्ण का कोटि शिला का उठावना और वसुदेव का विजयार्द्ध से आगमन और बलदेव वसुदेव की दिग्विजय और देवो पुनीत रत्न की प्राप्ति ॥१०॥ और दोनो

भाईयो को राज्याभिषेक और द्रोपदी का हरण फिर घातकी खड मे कृष्ण सहित पाडव जाय द्रौपदी ल्याये ॥११॥ फिर नेमिनाथ के शरीर के वल का वर्णन व नेमिनाथ के विवाह का हर्ष ॥१२॥ फिर जीवो को वन्ध से छुडावना और नेमिनाथ की दीक्षा, और केवलज्ञानका उपजना, देवो का आगमन समवसरण की विभूति का वर्णन, राजमती को प्राप्ति तप की। और यति श्रावक के धर्म का उपदेश और भगवान का तीर्थ विहार और देवकी के षट् पुत्रो का सयम ॥१४॥ फिर भगवान् का गिरनार गिरि विषे आगमन और देवकी के प्रश्न का उत्तर और रुक्मणी सत्यभामा आदि आठो पटराणियो के भवातर का कथन ॥१५॥ फिर राजकुमार का जन्म और उसकर दीक्षा ग्रहण और वसुदेव टार नव भाइयो का वैराग्य और त्रिषष्ठि शलाका के पुरुषो की उत्पत्ति का वर्णन और जिनराजा के अन्तराल का कथन और वलभद्र का प्रश्न। प्रद्युम्न की दीक्षा और रुक्मणी आदि कृष्ण की स्त्रियो का और पुत्रो का सगम और द्वीपायन मुनि के क्रोध से द्वारावती का नाश ॥१८॥ और वलभद्र नारायण का द्वारका से निकसना और कुटम्ब का भस्म होना और दोनो भाइयो का शोक सहित कौशावी नगरी के वन विषे प्रवेश ॥१९॥ और वलभद्र का जल के अर्थ जाना और कृष्ण का अकेला रहना और विना जाने जरद कुमार के हाथ से छूटा जो बाण उसकर दैवयोग से हरि का परभव गमन करना ॥२०॥ उसकर जरदकुमार को शोक उपजना और वलभद्र के अति दुस्तर दुःख का उपजना फिर सिद्धार्थ देव के उपदेश से वलभद्र को वैराग्य उपजना तप धरना। और पाचवें स्वर्ग मे जाना और पाडवो को वैराग्य होना और गिरनार विषे नेमिनाथ का मुक्ति होना ॥२२॥ और पाचो पाडव महापुरुषो को उपसर्ग का जीतना, और जरदकुमार को दीक्षा लेना। और जरदकुमार की सन्तान से हरिवश का रहना और उनके वश के दीपक जे राजा जितशत्रु उनको केवल ज्ञान की प्राप्ति और जो राजा श्रेणिक हरिवश शिरोमणि उनका राजगृह विषे राज ॥२४॥ और वर्द्धमान भगवान का दीपमालिका के दिन निर्वाण गमन उससे देवो का वह दिन उत्सव रूप मानना। तब दीप्यमान दीपमालिका प्रसिद्ध भई और गणधरो का निर्वाण गमन यह हरिवश पुराण का विभाग सक्षेप कर कहा है।

अथानन्तर–भव्य जीव प्रसिद्धि के अर्थी विस्तार सहित व्याख्यान सुनें।२६। एक ही पुरुष का चरित्र सुना हुआ पाप का नाश करे और जो सर्व तीर्थेश्वर चक्रेश्वर हलधर उनका चरित्र भव्य जीव जे सुने उनका क्या पूछना, वह तो जन्म जन्म के पाप निवारे हैं जैसे महामेघ की बूद ही महा ताप का विच्छेद

करे तो समस्त लोक विषे व्याप रहे जे मेघ उनकी जो माला के समूह उनकी जो सहस्रधारा झरे उनकर आताप क्यो न दूर होय सर्वथा दूर होय ।।२७।। जो विवेकी जन हैं सो जिनमे वक्रमार्ग ऐसे लौकिक पुराण आतिरूप उनको तज कर जैन पुराण की पदवी महासरल कल्याण की करणहारी हितकारी उसे गहो, मोह ही है बाहुल्यता जिसमे ऐसी दिग्मूढता कहिये दिशा भूलपना उसे तजकर भव्य जीव शुद्ध मार्ग लेवो । जिन कहिये भगवान् वेई भये भास्कर कहिये सूर्य तिन कर प्रगट किया जो शुद्ध मार्ग महा विस्तीर्ण उसके होते सन्ते शुद्ध है दृष्टि जिसकी ऐसा सम्यक् दृष्टि सो खाडे विषे काहेको परै ।

भावार्थ——सूर्य के प्रकाश विना अन्ध पुरुष सकीर्ण मार्ग विषे खाडे मे पडे और सूर्य के उदय कर प्रगट भया मार्ग विस्तार्ण उस विषे दिव्य नेत्रो का धारक काहेको खाडे मे पडे ।।२८।।

इति श्री अरिष्टनेमिपुराण सग्रहे हरिवश जिनसेना चार्यस्य कृतौ सग्रहविभागवर्णन नाम प्रथम सर्ग ।।१।।

× × × × × ×

आठवां अधिकार ।

श्री नेमिनाथ का निर्वाण गमन

अथानन्तर—सर्व देवन के देव तीर्थ के कर्त्ता धर्मोपदेश कर भव्यन को कृतार्थ कर उत्तर दिशातै सोरठ की ओर गमन किया ।। १ ।। जब जिन रवि उत्तरायणते दक्षिणायन आये तब या तरफ पूर्वते उद्योत भयो ।। २ ।। अरहत पद की विभूति कर मडित महेश्वर जब दक्षिण को विहार किया तब वे दक्षिण के सर्व देश स्वर्ग की शोभा को धारते भये ।। ३ ।। भगवान भूतेश्वर निर्वाण कल्याणक आया है निकट जिनके सुर असुर नरक कर अर्चित गिरनार आय बिराजे ।। ४ ।। पूर्ववत् समवसरणकी रचना तहा भई देव दानव मानव तथा तिरयच सब ही प्रभु की दिव्य ध्वनि सुनते भये ।। ५ ।। श्री भगवान सम्यग्दर्शन चारित्र रूप जो महा पवित्र जिनेश्वर धर्म ताका व्याख्यान करते भये सो धर्म स्वर्ग मोक्ष के सुख का साधन है अर साधुन को प्रिय है ।। ६ ।। जैसा केवल ज्ञान के उदय विषे पहले धर्म का उपदेस दिया हुता तैसा ही विस्तार सहित निर्वाण कल्याणक का एक मास

रहा तव लग दिया ।। ७ ।। जैसे अग्नि का गुण उष्ण अर ऊर्ध जलन अर जल का गुण शीत अर पवन का गुण शीघ्र गमन और तिरछा गमन अर सूर्य का गुण प्रकाशपना अर आकाश का गुण अमूर्तत्व अर पृथ्वी का गुण अनेक वस्तु का धारण अर सहनशीलपना तैसे कृतार्थ जे जिनेन्द्र तिनका गुण धर्मोपदेश है ।। ६ ।। जैसे ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अतराय यह चार घातिया कर्म क्षय किये हुते तैसे योग का निरोध कर नाम गोत्र आयु अर वेदनीय इन चार अघातियानकाहू अन्त कर अनेक मुनिवरो सहित जिनवर सिद्ध लोक को सिधारे ।। १० ।। तब इन्द्र को आदि देय चतुर्निकायनके देव निर्वाण कल्याणक की पूजा करते भये ।। ११ ।। जब भगवान मुक्त होय तब देहवध रूप स्कध परमाणु होय जाय अनादि कालकी यह रीति है जैसे विजुरी विलाय तैसे जिनेश्वर का देह विलाय गया अर मायामयी शरीर रच कर इन्द्रादिक दाह क्रिया करते भये ।। १२ ।। अग्निकुमार भवनवासी देव तिनके इन्द्र के मुकुट ते प्रगट भई अग्नि ताकर जिनेन्द्र की देह का दाह भया ।। १३ ।। गध पुष्पादि मनोहर द्रव्यन कर प्रभू की पूजा कर देव अपने अपने स्थान गये । इन्द्र वज्रकर गिरनार गिर विर्षे सिद्ध सिला उकीर गया । वरदत्तादि मुनि को बदना कर इन्द्रादिक अर नरेंद्रादिक अपने अपने स्थान गये ।। १५ ।। अर समुद्रविजयादि नव भाई अर देवकी के छै पुत्र अर प्रद्युम्न शबु श्रीकृष्ण के पुत्र अर अनिरुद्ध प्रद्युम्न का पुत्र यह गिरनार गिरते जगत के शिखर गये सो भव्य जीवन कर बदनीक है गिरनार बडा तीर्थ है जहा अनेक भव्य जीव यात्रा को आवे हैं ।। १७ ।।

अथानन्तर—पाडव महाधीर प्रभु का सिद्ध लोक गमन सुन कर शत्रुञ्जय गिर विषे कायोत्सर्ग धर तिष्ठे ।। १८ ।। तहा दुर्योधन के वश का यवरोधन पापी आय कर वैर के जोग ते महा दुस्सह उपसर्ग करता भया ।। १६ ।। लोहे के मुकुट अति प्रज्वलित इनके सिर पर धरे अर लोहे के कडे अर कटि सूत्रादि लोहे के आभरण अग्नि मई इनको पहराये ।। २० ।। तिन कर दाहका उपसर्ग अति रौद्र होता भया परन्तु वे महावीर मुनि धीर कर्मके विपाक के जानन होरे कर्म के क्षय करने को समर्थ दाह का उपसर्ग हिम हिम समान शीतल मानते भये ।। २१ ।। तिनमे युधिष्ठर भीम अर्जुन यह तीनो साधु क्षपक श्रेणी विर्षे आरूढ होय शुक्ल ध्यान कर अष्टम भूमि जो निर्वाण ताको पधारे अन्त कृत केवली अविनाशी भये ।। २२ ।। अर नकुल सहदेव ने उपशम श्रेणी माडी हुती सो ग्यारहवा गुणठाण से फिर गिर चौथे गुणठाणे आय देह तज सर्वार्थसिद्धि पधारे । तहाते चय मनुष्य होय जगत्‌के

मुकुट मणि होंहिगे ।। २३ ।। वडे भाइनके आताप देख इनका चित्त कुछ यक अथिर भया अर अन्य हू भव्य जीव कंइक तद्भव मोक्षगामी शुद्ध रत्नत्रय के धारक मोक्ष प्राप्त भये अर कईयक स्वर्गवासी देव भये सो भवधर अभय पद पावेंगे ।। २४ ।। अर नारद भी आयु पूर्ण कर परभव पधारे । भवान्तर मे भवरहित होंहिगे ।। २५ ।।

अथानन्तर—वलदेव स्वामी तु गीगिर शिखर पर नाना प्रकार के दुर्द्धर तप किये एक उपवास दोय उपवास तीन उपवास, पक्ष उपवास छ मासोपवास कर शरीर वहुत सोख्या अर कषाय सोखे अर धैर्य पोख्या ।। २७ ।। नगर ग्रामादि विषें तो गमन निवारा ही हुता आहार के अर्थ कातार चर्या धारी हुती सो वन विषें विहार करते लोकोने देखे, मानो साक्षात् चद्रमा ही है ।। २८ ।। उनकी वार्ता पुर ग्रामादि विषे प्रसिद्ध भई सो दुर्जन भूपति वलदेव के समाचार सुन कर शका मान नाना प्रकार के आयुध धर उपसर्ग करने को आये तव सिद्धार्थ देव उनको ऐसी माया दिखाई वे जहा देखे तहा दीखें ।। ३० ।। मुनि के चरणनके समीप सिंहनको देख दुष्ट राजा मुनिकी सामर्थ्य जान प्रणाम कर शांत रूप होय गये ।। ३१ ।। तवमे वलदेव को लोग नरसिंह मानते भये दुष्टन को नरसिंह रूप भासे वे महा मुनि सौ वर्ष तप कर चार प्रकार आराधना आराध पाचमा ब्रह्म नामा स्वर्ग तहा पदमोत्तर विमान विषे ब्रह्मेंद्र भये ।। ३३ ।। वह विमान रतनमयी दैदीप्यमान महा-मनोहर देव देवियो के समूह कर मडित सुन्दर हैं मन्दिर अर उपवन जा विषे ।। ३४ ।। ऐसे रमणीक विमान विषे महा कोमल उत्पादक सज्या ता विषे हलधर मुनिवर का जीव ब्रह्मेंद्र भया । जैसे समुद्र विषे महा मणि उपजे तैसे स्वामी स्वर्ग विषे उपजे ।। ३५ ।। आहार कहिये कर्म वर्गणाका आकर्षण अर वैक्रियक शरीर अर पाच इन्द्री अर श्वासोश्वास अर भाषा अर मन इन षट पर्याप्ति तत्काल पूरे कर वस्त्राभरण मडित सेज पर विराजे नव यौवन महा सुन्दर देवन के राजा वह स्वर्ग सपदा देख अर देवागनान के गीत सुन अर सव देवन को नम्रीभूत देख मनमे विचारी यह सव लोग मेरा मुख विलोके हैं मो विषे अनुरागी हैं अर या लोक के सकलही चन्द्र सूर्य हूतैं अधिक ज्योतिवन्त हैं ।। ३८ ।। यह कौन मनोहर देश है यहा के सव लोक हर्षित हैं अर मैं कौन हू जो यहा का अधिपति भया हूँ अर मैं कौन धर्म उपार्ज्या जो ऐसा उत्तम भव पाया है ।। ३९ ।। तव वहा के जो मुख्य देव हैं तिन विनती करी जो यह पाँचवा ब्रह्म नामा स्वर्ग है । अर आप ब्रह्मेंद्र होय यहा सवनके स्वामी भये हो महा तप कर यहा आय उपजे हो तव आप अवधि

कर सब वृत्तान्त जाना ।।४१।। पूर्व भवका सब चरित्र प्रत्यक्ष जाना अर देव इनका अभिषेक करावते भये अर इन्द्रपदकी विभूति दृष्टिगोचर करी ।।४२।। अर वासुदेवसे अधिक है प्रेम जिनका सो जाय कर भाईसे मिले परस्पर अवलोकन कर दोऊके हर्ष उपज्या वासुदेव कही आपा दोऊ मनुष्य भव पाय वीतराग का धर्म आराध केवल प्रगट कर मोक्ष पावेंगे। अर द्वारिकाके दाह कर अर यदुवशके क्षय कर लोकापवाद भया सो तुम ऐसा करहु जो भरतक्षेत्र विषें मेरी मूर्त्ति शख चक्र गदा पद्मादि कर शोभित लोग पूजें यह वचन वासुदेवके उरमे धार वलदेव याही भाति करते भये देवनका किया कहा न होय ।।४६।। ठौर ठौर पुर ग्रामादि विषें वासुदेवके मन्दिर कराय तिनकी सेवाकी विधि वताय वलदेव स्वर्ग विषें जाय जिनेश्वरकी सेवा करते भये ।।४७।। अनेक देव अर देवी तिन कर मडित स्वर्गके अधिपति सुख भोगते भये। यह कथा गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कही फिर कहे हैं—हे श्रेणिक ! यह स्नेही जगतके जीवनको जगत विषे भ्रमण करावे है स्नेहके योग कर जहा मित्र होय तहा जाय कर स्नेहकी अधिकतासे आपको सुख प्राप्त भये हैं ते न भोगवे अर दुखका उद्यमी होय तातें यह ससारका स्नेह ही मोक्षके सुखका विघ्न करनहारा है ।।४६।। श्री नेमिनाथ जिनेंद्रका तीर्थ महा मोहका विच्छेद करन हारा ता विषे वरदत्त नामा मुनि केवली भये हरिवश विषें जरत्कुमार राजा राजकी धुराके धोरी भये ।।५०।।

इति श्री अरिष्टनेमि पुराण सग्रहे हरिवशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगवन्निर्वाणवर्णनो नाम पचषष्टितम सर्ग ।।६५।।

अथानन्तर—राजा जरत्कुमार राज्य करे ताके राज्यमें प्रजा आनन्दको प्राप्त होती भई राजा महा प्रतापी जिनधर्मी ताके राजको लोग अति चाहे ।।१।। सो जरत्कुमारने राजा कलिगकी पुत्री परनीताके राजवशकी ध्वजा समान वसुध्वज नामा पुत्र भया ।।२।। ताहि राजका भार सौंप जरत्कुमार मुनि भये सत पुरुषनके कुलकी यही रीति है पुत्र को राज देय आप चारित्र धारे ।।३।। फिर वसुध्वजके सुवसु नामा पुत्र भया सो चन्द्रमा समान प्रजाको प्रिय राजा वसु सारिखा प्रतापी होता भया ।।४।। अर वसुके भीम वर्मा भया कलिंग देशका पालक अर ताके वशमे अनेक राजा भये ।।५।। फिर ताही वशमे हरिवशका आभूषण राजा कपिष्ट भया अर ताके अजातशत्रु भया ताके शत्रुकेन भया। अर ताके जितार नामा पुत्र भया ।।६।। ताके जितशत्रु भया सो हे श्रेणिक ! ताहि तू कहा न जाने है जो राजा सिद्धार्थ महावीर स्वामीके पिताकी छोटी बहन परना महा प्रतापवान शत्रु मडलका जीतन हारा जगत

विषें प्रसिद्ध भया । श्री भगवान महावीरका फूफा सो प्रभुका जन्म भया तब कुण्डलपुर आया । सो राजा सिद्धार्थने बहुत सन्मान किया ॥८॥ राजा जितशत्रु महा जिनधर्मी इन्द्र समान पराक्रमी ताके यशोदा नाम रानी ताके अशोकवती नामा पुत्री सो यश अर दया कर महा पवित्रताका अनेक राजकन्या सहित श्रीमहावीर से विवाह मगल वाछता भया यह हर्ष देखने के मनोरथ रूप विषें आरूढ था सो भगवान वीतराग कहा विवाह करें जे स्वात्मानुभूति रूप सिद्धिके करन हारे तिनके स्त्रीका कहा प्रयोजन ? जब तीर्थेश्वर तप कल्याणकको प्राप्त भये तब वे राजकन्या आर्यका होय गई अर भगवान स्वयभू जब केवल कल्याणक विषे जगतके तारवे अर्थ विहार किया तब राजा जितशत्रु राज तज मुनि राज भया महातप विषे प्रवर्ता ॥१०॥ सो तपके प्रभावकर जितशत्रुके केवल ज्ञान प्रगट भया मनुष्य भवका यही फल है जो केवल पाय मुक्ति जाय ॥११॥ हे श्रेणिक यह कथा हरिवशकी कथा तोहि सक्षेपमे कही यह कथा लोक विषे प्रसिद्ध है अर चोबीस तीर्थेश्वर अर बारह चक्रेश्वर अर नव बलदेव नव वासुदेव नव प्रति वासुदेव यह त्रिषष्टि शलाकाके महा पुरुष तिनका चारित्र तोहि कहा सो यह पुराण पद्धति तोहि कल्याणके अर्थ होहु ॥१३॥ यह परमेश्वरी कथा गौतम स्वामीके मुख अनेक राजाओ सहित राजा श्रेणिक सुनकर नगरमे गया वारवार नमस्कार करता भक्ति रूप है बुद्धि जाकी सो चित्त विषे धर्महीको धारता भया । अर चतुर्निकायके देव अर विद्याधर प्रभुको प्रणाम कर अपने २ स्थानक गये धर्मकथाके अनुरागी धर्महीको सार जानते भये ॥१४॥ निर्वाणकी है इच्छा जिनके अर जितशत्रु केवली जगत पूज्य आर्य क्षेत्र विषे विहार कर अघातिया कर्म हू क्षपाय अक्षय धामको प्राप्त भये अनत सुखका है अभाव जहा जाके अर्थ यती यतन करे हैं सो पद पाया ॥१५॥ अर वीरजिनेन्द्र हू भव्य जीवनके समूहको सबोध कर पावापुरीके मनोहर नामा उद्यानते कार्तिक वदी अमावस प्रभात समय स्वाति नक्षत्र विषे योगनका निरोध कर अघातिया कर्म हूं खपाये जैसे घातिया कर्मनका घात किया था तैसे अघातियान हु का घात कर बन्ध तैं रहित जो अपवर्ग स्थानक सिद्धक्षेत्र तहा सिधारे निरन्तर है अनन्त सुखका सबध जहा ॥१७॥ वे जिनेश्वर शकर सुगत सदा शिव परम विष्णु शुद्ध बुद्ध महेश्वर पच कल्याणकके नायक चतुर्निकायके देवन के देव निर्वाण प्राप्त भये तब इन्द्रादिक देवोने निर्वाण कल्याणक किया प्रभुके माया मई शरीर की पूजा कर दाह क्रिया करी ॥ १८ ॥ प्रभु परम धाम पधारे ता दिन चतुर्थ काल के वर्ष तीन और मास साढा आठ बाकी हुते । दीपोत्सव के दिन जिनवर जगत के शिखर पधारे तिस दिन देवन दीपन के समूह कर वह पुरी प्रकाश रूप करी आकाश और धरती विषे

दीपन की माला प्रज्वलित भई ॥ १९ ॥ इन्द्रादिक सब देव और श्रेणिकादि सकल भूप श्री महावीर स्वामी का निर्वाण कल्याणक देख प्रभु से ज्ञान की प्राप्ति की प्रार्थना कर अपने २ स्थान गये ॥ २० ॥ उस दिन से इस भरत-क्षेत्र विषे दीप मालिका प्रसिद्ध भई प्रति वर्ष भव्य जीव निर्वाण की पूजा करें अर लोक दीपोत्सव करें ॥ २१ ॥ अर भगवान को मुक्ति गये पीछे बासठ वर्ष में केवली भये गौतम सुधर्म और जम्बू स्वामी सो यह तीनों चतुर्थ कालके उपजे पंचम काल में पंचम गति जो निर्वाण तहा पधारे और इन पीछे सौ वर्ष में पांच श्रुत केवली भये ॥ २२ ॥ और उन पीछे वर्ष एकसौ तीरासी में ग्यारह अंग अर दश पूर्व के पाठी मुनि दस भये और तिन पीछे बरस दो सौ बीस में पांच मुनि ग्यारह अंग के पाठी भये और तिन पीछे वर्ष एकसौ अठारह में चार मुनि एक आचारांग के पाठी भये तिनके नाम सुभद्र जयभद्र यशोबाहु लोहाचार्य यहां तक अंग रहे ॥ २३ ॥ फिर इन पीछे अंगन के पाठी तो न भये परन्तु महा विद्यावान अंतनके धारक भये तिनमें कई एकनके नाम कहे हैं—महा तपसी है वृद्धि जिनके ऐसे नयधर ऋषि, श्रुति, ऋषि, गुप्ति, शिवगुप्त, अर्हद्बलि, मदराचार्य, मित्रवीर, बलमित्र, सिंहबल, वीरवित ॥ २५ ॥ पद्मसेन, गुणपद्म, गुणागुणी, जितदण्ड, नन्दीषेण, दीपसेन, तप ही है धन जिनके ऐसे श्री धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, सुनन्दिसेन, सूरसेन, अभयसेन ॥ २७ ॥ सुसिधसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शांतिसेन, समस्त सिद्धान्त के वेत्ता षट भाषानमें गुणवान षटखंड के अखंड नाथ ही हैं जिनके शब्द अर्थ अगोचर नाही ॥ २८ ॥ फिर जयसेन नामा सद्गुरु होते भये कर्म प्रकृति नामा श्रुति ताके पारगामी इन्द्रीन के जेता प्रसिद्ध वैयाकरणी महा पण्डित प्रभावचान समस्त शास्त्र समुद्र के परगामी ॥ २९ ॥ तिनके शिष्य अमित तेज नामा सद्गुरु पवित्र पुन्नाटगण के अगणी जिन शासन की है वात्सल्यता जिनके महा तपस्वी सौ वर्ष ऊपर है अवस्था जिनकी शास्त्रदान के बडे दाता पण्डितों में मुख्य जिनके गुण पृथिवी में प्रसिद्ध तिनका बडा भाई, धर्म का सहोदर महा शांत संपूर्ण बुद्धि धर्ममूर्ति जिनकी तपोमई कीर्ति जगत में विस्तार रही ऐसे कीर्तिसेन तिनका मुख्य शिष्य श्रीनेमिनाथ का परम भक्त जिनसेन ताने अपनी शक्ति के अनुसार अल्प बुद्धि से प्राचीनग्रन्थ के अनुक्रम हरिवंश की पद्धति कही सो यामें प्रमाद के दोष से शब्द में तथा अर्थमें कहीं भूल होय तो पुराण के पाठी पण्डित सुधार लीजो एक केवली भगवान ही कथन में न चूके और समस्त चूके ताका अचरज नाही । कहा यह प्रशंसा योग्य हरिवंश पुराण रूप पर्वत और कहा मेरी अल्प से अल्प बुद्धि की शक्ति ॥ ३४ ॥ जो काहू ठौर आखडे तो कहा अचरज है। या पुराण विषे

जिनेन्द्र के वंश के स्तवन कर पुण्य की उत्पत्ति है यही वांछा कर मैंने वर्णन किया और काव्य बन्ध से प्रबन्ध कर कीर्ति की कामना राख कथन न किया ।। ३५ ।। काव्य रचना के गर्व कर तथा अन्य पण्डितों से ईर्षा कर मैंने यह आरम्भ न किया । केवल जिनराज की भक्ति ही कर यह कथन किया । चौवीस तीर्थंकर और द्वादश चक्रधर और नव हलधर नवहरि और नव प्रतिहरि इनका वर्णन किया और अन्य अनेक राजान के चरित्र कहे । भूमि-गोचरी और विद्याधर सबनके वंश का वर्णन या विषै है ।। ३७ ।। जो धर्म अर्थ काम मोक्ष के साधन हारे पुरुषार्थ के धारक धीर पुरुष कीर्ति के पुंज तिनकी स्तुति कर मैं पुण्य उपार्ज्या गुण संचय किया ताका यही फल हूजियो जो या मनुष्य लोक के भव्य जीव जिन शासन विषै श्रद्धा करें अर अशुभ कर्म को हरें ।। ३८ ।। यह नेमि जिनेश्वर का चरित्र सकल जीवादि पदार्थ का प्रकाशक है यामें षट द्रव्य सप्त तत्त्व नव पदार्थ पंचास्तिकाय की प्ररूपणा है ।। ३९ ।। जो महा पण्डित हैं सो याकी सभाविषै व्याख्यान अपने अर पराये हितार्थ करियो अर सभा विषें आवें जे भव्य जीव ते कानरूप हस्तांजली कर हरिवंश कथा रूप अमृतका पान करियो जिनेन्द्र नाम ग्रहणकर नव ग्रहकी पीडा दूर होय है । यह समस्त पुराण आद्योपान्त वांचे अथवा सुने तो पापका नाश होय इसलिये एकाग्र चित्त कर पण्डित जन याका व्याख्यान अपने अर पराये कृतार्थ के अर्थ करहु व्याख्यान निज परका तारक है ।। ४२ ।। यह पुराण मंगल के अर्थियो को महा मंगल का कारण है अर जो धन के अर्थी हैं तिनको धनकी प्राप्ति का कारण है । अर निमित्त ज्ञानियो को निमित्त ज्ञान का कारण है अर महा उपसर्ग विषें शरण है शान्तिका कर्त्ता है अर जैन का बडा शकुन शास्त्र है शुभ सूचक है ज्ञानार्थीन को ज्ञान, ध्यानार्थीन को ध्यान, योगार्थीन को योग, भोगार्थियो को भोग, राज्यार्थीन को राज्य, पुत्रार्थीन को पुत्र, विजयार्थीन को विजय सर्व वस्तु का यह दाता सर्वज्ञ वीतराग का पुराण है । जो चौवीसो तीर्थेश्वर का महा भक्त चौवीसो शासन देवता चक्रेश्वरी पद्मावती अम्बिका ज्वालामालिनी आदि सम्यग्दृष्टिनी सो सब इस पुराण के आश्रित हैं कैसे हैं यह शासन देवता सदा जिनधर्म अर जिनधर्मीन के समीप ही हैं ।। ४४ ।। अर गिरनार गिरि विषें श्रीनेमिनाथ का मन्दिर ताकी उपासक सिंहवाहनी चक्र की धरनहारी जाके आगे क्षुद्र देवता न टिकें ऐसी अम्बिका कल्याण के अर्थ जिन शासन की सेवक है तहां परचक्र का विघ्न कैसे होय ।। ४५ ।। नवग्रह अर असुर नाग भूत पिशाच राक्षस यह लोगो को हित की प्रवृत्ति विषें विघ्न करे है । तातें बुध जन जिन शासन के देवतान के जे गुण तिन कर क्षुद्र देवन को शान्त करे हैं ।। ४६ ।। जे भक्ति कर यह

हरिवश पुराण पढें तिनके बिना खेद मनवाञ्छित काम की सिद्धि होय अर धर्म अर्थ मोक्ष की प्राप्ति होय ॥४७॥ तातें जे निष्कपट आर्य पुरुष हैं ते पूजा सहित या पुराण को पृथिवी विषे विस्तारहु। कहा कर याकू विस्तारहु मात्सर्य कहिये पराई उच्चता का न सहना ऐसा अदेखसका भाव ताहि धैर्य के वल कर प्रवलता रूप जो वुद्धि ताके प्रभाव से निवार कर अर जेते मायाचार के आचरण हैं तिन सवन को तज कर याका रहस्य विचारहु ॥४८॥ अथवा भव्य जीवन से यह प्रार्थना है कौन अर्थ, वे स्वत स्वभाव ही याहि पढेंगे वाचेंगे विस्तारेंगे, जैसे पर्वत मेहकी धारा को सिर पर धारे अर पृथिवी विषे विस्तारे ॥४९॥ यह श्रेष्ठ पुराण प्राचीन पुराण के गम्भीर शब्द तेई भये जल तिन कर पूर्ण सो मुनि मण्डली रूप नदी दोय नयन रूप ढायेन की धरन हारी तिन कर पूर्ण चारो दिश समुद्रान्त विस्तरेगा ॥५०॥ वे जिनेश्वर देव तत्त्व के द्रष्टा देवन के समूह पर सेवने योग्य जयवन्त होहु प्रजा को अति शाति के देनहारे शान्त है मार्ग जिनका अर निर्मल है निद्रारहित केवल नेत्र जिनके ॥५१॥ अर जिनधर्म की परम्पराय जयवन्त होहु जो अनादि काल से काहू कर जीति न जाय। अर प्रजा विषैं कुशल होहु। कवहु दुर्भिक्ष मति होहु मरी मति होहू पापी मति होहु पापी राजा मति होहु। अर सुख के अर्थ प्रति वर्ष भली वर्षा होहु अर अति वृष्टि अनावृष्टि मति होहु पृथिवी अन्न जल तृण कर सदा शोभित रहो। प्राणीनको काहू प्रकार की पीडा मति होहु ॥५२॥ विक्रमादित्य को सात सौ पाच वर्ष व्यतीत भये तव यह ग्रन्थ भया। ता समय उत्तर दिशा का राजा इन्द्रायुध कृष्णराजका पुत्र था। अर दक्षिण दिशा का राजा श्रीवल्लभ हुता अर पूर्व दिशा का राजा अवन्ति हुता अर पश्चिम का राजा वत्सराज हुता। यह चारो दिशा के चारो राजा महा सूरवीर जीत के स्वरूप पृथिवी मण्डल के रक्षक हुते ॥५३॥ कल्याण कर वडी है विस्तीर्ण लक्ष्मी जहा ऐसा श्री वर्धमानपुर तहा श्रीपार्श्वनाथ के चैत्यालय विषें राजा रत्न के राज विषे यह ग्रन्थ आरम्भ अर पूर्ण भया फिर शान्तिनाथ के मन्दिर विषे ग्रन्थ समाप्त किया पूजा भई अति उच्छव भया। जीती है अर सघ की शोभा जाने ऐसा श्रेष्ठ पुन्नाट नामा सघ ताकी परिपाटी विषे उत्पन्न भये श्रीजिनसेन नामा आचार्य तिन सम्यक्ज्ञान के लाभ के अर्थ रचा यह हरिवशचरित्र लक्ष्मी का पर्वत सो या पृथिवी विषें वहुत काल अति निश्चल तिष्ठो सव दिशि विषे सव जीवन का हरा है शोक जाने ॥५४॥

इति श्रीअरिष्टनेमिपुराणसग्रहे हरिवशे जिनसेनाचार्यस्य गुरु पर्व कमल वर्णनो नाम षट्षष्टितम सर्ग ॥६६॥

परमात्म प्रकाश भाषा टीका

॥ ॐ नम सिद्धेभ्य ॥

अथ "परमात्मा प्रकास" ग्रथ "श्री योगिन्द्राचार्य" कृत, ता परि सस्कृत टीका 'श्री ब्रह्मदेव' कृत ताकी भाषा वचनिका रूप लिखिए है ।

दोहा

चिदानद चिद्रूप जो, जिन परमातम देव ।
सिद्ध रूप सुचि सुद्ध जो, नमो ताहि करि सेव ॥१॥
परमातम निज वस्तु जो, गुरण अनत मय सुद्ध ।
ताहि प्रकासन कै निमित्त, बदू देव प्रबुद्ध ॥ २ ॥

श्लोक— चिदानदैकरूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, निश्य सिद्धात्मने नम ॥१॥

अर्थ —

श्री जिनेश्वर देव शुद्ध परमात्मा ज्ञान आनन्द रूप चिदानद चिद्रूप तिनिक ताइ मेरा सदाकाल नमस्कार होहू । कैसे अर्थि नमस्कार होहू । परमात्मा का स्वरूप ताके प्रकासवे अर्थि । कैसे हवे भगवान सुद्ध परमात्मा स्वरूप के प्रकासक है । निज अर पर सबके स्वरूप कू प्रकासक है । बहुरि कैसे हैं सिद्धात्मने कहीये कृत कृत्य है, आत्मा जिनका । नमस्कार योग्य परमात्मा ही है । तातै परमात्मा कू नमस्कार करि परमात्म प्रकास नामा ग्रथ का व्याख्यान करू हू ॥१॥

श्री योगिंद्र देवकृत परमात्म प्रकास नाम दोहक छद ग्रथ ता वीपै प्रक्षेपक हीये उक्त च तिनि बिना व्याख्यान के अर्थि अधिकारनिको परिपाटी कहीये है । प्रथमही पच परमेष्टी के नमस्कार की मुख्यता करिजे है ॥ २ ॥

जे जाया ज्माणगिए—इत्यादि सात दोहा जानने । बहूरि विज्ञापना की मुख्यता करि भावै पणवि वि इत्यदि दोहातीन ॥३॥

बहूरि वहिरात्मा अ तरात्मा परमात्मा इनिके भेद करि तीन प्रकार आत्मा के कथन की मुख्यता करि पुरण पुरण पण विवि इत्यादि दोहा पाच ॥ ५ ॥

अथानतर मुक्ति कू प्राप्त भये जे प्रगट स्वरूप परमातमा ताके कथन की मुख्यता करि तिहू ठण वदिउ इत्यादि दोहा दस ।।१०।।

अथानतर देह विषै तिष्टता सक्तिरूप परमात्मा ताके कथन की मुख्यता करि जेहउ निम्मल इत्यादि चोवीस दोहा ।।२४।।

जनि मे पाच उत्त च है ।।५।।

अथानतर जीव का निज देह प्रमाण कथन ता विषै स्व मत परमत के विचार की मुख्यता करि भणति जिउ सत्व गउ इत्यादि दोहा छह ।।६।।

वहूरि द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप ताके कथन की मुख्यता करि आप जणिय उ इत्यादि दोहा तीन ।।३।।

वहूरि कर्म विचार की मुख्यता करि जीवह कम्म अणार जीय इत्यादि दोहा आठ ।।८।।

वहूरि सामान्य भेद भावना ताके कथन की मुख्यता करि अप्पा-अप्पुजि इत्यादि दोहा तीन ।।३।।

वहूरि कर्म विचार की मुख्यता करि जीवह कम्म अठाइ जिपरि अप्पे अप्पु इत्यादि दोहा एक ।।१।।

वहूरि मिथ्या भाव के कथन की मुख्यता करि पज्कु इरतउ इत्यादि दोहा आठ ।।८।।

वहूरि सम्यग दृष्टी की भावना की मुख्यता करि काल है, विणु इत्यादि दोहा आठ ।।८।।

वहूरि सामान्य भेदभाव की मुख्यता करि अप्पा सयम इत्यादि दोहा इकतीस ।।३१।।

इति श्री योगिंद्र देव विरचित परमात्मा प्रकास ग्र थ ता विषै एक सो तेईस ।।१२३।।

अ तिम भाग —

अथानन्तर ग्र थ कै अ तिमगल कै अर्थि आसीर्वाद रूप नमस्कार है ।।

।। मालिनी छन्द ।।

परम पय गयाण भास उ दिव्वकाउ ।
मणि सि मुणि वराण मुख दो दिव्व जोउ ।।
विसय सुहरयाण दुल्ल होजो हुलोए ।
जयउ शिव सरूवो के वलोको विवोहो ।।४३।।

अर्थ —जइउ कहिए सर्वोत्कर्ष ताकरि वृद्धि कू प्राप्त होउ कैसा है वह परमतत्व दिव्य काउ कहिए दिव्य है ग्यान आनन्द रूप शरीर जाकै अथवा अरहत पद की अपेक्षा दिव्य काय कहिए परम औदारिक शरीर, कू धारे है। बहुरि कैसा हैं हजारौ सूर्यनितै अधिक है, तेज जाका सकल प्रकासी है। जे परम पद कू प्रापत भए है, केवली तिनिकू तौ साक्षात् दिव्य काय भासै है पुरषाकार भासि रह्या है। अरजे महा मुनि है तिनिके मन विषै द्वितीय सुकल ध्यानरूपी वीतराग निर्विकल्प समाधियोग रूप भास्या है। कैसा वह तत्व मोक्ष दो कहिए मोक्ष का देनहारा है अर केवल ग्यान है स्वभाव जाका ऐसा अपूर्व ग्यान योति सदा कल्याण रूप शिव स्वरूप अनते परमात्म भावना ताकरि उत्पन्न जो परमानंद अतिंद्री सुख तातैं विमुख जे पच इ द्रीनि के विषय तिनि सू जे आसक्त है तिनिकू सदा दुर्लभ है ।। या लोक विषैइजीव जाकू न पावै ऐसा वह परम तत्व सो जयवत होऊ ।। या भाति या परमात्मा प्रकासनामा ग्र थ विषैं प्रथम ही जे जाया, भणिए इत्यादिक एक सौ तेईस दोहा १२३ अर प्रक्षेपक तीन ३ तिनि सहित पहला अधिकार कह्या । बहुरि एक सौ चौदा ११४ दोहा अर प्रत्येक ५ पाच तिनि सहित दूसरा महा अधिकार कहया ।

अर पर जाण तु वि परम मुणि, पर ससग्ग चयति । इत्यादिक एक सौ सात १०७ दोहा नि मैं तीसरा महा अधिकार कह्या प्रक्षेपक अर अ ति की दोय काव्य तिनि सहित तीन सै पैंतालीस ३४५ दोहानि मै परमात्मा प्रकास का व्याख्यान ब्रह्म देवकृत टीका सहित सपूर्ण भया ।। छ ।।

या ग्रथ विषैं प्रचुरताकरि पदनि की सधि करनी ।। अर वचन भी भिन्न भिन्न कहिए जुदे जुदे धरे सुख सू समझिवे कैं अर्थि कठिन सस्कृत न धर्‌या तातैं इहा लिंग वचन क्रिया कारक सधि समास विसेष्य विशेषण दूषण

न लेने जो पडित जन विशेषग्य है ते ग्रैसा जानहु ।। जो इह ग्र थवाल बुद्धिनिके समझिवे कू सुगम कीया है या परमात्मा प्रकाश की टीका का व्याख्यान जानि करि भव्य जीवनिकू ऐसा विचार करना ।। जो मै सहज सुद्ध ज्ञानानद स्वभावि नीविकल्प हू उदासीन हू । निजानद निरजन सुद्धातम सम्यक् दर्शन सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र रूप निश्चय रत्नत्रय मई निर्विकल्प समाधि करि उपज्या वीतराग सहजानन्दरूप ग्रानदानुभूति मात्रा जो सु सवेदन ज्ञान ताकरि गम्य हू ग्रौर उपायनि करि गम्य नाही ।। निर्विकल्प निजानद ज्ञान ही करि प्राप्ति है, मेरी भरितावस्थ कहिए पूर्ण हूँ राग द्वेप मोह क्रोध मान माया लोभ पाच इ द्रीनिके विपय व्यापार मनकाय द्रव्य कर्म भावकर्म नो कर्म क्षाति पूजा लाभ देखे सुनें ग्रनुभए जेभोग तिनि की वाछा रूप निदान वधभया । मिथ्या शल्य त्रियादि विभाव परिणाम रहित सून्यो ह कहिए सव प्रपचनि तै रहित हूँ ।। तीनलोक तीनकाल विषै मन वचन काय करि कृत कारित ग्रनुमोदना करि शुद्ध निश्चय नय की मैं ग्रातमाराम ऐसा हूँ तथा सर्व ही जीव ऐसे हैं इह निरतर भावना करनी ।।छ।।

यह परमात्म प्रकास ग्र थ का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट के सवोवने ग्रर्थि श्री योगिंद्र देव नैं किया ता परि श्री ब्रह्मदेव नैं सस्कृत टीका करी । श्री योगिंद्राचार्य नै प्रभाकर भट्ट सवोधिवेकैं ग्रर्थि दोहा तीन सैं तीयालीश कीए ।। ता परि श्री ब्रह्मदेव नैं सस्कृत टीका हजार पाच च्यारि ५००४ कीएता परि दौलति राम ने भाषा वचनिका का श्लोक ग्रडसठि सैं निवै ६८६० सख्या प्रमाण कीए ।। श्री योगिंद्राचार्य कृत मूल दोहा ब्रह्मदेव कृत सस्कृत टीका का दौलतिराम कृत भाषा वचनिका पूर्ण भई ।। छ।। इति श्री योगिंद्राचार्य विरचित परमात्मा प्रकास की भाषा वचनिका सपूर्ण ।।छ।।

दोहा—

कटि कूवडि कर बेगडी, नीचा मुख ग्रर नैण ।
इस सकट पुस्तक लिखू , नीका राखो सैण ।।

× × × × ×

आदिपुराण

रचनाकाल —संवत् १८२४ चैत्र सुदी पूर्णिमा

रचना स्थान —जयपुर (राजस्थान)

अथ तीसवां पर्व ।

अथानतर पृथ्वी का प्रभु पश्चिम दिशा के जीतिवेकू उद्यमी भया, नैऋत्य कोण कै मार्ग अपनी सेना के साधन करि पृथ्वी कूं वशि करता चाल्या ।।१।। आगे आगे घोडे जाय हैं तिनि कै पीछे रथ चले अर मध्यविषै हाथनिकी घटा चाली अर पयादे सर्वत्र चाले ।।२।। या भाति चतुरगवल देवनि के अर विद्याधरनिके कटक सहित षडग पृथ्वी विषै विस्तरचा ।।३।। चालता कटक का क्षोभ ता थकी समुद्र चलायमान भया सो मानू सेवक जे सुभट तिनिकू स्वामी कै पीछै चालना पहोचावनेंकू सग होना प्रगट दिखावै है ।।४।। कटक के लोकनि बलात्कारतै भोगे वृक्षनि के फल सो फल तोडवे वृक्ष नय गए अर नदीनिका जल सुसि गया कीच होय गया अर बडे बडे पहाड थल होय गए ।।५।। याके कार्य की सिद्धि सब सफल होती भई अतिरसकी भरी सुखकी करणहारी सेवक जननिकरि वाछिवे योग्य महा उत्साह सहित अत्यत फलती भई याकी मत्र शक्ति उत्साहशक्ति प्रभुत्वशक्ति ।।६।।

अर सेना, पृथ्वीके जीतिवेकी है इच्छा जाकै सो देदीप्यमान होती भई कैसी है शक्ति अर सेना–काहूतै भेदी न जाय, दृढ है प्रबन्ध जिनिका अर शत्रुनि के क्षयका कारण ।।७।। याके योद्धा बाणनिसहित जीतिके भावकू प्राप्त भए, कैसे हैं बाण अर योद्धा बाण तो फल कहिए भाला तिनिकरि सयुक्त है अर योद्धा मनवाछित फलकरि युक्त हैं अर बाणहू तीक्ष्ण है अर योद्धाहू तीक्ष्ण हैं अरु बाण तो पक्ष कहिए पाख तिनिकरि सहित हैं अर योद्धा पक्ष कहिए सहायी तिनिकरि सयुक्त है अर बाणहू दूरगामी अर योद्धाहू दूरगामी ।।८।। अर याके विपक्षी कहिए शत्रु ते सत्यपनै विपक्ष कहिए पक्षरहित सहायरहित होते भए, सेना के लोकनि तिनिकू दूरि काढि दीए, ते सब सामग्रीसू रहित होय गए ।।९।। एक बडा अचिरज है याके विरोधी याके कोपकू होतसतै भी कुपति कहिए कुमाणस होय गए सब सामग्रीरहित भए, अर दूजा अर्थ-व्यग्यरूप-कुपतिनाम पृथ्वीपतिका है । अर याके विरोधी पहाडनिकू उलघि दूरि भागे अर दूजा अर्थ भूभृत् नाम राजानिका है अर याके विरोधी अैसे होय गए जो अन्न न मिलै वनफल खाय आजीविका पूर्ण करते भए अर दूजा व्यग्य अर्थ-फलसपदा भोगवते भए ।।१०।। याकै सधि कहिए मिलाप अर विग्रह कहिए युद्ध ताकी चर्चा शास्त्रविषै होती भई समस्त शत्रुकी पक्षका निराकरण करणहारा ताकै कौनसूं सधि ? अर कौनसू युद्ध ? याकै सब सेवक हैं कोऊ समान होय तौ

संधि विग्रह संभवै ।।११।। या भांति इह अजेतव्यपक्ष कहिए नाही रहया कोऊ प्रबल शत्रु जीतिवे योग्य जाकै याकै ढिग सब दीन हैं तथापि इह दिग्विजयकू उद्यमी भया सो मानू अपना पालिवेका भरत क्षेत्र ताकी दिग्विजयके मिसकरि प्रदक्षिणा देता भया ।।१२।।

याकी सेनाके लोकनि समुद्रके तीरकी भूमि सब वशीभूत करी कैसी है तीरकी भूमि-सुपारीके वृक्षनिकरि करी है छाया जहा अर नालेरनिके वनकरि मंडित है ।।१३।। याकी सेना के लोक सरोवरनिके तीर वृक्षनिकी छाया तहा विश्राम करणहारे तरुण नारेलनिका चया जो रस ताहि पीवते भए ।।१४।। अर याकी सेना के लोक ताल वनविषै सुनते भए सूखे पाननिके शब्द, पवन के हलायवेकरि पडै हैं ताडपत्र तिनिके पडिवेकी महा कठोर ध्वनि होय रही है ।। १५ ।। अर दूइ नृपनिका पति तांबूलनिकी वेलिसहित देखता भया खैर के वृक्ष, सो परस्पर मिलिरहे हैं मानू लोकनिकू अैसी दिखावैं हैं जो पाननिका अर हमारा एक कार्य है जहा पान तहा काथ ।।१६।। नृपनिका इन्द्र तांबूलनिकी वेलिसू लगिरहे खैर के वृक्ष तिनिकू देखता सता इनि वृक्षनिकरि वेढी तांबूलकी वेलि तिनिकू अवलोकिकरि हर्षित भया, मानू ए स्त्री–पुरुष के युगलभावकू आचरे हैं ।।१७।। अर वनविषै विहग जे पक्षी तिनिकू देखता सता हर्षित भया मानू ए पखी मुनिसारिखे सोहै हैं मुनिहुकी यहु रीति है जहाँ सूर्य अस्त होयवेका समय निकट आवै तहाही निवास करै रात्रीकू गमन न करै अर पछीहू निशा-विषै गमन न करै अर पखी निरंतर शब्द करै हैं सो मानू स्वाध्यायही करै है ।।१८।।

अर कटहल के वृक्ष माही मृदु अर बाहरि जिनिकी त्वचा काटेनिकरि युक्त तिनिके मिष्टरस अमृतसमान सेनाके लोक यथेष्ट भखते भए ।।१९।। नारेलनिका रस पीवना अर कटहलका भोजन अर मिरचनिकी तरकारी, अहो वनका निवासहु सुखकारी है ।।२०।। अर तीक्ष्णरसकी भरी मिरच तिनिका आस्वादकरि पखी शब्द करै हैं अर परै हैं आखिनिसू अश्रुपात जिनिके तिनिकू भूपेंद्र देखता भया ।।२१।। अर तरुण मर्कट महातीक्ष्ण मिरचनिकी मंजरी ताहि भखिकरि सशंकित भए सिर हलावैं हैं तिनिकू पृथ्वीका पति निरखता भया ।।२२।। ता समैं कटकके जन लोकके उपकारी जे वनके वृक्ष तिनिकू फलनिकरी नम्रीभूत देखि कल्पवृक्षनिके अस्तित्वविषै निःसंदेह भए, मनमैं विचारी –ए वृक्षही फलदाता हैं तौ कल्पवृक्ष तौ फलदाता होयही होय ।।२३।। लतारूप स्त्री ताकरि मण्डित अर फूलरुप प्रसूतिकरि संयुक्त अैसे वनके वृक्ष मानू

पृथ्वीपतिके करदेवा किसाणही हैं, ते वृक्ष लोकनिकू फलनिकरि पोषते भए ।।२४।। नालेरनिका रस सोई भया आसव ताकरि मदोन्मत्त कछुइक घूमैं हैं नेत्र जिनिके असी सिंहलदेशकी स्त्री पृथ्वीपतिका यश श्रुतिगभीर स्वरसू गावती भई, वह यश सुननहारेनिके श्रवणनिकू अतिसुन्दर ।।२५।।

अर त्रिकूटाचल मलयाचल तिनिके तटविषै अर पाण्ड्यकवाटक नामा पर्वत ताविषै याका यश किन्नरीदेवी अतिगम्भीर स्वरसू गावती भई ।।२६।। अर मलयाचलके निकट वननिविषै अर सह्याचलके वनविषै याका यश पृथ्वीके जीतिवेकरि उपज्या सो भीलनिकी स्त्री गावती भई ।।२७।। अर चदन का उद्यान ताहि स्पर्शिकरि मन्द सुगन्ध पवन बाजती भई, मलयाचलके कुन्जनितै हरे हैं नीझरणनिके जलकण जानै ।।२८।। दक्षिणदिशाकी पवन चौगिरद विस्तरती नृपका खेद हरती मानू पाहुणगतिकरि सेनाके लोकनिका सत्कारही करै है ।।२६।। अर केरल देशकी स्त्री लौंग इलायची आदि सुगन्ध वस्तुनिकी बास तिनिकरी सुगन्ध हैं मुखके श्वास जिनिके अर जिनिके स्तन सघन चन्दनके द्रवकरि चरचे पांडु होय रहे हैं ।।३०।। अर लीलासहित मन्द है गमन जिनिका मानू नितवनिके भारकरि मन्द चालै हैं अर कामके पुष्पवाण तिनिकी कलीके खिलिवेकेसे विभ्रमकू धरे सुन्दर है मुलकनि जिनिकी ।।३१।। अर कोयलके आलाप समान मधुर हैं वचन जिनिके ते वचन अतिप्रकट नांही भीणे स्वरकू धरे हैं अर अतिकोमल जो बाहुलता अतिसुभग हिंडोरे समान तिनिकूं हलावती मनोज्ञ है चेष्टा जिनिकी ।।३२।। अर महासुन्दर नृत्य करती नृत्यसमय स्खलित होय है पगनिकी रचना जिनिकी अर बाहुल्यताकरि मोतीनिके आभूषण पहरे जीते हैं भवरनिके गुन्जार जिनि असे मन्द मनोहर गान करती ।।३३।।

तमालवनकी कुंजगलीनिमैं यथेष्ट विचरती नवयौवनकू धरे केरलदेश-की स्त्री याका मन प्रसन्न करती भई ।।३४।। सो राजेंद्र दक्षिणदिशाकू वशिकरि चोल देश केरलदेशके राजा तिनि सबनिकूं जीतिके साधनतैं वशिकरि प्रणाम करावता भया, सब राजा आय पाय परे ।।३५।। कलिंगदेशके उपजे गज मलयाचलपर्वतसमान ऊंचे मानू अपने उच्च शरीरकरि गिरिनिकी उच्चताकू उलघै हैं ।।३६।। दिग्विजयविषैं सेनाके गज सब दिशानिमैं विश्राम करते दिग्गजपणा अगीकार करते भए, लोकनि जानी—एही दिग्गज हैं अर और दिग्गज कहिए हैं सो उपमाकै अर्थि कहिवेमात्र हैं ।।३७।।

वहुरि भरतक्षेत्रका भूपाल पश्चिमदेशकू प्राप्त होय सह्याचलके समीप पश्चिमदिशिके समुद्रके तटके राजा तिनिकू जीतता भया ।।३८।। जीतिका

साधन याका कटक पश्चिमदिशाके समुद्रके तीर निवास करता भया ।।३९।। उपसिंधु कहिए खारडी समुद्र सो अपने दोऊ तटनिविषै राजानिके राजाका कटक देखि भयथकी क्षोभकूं प्राप्त सोय मानूं आकुल व्याकुल भया ।।४०।। सेनाके क्षोभतैं समुद्र या तट की उर प्राप्त होय अर या तट की उर निवास करती सेनाके क्षोभतैं वा तटकी उर प्राप्त होय है ।।४१।। हरितमणि तिनिकी प्रभाके विस्तारकरि समुद्रका जल अैसा सोहता भया मानूं चिरकालतैं सिवाले नीचै हुता सो ऊपरि आय गया है ।।४२।। अर कहूंइक पद्मरागमणिनिकी किरणनि करि समुद्रका जल अैसा सोहता भया मानूं कटकके क्षोभतैं समुद्रका हृदय विदार्‌या गया है तातैं उचलै है रुधिरकी छटा ।।४३।। सह्याचल पर्वतके तटकूं समुद्रका जल स्पर्श है सो मानूं याकी गोहमैं लोटता सता अपना दुख निवेदन करै है अर वह याकूं धारता सता मानूं भाईका भाव प्रगट करै है ।।४४।। न सह्या परै अैसा वलका सघट्ट ताकरि सो सह्याचल भग्न भए जे वृक्ष तिनिकरी मानूं हाथ ऊंचेकरि पुकारही करै है ।।४५।। सह्याचल कटक-करि विदार्‌या, चलायमान है प्राणी जहां सो गुफाके छिद्रनिकरि आकुल शब्द करता मानूं मृत्युदशाकूं प्राप्त होय है, कैसा है पर्वत—सिंहादि प्राणी ते ही हैं प्राण जाके। भावार्थ—जो मृत्यु दशाकूं प्राप्त होय है ताके प्राण चलायमान होय हैं अर याके प्राणी चलायमान हैं ।।४६।। चलायमान है वृक्ष जाके अर चलायमान हैं प्राणी जहां अर शिथिल होय गई है कटिनी जाकी सो पर्वत या भांति चलाचल होता थका कहिवेमात्रही अचलनाम धरावता भया, लोकन जानी—कहिवेका अचल है ।।४७।।

प्राणीनिके समूहनै कीया है वनका भोग अर तुरगनिके खुरघट्टनकरि तथा कटकके लोकनिके पायनिकरि चूरी सती सह्याचलकी भूमि क्षणमात्रमैं स्थलके भावकूं प्राप्त भई ।।४८।। चक्रवर्त्तीके विजय गज पश्चिमके समुद्रके तटपर्यंत अर मध्यमाचलगिरीपर्यंत अर तुंगवर पर्वतपर्यंत भ्रमते भए, कैसा है तुंगवर-ऊंचे पाषाणनिकरि संयुक्त है ।।४९।। वहुरि कृष्णगिरीकूं उलंघि अर सुमंदरगिरीकूं उलंघि वहुरि मुकुंदगिरिकूं उलंघि राजेंद्रके गजराज भूमिमैं भ्रमते भए ।।५०।। तहां पश्चिमदिशिके समीपके हाथी छोटी है ग्रीवा कहिए नारी जिनिकी अर लावे हैं दांत जिनिके अर सुंदर है नेत्र जिनिके अर मृदु है त्वचा जिनिकी सचिक्कण श्याम महापुष्ट ।।५१।। वडा है शरीरका ऊपला भाग जिनिका उत्तुंग है अग जिनिका अर रक्त हैं जीभ होठ तालवे जिनिके महामानके धरणहारे अर दीर्घ है पूंछ जिनिकी अर कमलसमान सुगंध झरै है मद जिनिकै ।।५२।। अपने वनविषै संतुष्ट अर महाशूरवीर दृढ हैं चरण जिनिके

अर सुंदर है शरीर जिनिका असे पश्चिमके हस्ती वननिके स्वामी अति आदरसूं भेट ल्याए तिनिकूं आप राखता भया ।।५३।।

सो पृथ्वीका राजा अनेक नदी उलघता भया, कैसी है नदी-वन ही हैं रोमावली जिनिके अर ऊंचे तट तेई हैं नितंब जिनिके, केई नदी पूर्वगामिनी केई नदी पश्चिमगामिनी मानू सह्याचलकी पुत्रीही हैं, तिनिकूं उलघता भया ।।५४।। विचरै है भीषण ग्राह जिनिमैं असी भीमानामा नदी अर भीमरथी जलचरके समूह तिनिकरि उठया है भवर जिनिमैं असी दारुवेणा अर दारुणा महानदी तिनिकूं उलघता भया ।।५५।। अर नीरानामा नदी नीरके तीर जे वृक्ष तिनिके शाखाके अग्रभागकरि आच्छादित है जल जाका अर मूलानामा नदी टाहेनिकूं उपाडै असा है प्रवाह जाका सो अपने प्रवाहकरि मूलतैं उखारै है तटके वृक्ष जानै ।।५६।। अर वाणा नामा नदी, सो कैसी है—निरंतर वहै है जल जामैं अर वेतवा नामा नदी सदा जलकरि भरी बहुरि करीरीनामा नदी सो कैसी है—करी जे हाथी तिनिके दांतनिकरि विदारे हैं तट जाके इत्यादि महानदी तिनिकूं नृपनिका इंद्र उलघता भया ।।५७।। बहुरि प्रहरा नामा नदी विषम जे ग्राह तिनिकरि दूषित मानू वह नदी असती कहिए दुराचारिणी नारीही है, दुराचारिणी स्त्री विषम गाह जे नीचजन तिनिकरि दूषित है बहुरि मुररा नामा नदी कुरर जातिके पक्षी तिनिकरि सेव्य सो नदी कीच रहित मानू महासतीही है महासतीहू पंक कहिए कलंक ताकरि रहित है ।।५८।।

अर पारा नामा नदी जाके जलके तीर शब्द करै हैं कुरचि कलहंस सारस। अर मदनानामा नदी कैसी है मदना—समानस्थल अर नीचेस्थल तिनिविषै जलकरि समान है अर अखंड हैं गति जाकी ।।५९।। अर वेणुकानामा नदी मानू इह नदी सह्याचलरूप गजकी मदधारा ही है। अर गोदावरी अखंड है प्रवाह जाका अति विस्तारकूं धरै है ।।६०।। अर करीरवनकरि मंडित है तीरकी भूमि जाकी असी तापी नामा नदी आतापके संतापतै कछुइक उष्णजलकूं धरतीसती वहै है ।।६१।। अर रम्या नामा नदी ताके तीरके वृक्ष तिनिकी छाया सूते हैं मृगनिके बालक, अर लांगल खातिकानामा नदी कैसी है मानू पश्चिम दिशाकी खाई ही है ।।६२।। इत्यादि अनेक नदी तिनिकूं सेनापति सेनासहित उलघता भया जहां जहां सेनापति गया तहां तहां वनके माते हाथी ग्रहता भया ।।६३।। चक्रवर्तिका कटक सह्याचलकूं उलंघि विंध्याचल जाय प्राप्त भया, कैसा है सह्याचल पसारी हैं नदीरूप जीभ जानैं सो मानूं समुद्रकूं पीवेकूं उद्यमि भया है ।।६४।।

अब कटक विंध्याचल आया सो विंध्याचलकू भूपनिका भूप आपसमान देखता भया—वह गिरिनिका पति उत्तु ग अर वह आपहू उत्तु ग अर आप तौ वडे वशकू धरे अर वह वडे वासनिकूं धरे, आप दीर्घताकू धरै अर वहहू दीर्घताकू धरे, आपहू औरनिकरि अलघ्य अर गिरिहू औरनिकरि अलघ्य तातैं गिरीद्रकू आप तुल्य देखि प्रसन्न भया ।।६५।। कैसा है गिरी—अपने ऊचे शिखरनिकरि सोहै है उछलिकरि दूरि जाय परैं हैं निभरने जिनितैं अर ध्वजा-सहित विमाननिके समूहकरि मानू विश्रामकै अर्थि याका आश्रय ले हैं ।।६६।। जो विंध्याचल अपनी पूर्व अर पश्चिमकी अणी तिनिकरि समुद्रकू अवगाहिकरि तिष्ठया है मानू दावानलके भयतैं समुद्रसू मित्रता कीया चाहै है ।।६७।।

अर निरन्तर झरैं हैं नीझरने जाकै तलहटीके वृक्षनिके सींचिवेकैं अर्थि सो मानू इह गिरि ऐसा भाव कहै है—वडे नृपनिकू इह योग्य है जो अपने चरणनि लागे तिनिकू पालन करैं ।।६८।। अर तटविषै तिष्ठते ऊंचे पाषाण तिनिसू स्खलित होय उछलै है जल जाका ऐसी नदीरूप नारी तिनिकू मानू शब्दसहित नीझरने तिनिकरि हसैसी है ।।६९।। अर दावानल नीचले विस्तीर्ण वन तिनिकू जलकी सरदीकरि दाहिवेकूं असमर्थ तातैं भृगुपात कहिए गिरितैं गरिवेकै अर्थि शिखरकू चढ है भावार्थ—तलैं सरदी जलकी घनी है अर शिखरपरि जल ठहरै नाही तातैं शिखरपरि दावानल लागै है सो मानू झपा-पात वेलेकू चढ़ी है ।।७०।। प्रज्वलित दावानल ताकरि सयुक्त जे गिरिके *शिखर तिनिकू वनचर जे भील ते ज्येष्ठ आषाढके दिनानिमैं सुवर्णसारिखे* लखैं है ।।७१।।

जाके वन मातग जे हाथी अथवा भीलादिक चाडाल तिनिकरि सयुक्त हैं अर भुजग कहिए सर्प अथवा विषके भरे दुष्ट जीव तिनिका है सचार जहां अर विजाति कहिए पक्षी अथवा नीच जाति तेई भए कटक तिनिकरि पूर्ण हैं तातैं कहूइक अतिकष्टकू धरै हैं ।।७२।। अर माते हाथी तिनिका है योग जहां अर समुद्र लवणकी है बाहुल्यता जहां अर विपत्र कहिए पखीनिकी पाख जहां वहुत पडी हैं अर पत्र तथा कू पल तिनिकरि वहुत सोहै है ।।७३।। अर कहूइक फटि गए हैं वास जिनिके उदरतैं गिरे जहां तहां विखरि रहे हैं मुक्ताफल तिनिकरि मानू वनलक्ष्मी प्रगट जो दातनिकी किरण ताकरि वनविषैं हसैही है ।।७४।। अर इह विंध्याचल गुफानिके मुख तिनिकरि झरैं हैं नीझरने तिनिके शब्दकरि मानू गाजैही है, अपनी महिमाकरि करी है कुलाचलनिसू स्पर्द्धा जानैं ।।७५।।

अर इह पहाड नीचे ऊंचे स्थानक तिनिकरि अर नानाप्रकारकी गेरू आदि धातु तिनिकरि अर नानाप्रकारके मृगनिके रूप तिनिकरि मानूं चित्रपटके आकारकूं धरे है ॥७६॥ अर जाके वनविषै रात्रिमैं औषधि प्रज्वलित होय है सो मानूं देवनि ए दीपक प्रज्वलित कीए हैं अन्धकारके हरणहारे ॥७७॥ अर जहां इक मृगेद्रनि विदारे हैं गजेद्रनिके कुम्भस्थल तिनितैं उछलै हैं मोती तिनिकरि जाका सरीपस्थल विखरे पुष्पनिकी शोभाकूं धरै है ॥७८॥ सो नृपनिका नृप दूरिहीतैं महागिरिकूं देखि परम आनन्दकूं प्राप्त भया मानूं वह गिरि राजराजेंद्रकूं पवनकरि हालते तट के वृक्ष तिनिकरि बुलावै है ॥७९॥ सो चक्रेश्वर विंध्याचलके किरात कहिए भील अर करी कहिए हाथी तिनिकूं समूहसहित दूरतैं देखता भया. कैसे है किरात अर कैसा है करी—कालीघटा-समान काले अर भील तौ वाम के धनुष धरै अर हाथी धनुषके आकार वंश कहिए पीठ ताहि धरै ॥८०॥ ता पर्वतके तटविषै नदीरूप स्त्री चचल जे मच्छी तेई हैं नेत्र जिनिकै अर पक्षीनिके शब्द तेई हैं अव्यक्त सुन्दर शब्द जिनिके ऐसी नदीरूप नारी तिनिकूं नरपति निरखता भया ॥८१॥

अर विंध्याचलके मध्य नर्मदा नदीकूं देखता भया सो नर्मदा नदीनिमैं वडी मानूं विंध्याचलकी समुद्रपर्यंत कीर्ति विस्तरी है काहूपै निवारी न जाय ॥८२॥ तरगरूप है जलका वेग जाका ऐसी नर्मदा मानूं पृथ्वीकी लाबी चोटीही है अर विंध्याचलपर्वतकी पताकाही है समस्त पर्वतनिकूं जीतै ताकी प्रशसा प्रगट करणहारी ॥८३॥ सो नदी कटकके क्षोभतै उठी है पक्षीनिकी पक्ति जाविषै सो मानूं पृथ्वीका पति अपने स्थल आया तातै तोरणही बाधे हैं, पखीनिके उडिवेतैं क्षणेक ऐसी भासी ॥८४॥ अर इह साचिली नर्मदा है जो राजानिकी रानीनिकूं नर्म कहिए क्रीडा ताकी देनहारी ताके मध्य मच्छी केलि करै है ॥८५॥ ता नर्मदाकूं उतरिकरि राजेश्वरका कटक विंध्याचलकै पैलै तट जाय पहोच्या घरकी देहलीकी बुद्धिकरि विंध्याचलकूं उलघ्या अर नर्मदाके पार भए, कैसी है नर्मदा—कटकके क्षोभतै उडी है पखीनिकी पक्ति जाविषै ॥८६॥

अर विंध्याचल नर्मदाकै दक्षिणदिशिभी देख्या अर उत्तरदिशिभी देख्या मानूं विंध्याचलनै दोऊदिशाविषै अपना रूप दोयप्रकार कीया है दोऊही दिशानिमैं जाका छेह नाही ॥८७॥ चक्रीका कटक नर्मदाकी चौगिरद विंध्या-चलकूं वेढिकरि निवास करता भया मानूं इह कटक दूजा विंध्याचलही है ॥८८॥ वह कटक अर विंध्याचल परस्पर भेद न धारते भए, कटकमैं तौ गज अर गिरीमैं गडोपल कहिए ऊंचे स्थानक अर कटकमैं अश्व अर पर्वतमैं अश्व-

चक्र कहिए किंनर देव, अश्वहू चपल अर किंनरहू चपल ॥८९॥ कटकनै भखे समस्त फल अर पल्लव अर तरु सो विंध्याचल दल फल पुष्प वेलि पत्र तिनि-करि रहित होयगया सो मानूं, विंध्याचल वध्याचल होय गया। वध्या नाम निफलका है ॥९०॥ बासनिके चावल बासनिके मोती निकरि मिश्रित तिनि-करि कटकके लोग जिनेंद्रकी अर्चा करते अपनी इच्छाकरि सुखसूं तिष्ठते महा-मनोज्ञहै विंध्याचल की स्थली ॥९१॥ तहा पृथ्वीपतिनैं निवास किया तब वनके राजा राजाधिराजकूं देखते भए अर वनकी नानाप्रकारकी वस्तु प्रशसायोग्य रोगकी निवारणहारी महाऔषध भेट करते भए ॥९२॥ हाथीनिके दांत अर गजमोती अर बासनिके मोती भीलनिके अधिपति भेट करते भए सो उचितही है पृथ्वीपतिका सत्कार करना ॥९३॥

नर्मदाकूं उतरि विंध्याचलकूं उलंघि चक्रवर्त्तीका कटक पश्चिमदिशाके जीतिवेकूं प्रयाण करता भया ॥९४॥ पहली कछुइक उत्तरदिशाकी तरफ कटक जायकरि पश्चिमदिशाकूं चक्रसहित प्राप्त भया, याका प्रताप तौ पहिलीही सब उर व्यापि रह्या है ॥९५॥ कटकके अश्व तिनिके खुरनितैं उठी पृथ्वीकी रज सो सूर्यके तेजकूं रोकती भई केवल वैरीनिकाही तेज न रोक्या जाके तेज आगैं सूयहूका तेज रुकिगया ॥९६॥ लाट देशके राजा ललाटकरि स्पर्श्या है पृथ्वीतल जिनि अतिसुन्दर भाषा बोलते प्रभुकी आज्ञाके वशि होय लाभाटिक पदकूं प्राप्त भए। जो स्वामीका अभिप्राय जानैं अर आज्ञाप्रमाण कार्य केरिवेकूं समर्थ ताहि लालाटिक कहिए ॥९७॥ कैयक वनके अधिपति सोरठदेशके गज अर पचनदीके वननिके गज भेंटकरि पृथ्वीनाथका दर्शन करते भए, चक्रकरि सब चलायमान होय गए ॥९८॥ चक्रके देखिवेतैं डरे, देश तजि पृथ्वीनाथकै समीप आए तिनि जानी इह सब पृथ्वी चक्रेश्वरकी है जाहि जो स्थल देय सो पावै कैयक राजा क्रूरग्रह समान महाक्रूर हुते सो चक्रीकै वशि भए ॥९९॥

भरतक्षेत्रका पति सब दिशानिके देशपति माते हाथी समान मदोन्मत्त तिनिकूं अपने बलतैं दबाय सूधे करता भया कैसे है राजा अर कैसे है गजराज— राजा तो बडे वशके उपजे अर गज बडे पीठिकूं धरें, वशनाम पीठहूका है, अर हाथी मदोन्मत्त राजाहू मदोन्मत्त सो सब राजा राजेंद्रके प्रतापतैं निर्मद होय गए ॥१००॥ सोरठदेशके राजा अर उष्ट्रदेशके राजा ल्याए हैं अनेक प्रकार भेटनिके समूह तिनिकूं पृथ्वीनाथ सतुष्ट करता तिनिपरि कृपा करता गिरिनार-गिरिकी थली आया ॥१०१॥ सोरठदेशविषैं गिरिनारगिरि सुमेरुसारिखा पर्वत तहा भरतक्षेत्रका पति आय पहोंच्या, असवारीतैं उतरि गिरिनारिकी प्रदक्षिणा

देय होनहार बावीसमैं तीर्थंकर तिनिका ध्यान करता गिरिकी वदना करी ।।१०२।। गेमी कपडे अर रेशमी कपडे अर चीन पाटवर इत्यादि अनेक प्रकार-के वस्त्र भेटकरि भूपति भूपेंद्रका दर्शन करते भए ।।३।। कैयकनिकू सन्मान दान-करि कैइकनिकू स्नेहवचनकरि कैयकनिकू कृपाकी दृष्टिकरि अतिहर्षित करता भया ।।४।। अर नानाप्रकारके गज अर ऐराकी घोडे अर नानाप्रकारके रत्न तिनिकरि पश्चिमदिशाके राजा सोरठमैं आया नृपतिका नाथ ताहि पूजते भए ।।५।। महातेजस्वी शरीर जिनिका अतिसुन्दर बुद्धिमान तरुण वय पराक्रमगुण-करि मडित तुरुक्कदेशके उपजे तुरगम तिनिकरि कैइकराजा राजेश्वरकू पूजते भए ।।६।। अर कैयक राजा कावोजदेश के-घोडे अर वाल्हीकदेशके घोडे तथा तैतिलदेशके अर अट्टदेशके सिंधुदेशके वनायुदेशके गावारदेशके वाणदेशके इत्यादि अनेक देशनिके तुरगम तिनिकरि भूपेंद्रकू आराधते भए ।।१०७।। महाकुलीन ऐराकी जातिके घोडे नानादेशके विचरणहारे पूर्ण हैं अग जिनिके तिनिकरि भूप भूपेंद्रकू सेवते भए ।।१०८।। प्रयाण प्रयाण प्रति याकै केवल रत्ननिहीका लाभ न भया यशका अत्यन्त लाभ भया जे राजा दु साध्य हुते ते अपने वलतै सव वशि कीए ।।९।। जल और थलके पथ तिनिकू सव ओरतै रोकि अपनी जीतिके साधनकरि गए सिंधुके सव राजानिकू सेनापति जीतता भया ।।११०।।

नानाप्रकारके देश अर वन नदी पर्वत तिनिकूं उलघि सेनापति पश्चिमके राजानिकू पृथ्वीपतिकी आज्ञा सुनावता भया ।।१११।। जो काहू ठौर कछु अपराध न होय, हिंसादिक पाप अर अनीति कोऊ करि न सकै, चोरी जोरी न होय, या भाति आज्ञा सुनाय जैसैं पूर्वके भूपाल वशि कीये हुते तैसै पश्चिमके अनुक्रमतै वशि कीए, हर्‍या है तिनिका मानधन, या भाति सवनिकू वशिकरि राजेंद्र पश्चिमके समुद्र आया ।।१२।। सो समुद्र तरगनिरूप कर तिनिकू विस्ता-रता दूरहीतै मानू नरेंद्रका सत्कार करता भया तरगनिमैं नानाप्रकारके रत्न विस्तरे सो मानू समुद्र अर्घपाद्यही करै है ।।१३।। जवाहरिनिकरि प्रशसायोग्य जे वडे जवाहरी तिनिकरि या समुद्रके रत्न अल्पमूल्य गिनिये हैं अर या चक्रेश्व-रके रत्न वहुमूल्य गिनिये हैं ।।१४।। अर इह नामकरि लवणसमुद्र सो लघु भया तातै तासमैं नृपनि ऐसा माना जो इह चक्रही रत्नाकर है अनेक रत्ननिकी राशि है, या भाति सब राजनि वहुत प्रशसा करी ।।१५।।

या पश्चिमदिशाविषै सूर्य आवै है तव सूर्यहूका तेज मद होय जाय है सो याहू दिशिमैं नृपेंद्रका तेज अति देदीप्यमान होता भया, पश्चिमके सब राजा जीते ।।१६।। इह चक्रेश्वर शत्रुनिकू तीव्र उद्वेग उपजावता सूर्यसमान दिपता

भया चक्ररत्नकू धारता सकलप्रजाके दुख टारता गुणरुप समुद्रकू पूर्ण करता भया, सब शत्रु कपायमान करे ।।१७।। समुद्रके तीर चाल्या, पश्चिमके तीर पहुच्या जो द्वार होय सिधुनदी समुद्रमैं प्रवेश कीया है अैसा सिधुद्वार ताके समीप कटकके डेरे कराए, कैसा है कटक—अपने चित्तसमान निराकुल है चक्रेश्वर महालक्ष्मीवान जा समान अन्य कोऊ विभूतिवत नाही ।।१८।। सिधुके तटके वन तहा सेनाके डेरे भए फौजके हाथी तिनिके चरिवेकरि पेडमात्र रहिगये ।।१९।। तहा मत्रसहित चक्ररत्नकी पूजा करी समस्त रीतिका वेत्ता पुरोहित, पचपरमेष्ठीकी विधिपूर्वक पूजा करी ।।२०।। पवित्र गधोदकसू मिश्रित आसिकासहित अक्षत देयकरि पवित्र आशीर्वाद देय पुरोहित चक्रीकू आनन्द उपजावता भया ।।२१।। तासमैं धरे हैं देवोपनीत शस्त्र जानैं पहली रातिप्रमाण रथविषैं आरूढ होय लवणोदधिकू गायके खोज समान अल्प जानि पृथ्वीका पति लवणोदधिकू अवगाहता भया ।।२२।। उत्कृष्ट है दीप्ति जाकी अैसा प्रभासनामा देव ताहि जीत्या पृथ्वीका पति अपनी प्रभाके समूहकरि सूर्यकी प्रभाकू तिरस्कार करै है ।।२३।। जो वीरलक्ष्मी सोई भई मच्छी ताके वशि करिवेकू जालसमान मोतीनिका जाल अर सतान जातिके कल्पवृक्षनिकी माला अर सुवर्णका जाल ए सब प्रभासदेव भेट करी सो चक्रधर ग्रही ।।२४।। या भाति पुण्यके उदयतैं पृथ्वीपति बडे देवनिकू जीतता भया तातैं बुद्धिमान पुण्यरूप धनका निरतर उपार्जन करहु, सो पुण्यधन महाप्रबल है ।।२५।।

चक्रवर्तीनिमैं आदि प्रथमचक्री अतुल है लक्ष्मी जाकै अर नाचते उछलते उत्तु ग तुरग तिनिके खुरनिकरि चूर्ण कीए हैं विषमस्थल जानैं, तुरगनिके खुरनिकरि उठी रेणु ताकरि समुद्रकू श्यामता उपजावता सता प्रभासदेवकू जीतिकरि ताथकी सारभूत वस्तु लीन्ही ।।२६।। लक्ष्मीके हीदिवेकी लतासमान सतानजातिके कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी माला उरविषैं धारी अर मोतिनिका अर सुवर्णका जालजुगल ताकरि सयुक्त जैसैं कोऊ बीद बीदनी परणि भीतरतैं बाहर निकस तैसैं लक्ष्मीका ईश लक्ष्मीकू परणकरि समुद्रतै निर्भय निकसता नूतन वरकी शोभाकू धरता अत्यन्त सोहता भया ।।१२७।। समुद्रपर्यन्त पूर्वके राजा अर समस्त दक्षिणके राजा वैजयतद्वारपर्यन्त तिनिकू जीतिकरि पश्चिमका समुद्र है सीमा जाकी अैसी पश्चिमदिशा तहाके दिक्पालनितुल्य भूपाल तिनितैं प्रणाम करावता समस्त देवनिकू कपायमान करता समस्तदिशाके चक्रकू अरिचक्ररहित करता भया । या भाति जीते है सकलभूप जानैं अैसा नृपनिका प्रभु पृथ्वीकू वशि करता भया ।।१२८।। इह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसू कहै है—हे राजन् ! पुण्यके प्रभावतैं इह जीव भूमडलकी जीतनहारी चक्रवर्त्तीकी लक्ष्मी

ताहि पावै है अर इन्द्रपदकी दिव्यलक्ष्मी पावै है अर पुण्यथकीही तीर्थङ्करकी विभूति पावै है अर पुण्य ही थकी परपराय मोक्षकी अविनाशी लक्षमी पावै है। या भाति पुण्यके प्रभावतै ए च्यारु विभूतिनिका भव्यजीव भाजन होय है तातै असा जानि जे सुबुद्धि हैं ते पवित्र जिनेद्रके आगमतै पुण्यकू उपार्जो ॥१२६॥

इति श्री भगवज्जिनसेनाचार्यविरचित त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसग्रहे पश्चिमागा वद्वारविजयवर्णन नाम तीसवा पर्व पूर्ण भया ॥३०॥

× × × × ×